

वर्तमान

श्री चौबीसी पुराण

(भाषा)

लेखक—

पण्डित पन्नालाल साहित्याचार्य

प्रिण्टर—

दुलीचन्द परवार

ने अपने

"जिनवाणी प्रेस"

८०, लोअर चितपुर रोड, कलकत्ता से

छापकर प्रकाशित किया।

प्रथमावृत्ति	वीरजयन्ती	न्योछावर— खुलापत्र ३
१०००	१९९५	सिर्फ सजिल्द ४

विषय—सूची

आवश्यकीय निवेदन

सज्जनो !

आज आपके समक्ष बहुत समयके बाद यह 'चौबीसो पुराण' उपस्थित करते हैं, यद्यपि यह बहुत ही निकल जाता परन्तु प्रेसमें मशीन बदलनेके कारण ४ माहका अचानक विलम्ब हो गया, इसीलिये को निकलने वाला ग्रन्थ चैत्रमें निकल रहा है।

पं० पन्नालालजी साहित्याचार्यने बहुत परिश्रम करके इस ग्रन्थका सम्पादन किया है, इसके लिये उक्त पंडितजीको हार्दिक धन्यवाद दिये बगैर नहीं रह सकते। विलम्बके कारण हमारे पंडितजीको मन्दे गया था कि निकलेगा या नहीं ? परन्तु हम अपने ध्येयके पक्के हैं, जिसका निश्चय कर लेते हैं वह काम ही रहते हैं अतएव देरी होनेके कारण मैं पंडितजीसे पुनः प्रार्थी हूं।

अभी तक हिन्दी जैन साहित्यमें चौवीसी तीर्थङ्करोंका जीवन चरित्र एक साथ मिलनेका अभा उसकी पूर्तिके लिये मैंने पंडितजीसे दो वर्ष पहिले प्रार्थना की थी, उसको ध्यानमें रखकर पंडितजीने परिश्रम द्वारा सरल भाषामें जो यह ग्रन्थ लिख दिया है उसके लिये हम जैन समाजकी तरफसे आपका मानते हैं आशा है पंडितजी सा० भविष्यमें इसी तरह अपनी लेखनी द्वारा जैन साहित्यकी सेवा करते

जिनवाणी सेवक—

दुलीचन्द परवार

श्रीजन्मकल्याणक



* श्रीवीतरागाय नमः *

चौबीस तीर्थंकर पुराण।

भगवान आदि नाथ

स विश्वचक्षु र्वृषभो उर्चितःसतां समग्र विद्यात्मवपु र्निरञ्जनः।
पुनातु चेतो ममनाभिनन्दनों जिनो जित क्षुल्लक वादिशासनः॥

— आचार्य समन्तभद्र

"सबको देखनेवाले, सज्जनोंसे पूजित, समस्त विद्यामय, पाप रहित तथा क्षुद्र वादियोंके शासनोंको जीतनेवाले वे नाभिनन्दन भगवान ऋषभनाथ हमारे हृदयको पवित्र करें।"

[१]

इस मध्यलोकमें असंख्यातद्वीप समुद्रोंसे घिरा हुआ एक लाख योजना विस्तारवाला जम्बूद्वीप है। यह जम्बूद्वीप सबद्वीपोंमें पहला द्वीप है और अपनी शोभासे सबमें शिर मौर है। इसे चारों ओरसे लवण समुद्र घेरे हुए है। लवण समुद्रके बीच समुद्रमें यह जम्बूद्वीप ठीक कमलके समान मालूम होता है। क्योंकि कमलके नीचे जैसे सफेद मृणाल होती है वैसे ही इसके नीचे श्वेत वर्ण शेष नाग है। कमलके ऊपर जैसे पीली कर्णिका होती है वैसे ही इसपर सुवर्णमय-पीला मेरुपर्वत है। और कमलकी कर्णिकापर जिस प्रकार काले भौंरे मंडराते रहते हैं उसी प्रकार मेरुपर्वत कर्णिका पर भी काले काले मेघ मंडराते रहते हैं। हिमवान, महाहिमवान, निषध, नील, रुक्मी और शिखरी ये छः कुलाचल जम्बूद्वीपकी शोभा बढ़ा रहे हैं। ये छहों कुलाचल पूर्वसे पश्चिम तक लम्बे हैं। अनेक तरहके रत्नोंसे जड़े हुए हैं और अपनी उत्तुंग शिखरोंसे गगनको चूमते हैं। इन छह अचलोंके कारण जम्बूद्वीपके सात विभाग अर्थात् क्षेत्र हो गये हैं। उनके नाम ये हैं:—भरत, हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक हैरण्यवत और एरावत। इन्हीं क्षेत्रोंमें हमेशा लहराती हुई गंगा सिन्धु आदी

चौदह महा नदियां बहा करती हैं। विदेह क्षेत्रके ठीक बीचमें एक लाख योजन ऊंचा सुवर्णमय मेरु पर्वत है। वह पर्वत अपनी उन्नत चूलिकासे स्वर्गके विमानोंको छूना चाहता है। नंदन सौमनस भाद्रशाल और पाण्डुक बनसे उसकी अपूर्व शोभा बढ़ रही है। जिनेन्द्र भगवानके जन्माभिषेकके सुरभित सलिलसे उस पर्वतका प्रत्येक रजकण पवित्र है। सूर्य चन्द्रमा आदि समस्त ज्योतिषी देव उसकी प्रदक्षिणा देते रहते हैं।

उसी विदेह क्षेत्रमें मेरुपर्वतसे पश्चिमकी ओर एक बांधिल देश है। वह देश खूब हरा-भरा है—जहां पर रहनेवाले लोग किसी भी बातसे दुखी नहीं हैं। जहांपर धान्यके खेतोंकी रक्षा करनेवाली बालिकाओंके सुन्दर संगीत सुनकर हरिण चित्र लिखितसे—निश्चल हो जाते हैं। जहांके मनोहर बगीचोंमें रसाल आदि वृक्षोंकी डालियोंपर बैठे हुए कोयल, कीर, क्रौंच आदि पक्षी तरह तरहके शब्द करते हैं। उस बांधिल देशमें एक विजयार्ध पर्वत है जो अपनी धवल कान्तिसे ऐसा मालूम होता है मानो चांदीसे बना हुआ हो। उस पर्वत पर अनेक सुन्दर उद्यान शोभायमान हैं। उद्यानोंके लतागृहोंमें देव देवांगनायें विद्याधर और विद्याधरियें अनेक तरहकी क्रीड़ा किया करती हैं। उसकी शिखरें चन्द्रकान्त मणियोंसे खचित हैं इसलिये रातके समय चन्द्रमाकी किरणोंका सम्पर्क होने पर उनसे सुन्दर निर्झर झरने लगते हैं। उस पर्वतकी तराईमें आमके ऊंचे ऊंचे पेड़ लगे हैं। हवाके हलके झोंके लगनेसे उनसे पके हुए फल टूट टूटकर नीचे गिर जाते हैं और उनका मधुर रस सब ओर फैल जाता है। उस पर्वतकी उत्तर श्रेणीमें "अलका" नामकी सुन्दर नगरी है। वह अलका नगरी अगाध जलसे भरी हुई परिखासे शोभायमान है। अनेक तरहके रत्नोंसे जड़ा हुआ वहांका प्रकार कोट इतना ऊंचा है कि रातके समय उसकी उन्नत शिखरों पर लगे हुए तारा गण मणिमय दीपकोंकी तरह मालूम होते हैं। वहांके ऊंचे ऊंचे मकान चूनेसे पुते हुए हैं इसलिये वे शरद ऋतुके बादलोंके समान मालूम होते हैं। उन मकानोंकी शिखरोंमें अनेक तरहके रत्न लगे हुए हैं जो बरसातके बिना ही मेघ रहित आकाशमें इन्द्रधनुषकी छटा छिटकाते रहते हैं। वहां गगन चुम्बी जिन मन्दिरोंमें नाना

प्रकारके उत्सव होते रहते हैं। कहीं तालाबोंमें फूले हुए कमलोंपर भ्रमर गुञ्जार करते हैं। कहीं बगीचोंमें बेला गुलाब चम्पा जूही आदिकी अनुपम सुगन्धि फैल रही है। कहीं शरदके मेघके समान सफेद महलोंकी छतोंपर विद्याधरांगनायें बिजली जैसी मालुम होती हैं। कहीं पाठशालओंमें विद्यार्थियोंकी अध्ययन ध्वनि गूंज रही है और कहीं विद्वानोंमें सुन्दर तत्व चर्चाएं होती हैं। कहीं कोई खाने पीनेके लिये दुखी नहीं है—सभी मनुष्य सम्पत्तिसे युक्त हैं। निरोग हैं और बाल बच्चोंसे विभूषित हैं अलका अलका ही है—उसका समस्त वर्णन करना लेखनीसे बाहर है।

जिस समयकी कथा लिखी जाती है उस समय अलका का शासन सूत्र महाराज अतिबलके हाथमें था। उस वक्त अतिवल जैसे वीर, पराक्रमी, यशस्वी दयालु और नीति निपुण राजा पृथ्वीतल पर अधिक नहीं थे। उनकी नीति निपुणता और प्रजा वत्सलता सब ओर प्रसिद्ध थी। वे कभी सूर्य के समान अत्यन्त तेजस्वी होकर शत्रुओं को संताप पहुंचाते थे और कभी चन्द्रमा की भाँति शान्त वृत्ति से प्रजा का पालन करते थे। उनकी निर्मल कीर्ति चारों ओर फैल रही थी। अतिवल के व्यक्तित्व के सामने सभी विद्याधर नरेश अपना माथा झुका देते थे। वे समुद्रसे गम्भीर थे, मेरुसे स्थिर थे, वृहस्पतिसे विद्वान थे, और थे सूर्य से भी अधिक तेजस्वी। महाराज अतिबलकी स्त्रीका नाम 'मनोहरा' था। मनोहरा का जैसा नाम था वैसा ही उसका रूप भी। उसके पांव कमल के समान सुन्दर थे और नाखून मोतियों से चमकते थे। जंघायें कामदेव की तरकस के सदृश मालूम होती थीं और स्थूल ऊरु केलेके स्थम्भ से भी भली थी। उसका विस्तृत नितम्ब स्थल बहुत ही मनोहर था। मनोहरा की गम्भीर नाभि श्यामल रोम राजि और कृश कमर अपनी शानी नहीं रखती थीं। उसके दोनों स्तन शृङ्गार सुधा से भरे हुये सुवर्ण कलश की नांई मालूम होते थे। भुजायें कममिनी के समान मनोहर थीं और हाथ कमलों की शोभा को जीतते थे। उसका कंठ शंख सा सुन्दर था। ओष्ठ प्रवाल से और दांत मोती से लगते थे। उसकी बोली के सामने कोयल भी लजा जाती थी। तिलक पुष्प उसकी नाक की बराबरी नहीं कर सका था। वह अपनी

चंचल और बड़ी बड़ी आँखों से हरिणियों को जीतती थी। उसकी भौंहें काम के धनुष के समान थीं। कुम्कुम के तिलक से उसके ललाट की अनूठी ही शोभा नजर आती थी, उसके काले और घूंघर वाले बालों की शोभा बड़ी ही विचित्र थी। मनोहरा के मुंह के सामने पूर्णिमा के चन्द्रमा को भी मुँहकी खानी पड़ी थी। उसका सारा शरीर ताये हुये सुवर्ण की तरह चमकता था। कोई उसे एकाएक देखकर विद्याधरी कहने का साहस नहीं कर पाता था। सचमुच वह मनोहरा अद्वितीय सुन्दरी थी। राजा अतिबल रानी मनोहरा के साथ अनेक तरह के सुख भोगते हुये सुख से समय बिताते थे। कुछ समय बाद मनोहरा की कुक्षि से एक बालक उत्पन्न हुआ। बालक के जन्मकाल में अनेक शुभ शकुन हुये। राजा ने दीन दरिद्रों के लिये किमिच्छक दान दिया और प्रजा ने अनेक उत्सव मनाये। बालक की वीर चेष्टायें देखकर राजा ने उसका नाम महाबल रख दिया। बालक महाबल द्वितिया के चन्द्रमा की तरह प्रति दिन बढ़ने लगा। उसकी अद्भुत लीलायें और मीठी बोली सुनकर मा का हृदय फूला न समाता था। उसकी बुद्धि बड़ी ही तीक्ष्ण थी। इसलिये उसने अल्प वयमें ही समस्त विद्यायें सीख ली पुत्र की चतुराई और नीति निपुणता देखकर राजा अतिबल ने उसे युवराज बना दिया और आप बहुत कुछ निश्चिन्त होकर धर्म ध्यान करने लगे।

एक दिन कारण पाकर अतिबल महाराज का हृदय संसार से विरक्त हो गया। उन्हें पंच इन्द्रियों के विषय क्षणभंगुर और दुःखदाई मालूम होने लगे। बारह भावनाओं का विचार कर उन्होंने जिनदीक्षा धारण करने का दृढ़ निश्चय कर लिया। फिर मंत्री सामन्त आदि के सामने अपने विचार प्रगट करके युवराज महाबल को राज्य तथा अनेक तरह के धार्मिक और नैतिक उपदेश देकर किसी निर्जन वन में जिन दीक्षा धारण कर ली। इनके साथ में अनेक विद्याधर राजाओं ने भी जिन दीक्षा ली थी। उधर आत्मशुद्धि के लिये अतिबल महाराज कठिन से कठिन तप करने लगे और इधर महाबल भी नीति पूर्वक प्रजा का पालन करने लगा। महाबल की शासन प्रणाली पर समस्त प्रजा मुग्ध-सी थी। धीरे धीरे महाबल का यौवन विकसित होने लगा। जवानी के

समय उसके शरीर की शोभा बड़ी ही विचित्र हो गई थी। उसका सुन्दर रूप देखकर स्त्रियों का मन काम से आकुल हो उठता था। निदान, मन्त्री आदि की सलाह से योग्य कुलीन विद्याधर कन्याओं के साथ उसका विवाह होगया। अब राजा महाबल धर्म अर्थ और कामका समान रूपसे सेवन करने लगा। इसके महामति, संभिन्नमति, शतमति और स्वयंबुद्ध नामके चार मन्त्री थे। ये चारों मन्त्री राज्य कार्यमें बहुत ही चतुर थे। राजा जो भी कार्य करता था वह मन्त्रियोंकी सलाह से ही करता था इसलिए उसके राज्यमें किसी प्रकारकी बाधायें नहीं आने पाती थीं। ऊपर जिन चार मन्त्रियोंका कथन किया है उसमें स्वयंबुद्धको छोड़कर बाकी तीन मन्त्री महा मिथ्यादृष्टि थे इसलिए वे महाबल तथा स्वयंबुद्ध आदिके साथ धार्मिक विषयोंमें विद्वेष रखा करते थे। पर महाबलको राजनीतिमें उनसे कोई बाधा नहीं आती थी। स्वयंबुद्ध मन्त्री सच्चा जिनभक्त था वह हमेशा महाबलके हित चिंतनमें लगा रहता था।

किसी समय अलकापुरीमें राजा महाबलकी वर्ष गांठका उत्सव मनाया जा रहा था। बाजोंके शब्दोंसे आकश गूंज रहा था और चारों ओर स्त्रियोंके सुन्दर संगीत सुनाई पड़ रहे थे। एक विशाल सभामण्डप बनवाया गया था जिसकी सजावटके सामने इन्द्रभवनकी भी सजावट फीकी लगती थी। उस मण्डपमें सोनेके एक ऊंचे सिंहासन पर महाराज महाबल बैठे हुए थे। उन्हींके आस पास मन्त्री लोग भी बैठे थे। और मण्डपकी शेष जगह दर्शकोंसे खचाखच भरी हुई थी। लोगोंके हृदय आनन्दसे उमड़ रहे थे। विद्वानोंके व्याख्यान और तत्व चर्चाओंसे वह सभा बहुत ही भली मालूम होती है। समय पाकर महामति, संभिन्नमति और शतमति मन्त्रियोंने अनेक कल्पित युक्तियोंसे जीव, अजीवका खण्डन कर दिया, स्वर्गमोक्षका अभाव बतलाया तथा मिथ्यात्वको बढ़ानेवाली अनेक विपरीत क्रियाओंका उपदेश दिया जिससे समस्त सभामें क्षोभ मच गया और लोग आपसमें काना फूंसी करने लगे। यह देख राजासे आज्ञा लेकर स्वयंबुद्ध मन्त्री खड़े हुए। स्वयंबुद्धके खड़े होते सब हो हल्ला शान्त होगया लोग चुप चाप उनका व्याख्यान सुनने लगे। स्वयंबुद्धने अनेक युक्तियोंसे जीव अजीव आदि तत्वोंका समर्थन किया तथा

स्वर्ग, मोक्ष आदि परलोकका सद्भाव सिद्ध कर दिखाया। तत्व प्रतिपादनके विषयमें स्वयंबुद्ध मन्त्रीके अनोखे ढंग और अकाट्य युक्तियोंसे सब लोग मोहित हो गए। और धन्य धन्य कहने लगे। इसी समय स्वयंबुद्धने पाप और धर्मका फल बताते हुए राजा महाबलको लक्ष्य कर चार कथायें कहीं थीं जो संक्षेपसे नीचे लिखी जाती हैं।

राजन्! कुछ समय पहले आपके निर्मल वंशमें एक अरविन्द नामके राजा हो गये हैं। उनकी स्त्रीका नाम विजया देवी था। विजयाके दो पुत्र थे पहला हरिचन्द्र और दूसरा कुरुविन्द। ये दोनों पुत्र बहुत ही विद्वान थे। राजा अरविन्द दीर्घसंसारी जीव थे। इसलिये उनका चित्त हमेशा पाप कार्योंमें ही लगा रहता था और इसीके फल स्वरूप वे नरक आयुका बंध कर चुके थे। आयुके अन्त समय अरविंदको दाहज्वर हो गया जिसकी दाहसे वे बहुत ही व्याकुल होने लगे। रोगकी बहुत कुछ चिकित्सायें की गई पर उन्हें आराम नहीं हुआ। पापके उदयसे उनकी समस्त विद्यायें भी नष्ट हो गई थीं। उन्होंने उत्तर कुरुक्षेत्रके सुहावने बगीचोंमें घूमना चाहा परन्तु आकाशगामिनी विद्याके नष्ट हो जानेसे उन्हें लाचार हो रुक जाना पड़ा। बड़े पुत्र हरिचन्द्रने अपनी विद्यासे उन्हें उत्तर कुरु भेजना चाहा पर जब उसकी भी विद्या कामयाब नहीं हुई तब राजा हताश हो शय्यापर पड़ा रहा।

एक दिन दीवाल पर दो छिपकुली लड़ रही थीं। लड़ते लड़ते उनमेंसे एकको पूंछ टूट गई जिससे खूनकी दो चार बूंदें राजाके शरीर पर पड़ीं। खूनकी बूंदोंके पड़ते ही राजाको कुछ शान्ति मालूम हुई इसलिए उनने समझा कि यदि हम खूनकी बावड़ीमें नहावें तो हमारा रोग दूर हो सक्ता है। यह विचार कर लघु पुत्र कुरुविन्दसे खूनकी बावड़ी बनवानेके लिए कहा। कुरुविंद, पिताका जितना आज्ञाकारी था उससे कहीं अधिक धर्मात्मा था। इसलिए उसने पिताकी आज्ञानुसार एक बावड़ी बनवाई पर उसे खूनसे न भर कर लाखके लाल रंगसे भरवा दिया। और पितासे जाकर कह दिया कि आपके कहे अनुसार बावड़ी तैयार है। खूनकी बावड़ी देखकर राजा अरविन्द बहुत ही हर्षित हुए और नहानेके लिए उसमें कूद पड़े। पर ज्यों ही उन्होंने कुरला

किया त्योंही उन्हें मालूम होगया कि यह खून नहीं किन्तु लाखका रंग है। कुरुविन्दके इस कार्यपर उन्हें इतना क्रोध आया कि वे तलवार लेकर उसे मारनेके लिए दौड़े पर बीमारीके कारण अधिक नहीं दौड़ सके इसलिए बीचमें ही अपनी तलवार पर गिर पड़े। तलवारकी धारसे राजाका उदर विदीर्ण हो गया जिससे वे मरकर नरक गतिमें जा पहुंचे। सच है—मरते समय प्राणियोंके जैसे अच्छे बुरे भाव होते हैं वे वैसी ही गतिको प्राप्त होते हैं।

[३]

नरेन्द्र ! कुछ समय पहले आपके इसी वंशमें एक दण्ड नामके राजा हो गए हैं जिन्होंने अपने प्रचण्ड पराक्रमसे समस्त विद्याधरोंको वशमें कर लिया था। यद्यपि राजा दण्ड शरीरसे बूढ़े हो गए थे तथापि उनका मन बूढ़ा नहीं हुआ था। वे रात दिन विषयोंकी चाहमें लगे रहते थे। उनके एक मणिमाली नामका आज्ञाकारी पुत्र था। जीवनकेशेष समयमें राज्यका भार मणिमालीको सौंपकर आप अंतःपुरमें रहने लगे और अनेक तरहके भोग भोगने लगे। किसी समय तीव्र संक्लेशभावसे राजा दण्डका मरण हो गया। मरकर वे अपने भण्डारमें विशालकाय अजगर हुए। वह अजगर मणिमालीके सिवाय भण्डारमें किसी दूसरेको नहीं आने देता था। एक दिन मणिमालीने इस अजगरका हाल किन्हीं मुनिराजसे कहा। मुनिराजने अवधि ज्ञानसे जानकर कहा कि यह अजगर आपके पिता दण्ड विद्याधरका जीव है। आर्त ध्यानके कारण उन्हें यह कुयोनि प्राप्त हुई है। यह सुनकर मणि माली झटसे भण्डारमें गया और वहां अजगरके सामने बैठकर उसे ऐसे ढङ्गसे समझाने लगा कि उसे अपने पूर्व भवका स्मरण हो गया और विषयोंकी लालसा छूट गई। पुत्रके उपदेशसे उसने सब वैरभाव छोड़ दिया तथा आयुके अन्तमें सन्यास पूर्वक मरण कर देव पर्याय पाई। स्वर्गसे आकर देवने मणिमालीके गलेमें मणियोंका एक सुन्दर हार पहिनाया था जोकि आज आपके भी गलेमें शोभायमान है। सच है—विषयोंकी अभिलाषासे मनुष्य अनेक तरहके कष्ट उठाते हैं और विषयोंके त्यागसे स्वर्ग आदिके सुख पाते हैं।

[३]

राजन् ! आपके बाबा शतबल भी चिरकालतक राज्य-सुख भोगनेके बाद आपके पिता अतिबलके लिये राज्य देकर धर्मध्यान करने लगे थे और आयुके अन्तमें समाधि पूर्वक शरीर छोड़कर माहेन्द्र स्वर्गमें देव हुए थे। आपको भी ख्याल होगा जब हम दोनों मेरु पर्वतपर नन्दन वनमें खेल रहे थे, तब देव शरीरधारी आपके बाबाने कहा था कि "जैन धर्मको कभी नहीं भूलना, यही सब सुखोंका कारन है।"

[४]

इसी तरह आपके पिता अतिबलके बाबा सहस्रबल भी शतबलके लिये राज्य देकर नग्न दिगम्बर हो गये थे और कठिन तपस्याओंसे आत्मशुद्धि कर शुक्ल ध्यानके प्रतापसे परमधाम-मोक्ष स्थानको प्राप्त हुए थे।

ये कथाएं प्रायः सभी लोगोंके परिचित और अनुभूत थीं इसलिये स्वयं बुद्ध मन्त्रीकी ओर किसीको अविश्वास नहीं हुआ। राजा और प्रजाने स्वयं बुद्धका खूब सत्कार किया। महामति आदि तीन मन्त्रियोंके उपदेशसे जो कुछ विप्लव फैल गया था वह स्वयं बुद्ध के उपदेशसे दूर हो गया था। इस तरह राजा महाबलकी वर्षगांठका जलशा हर्ष ध्वनिके साथ समाप्त हुआ।

एक दिन स्वयं बुद्ध मन्त्री अकृत्रिम चैत्यालयोंकी वन्दना करनेके लिये मेरु पर्वतपर गये और वहांपर समस्त चैत्यालयोंके दर्शनकर अपने आपको सफल मनुष्य जानते हुए सौमनस वनमें बैठे ही थे कि इतनेमें उन्हें पूर्व विदेह क्षेत्रके अन्तर्गत कच्छ देशके अरिष्ट नामक नगरसे आये हुए दो मुनिराज दिखाई पड़े। उन मुनियोंमें एकका नाम आदित्यमति और दूसरेका अरिंजय था। स्वयं बुद्धने खड़े होकर दोनों मुनिराजोंका स्वागत किया और विनय पूर्वक प्रणामकर तत्वोंका स्वरूप पूछा। जब मुनिराज तत्वोंका स्वरूप कह चुके तब मन्त्रीने उनसे पूछा—'हे नाथ ! हमारी अलका नगरीमें सब विद्याधरोंका अधिपति जो महाबल नामका राजा राज्य करता है वह भव्य है या अभव्य ? मन्त्रीका प्रश्न सुनकर आदित्य गति मुनिराजने कहा कि हे सचिव ! राजा महाबल भव्य है क्योंकि भव्य ही तुम्हारे वचनोंमें विश्वास कर सकता है।

तुम्हें महावल बहुत ही श्रद्धाकी दृष्टिसे देखता है। वह दशमें भवमें द्वीपके भरत क्षेत्रमें युगका प्रारम्भ होनेपर ऋषभनाथ नामका पहला तीर्थंकर होगा, सकल सुरेन्द्र उसकी सेवा करेंगे और वह अपने दिव्य उपदेशसे संसार के समस्त प्राणियोंका कल्याण करेगा। वही उसके मुक्त होनेका समय है। अब मैं महावलके पूर्वभवका वर्णन करता हूँ जिसमें कि इसने सुख भोगनेकी इच्छासे धर्मका बीज बोया था। सुनिये:—

पश्चिम विदेहमें श्री गन्धिल नामका देश है और उसमें सिंहपुर नामका एक सुन्दर नगर है। वहां किसी समय श्रीषेण राजा राज्य करते थे। उनकी स्त्रीका नाम सुन्दरी था। राजा श्रीषेणके जयवर्मा और श्री वर्मा नामके दो पुत्र थे उनमें श्रीवर्मा नामका छोटा पुत्र सभीको प्यारा था। राजाने प्रजाके आग्रहसे लघु पुत्र श्रीवर्माके लिये राज्य दे दिया और आप धर्म ध्यानमें लीन हो गये। ज्येष्ठ पुत्र जयवर्मासे अपना यह भारी अपमान नहीं सहा गया इसलिए वह संसारसे उदास होकर किसी वनमें दिगम्बर मुनि हो गया और विषय भोगोंसे विरक्त होकर उग्र तप तपने लगा। एक दिन जहाँपर जयवर्मा मुनिराज ध्यान लगाये हुए बैठे थे, वहींसे आकाशमें विहार करता हुआ कोई विद्याधरोंका राजा आ निकला। ज्योंही जयवर्माकी दृष्टि उसपर पड़ी त्योंही उसे राजा बननेकी अभिलाषाने फिर घर दवाया। उधर जयवर्मा विद्याधर राजाके भोगोंकी प्राप्तिमें मन लगा रहे थे इधर वामीसे निकले हुए एक सांपने उन्हें डस लिया। जिससे वे मरकर महावल हुए हैं। पूर्वभवकी वासनासे महावल अब भी रात दिन भोगोंमें लीन रहा करता है।

इस प्रकार पूर्वभव सुनानेके बाद मुनिराज आदित्य गतिने स्वयं बुद्ध मंत्रीसे कहा कि आज राजा महावलने स्वप्न देखा है कि मुझे पहले सभिन्न गति आदि मन्त्रियोंने जबर्दस्ती कीचड़में गिरा दिया है फिर स्वयं बुद्ध मन्त्रीने उन दुष्टोंको धमकाकर मुझे कीचड़से निकाला और सोनेके सिंहासनपर बैठकर निर्मल जलसे नहलाया है, तथा एक दीपककी ज्वाला प्रति क्षण क्षीण होती जा रही है। महावल इन स्वप्नोंका फल तुमसे अवश्य पूछेगा सो तुम जाकर पूछनेके पहले तो कह दो कि पहले स्वप्नसे आपका सौभाग्य प्रकट होता है

और दूसरे स्वप्नसे आपकी आयु एक माह बाकी रह गई मालूम होती है। ऐसा करनेसे तुम्हारे ऊपर उसका दृढ़ विश्वास हो जावेगा तब तुम उसे जो भी हितका मार्ग बतलाओगे उसे वह शीघ्र ही स्वीकार कर लेवेगा। इतना कह कर दोनों मुनिराज आकाश मार्गसे विहार कर गये और स्वयं बुद्ध मन्त्री भी हर्षित होते हुए अलकापुरीको लौट आये। वहां राजा महाबल स्वयं बुद्धकी प्रतीक्षा कर रहे थे तो स्वयं बुद्धने शीघ्र ही जाकर उनके दोनों स्वप्नोंका फल जैसा कि मुनिराजने बतलाया था, कह सुनाया तथा समयोपयोगी और भी धार्मिक उपदेश दिया। मन्त्रीके कहनेसे महाबलको दृढ़ निश्चय हो गया कि अब मेरी आयु सिर्फ एक माहकी बाकी रह गई है। वह समय आष्टान्हिक व्रतका था इसलिये उसने जिन मन्दिरमें आठ दिनतक खूब उत्सव किया। और शेष बाईस दिनका सन्यास धारण किया। उसे सन्यासी विधि स्वयं बुद्ध मन्त्री बतलाते थे। अन्तमें पंच नमस्कार मन्त्रका जाप करते हुए महाबलने नश्वर मनुष्य शरीरका परित्याग कर ऐशान स्वर्गके श्रीप्रभ विमानमें देव पर्यायका लाभ किया। वहां उसका नाम ललितांग था। जब ललितांग देवने अवधिज्ञानसे अपने पूर्वभवका विचार किया तब उसने स्वयं बुद्धका अत्यन्त उपकार माना और अपने हृदयमें उसके प्रति कृतज्ञता प्रकट की। पूर्वभवके संस्कारसे उसने वहांपर भी जिन पूजा आदि धार्मिक कार्योंमें प्रमाद नहीं किया था। इस प्रकार ऐशान स्वर्गमें स्वयं प्रभा, कनक प्रभा, कनक लता, विद्युल्लता आदि चार हजार देवियोंके साथ अनेक प्रकारके सुख भोगते हुए ललितांग देवका समय बीतने लगा। ललितांगकी आयु अधिक थी इसलिये उसके जीवन में अल्प आयु वाली कितनी ही देवियां नष्ट हो जातीं थीं और उनके स्थानमें दूसरी देवियां उत्पन्न हो जाती थीं। इस तरह सुख भोगते हुए ललितांगकी आयु जब कुछ पल्योंकी शेष रह गई तब उसे एक स्वयं प्रभा नामकी देवी प्राप्त हुई थी। ललितांगको स्वयं प्रभा सी सुन्दरी देवी जीवन भर न मिली थी इसलिये वह उसे बहुत चाहता था और वह भी ललितांगको बहुत अधिक चाहती थी। दोनों एक दूसरेपर अत्यन्त मोहित थे। परन्तु किसीके सब दिन एकसे नहीं होते धीरे धीरे ललितांग देवकी दो सागरकी आयु समाप्त होनेको आई

जब उसकी आयु सिर्फ छह माहकी बाकी रह गई तब उसके कंठमें पड़ी हुई माला मुरझा गई, कल्प वृक्ष कान्ति रहित हो गये और मणि मुक्ता आदि सभी वस्तुएं प्रायः निष्प्रभसी हो गईं। यह सब देखकर उसने समझ लिया कि मेरी आयु अब छह माहकी ही बाकी रह गई है। इसके बाद मुझे अवश्य ही नर-लोकमें पैदा होना पड़ेगा। प्राणी जैसे काम करते हैं वैसा ही फल पाते हैं। मैंने अपना समस्त जीवन भोग विलासोंमें बिता दिया। अब कमसे कम इस शेष आयुमें मुझे धर्म साधना करना परम आवश्यक है। यह विचार कर पहले ललितांग देवने समस्त अकृत्रिम चैत्यालयोंकी बन्दना की फिर अच्युत स्वर्गमें स्थित जिन प्रतिमाओंकी पूजा करता हुआ समता सन्तोषसे समय बिताने लगा। अन्तमें समाधि पूर्वक पंच नमस्कार मन्त्रका जाप करते हुए उसने देव शरीरको छोड़ दिया।

जम्बूद्वीपके सुमेरु पर्वतसे पूर्वकी ओर विदेह क्षेत्रमें एक पुष्कलावती देश है उसकी राजधानी उत्पलखेट नामकी नगरी है। उस समय वहां वज्रबाहु राजा राज्य करते थे। उसकी स्त्रीका नाम वसुन्धरा था। राजा वज्रबाहु वसुन्धरा रानीके साथ भोग भोगते हुए इन्द्र-इन्द्राणीकी तरह आनन्दसे रहते थे। जिसका कथन ऊपर कर आये हैं वह ललितांग देव स्वर्गसे चयकर इन्हीं वज्रबाहु और वसुन्धरा राज दम्पतीके वज्रजंघ नामका पुत्र हुआ। वज्रजंघ अपनी मनोरम चेष्टाओंसे सभीको हर्षित करता था। वह चन्द्रमाकी नांई मालूम होता था क्योंकि चन्द्रमा जिस तरह कुमुदोंको विकसित करता है उसी तरह वज्रजंघ भी अपने कुटुम्बी कुमुदोंको विकसित-हर्षित करता था। चन्द्रमा जिस तरह कलाओंसे शोभित होता है उसी तरह वज्रजंघ भी अनेक कलाओं चतुराइयोंसे भूषित था। चन्द्रमा जिस प्रकार कमलोंको संकुचित करता है उसी प्रकार वह भी शत्रु रूपी कमलोंको संकुचित शोभाहीन करता था और चन्द्रमा जिस तरह चांदनीसे सुहावना जान पड़ता है उसी तरह वज्रजंघ भी मुसकान रूपी चांदनीसे सुहावना जान पड़ता था। ललितांगका मन स्वयं प्रभा देवीमें आसक्त था, इसलिये वह किसी दूसरी स्त्रियोंसे प्रेम नहीं करता था। बस उसी संस्कारसे वज्रजंघका चित्त किसी दूसरी स्त्रियोंकी ओर नहीं झुकता

था। उसने जवान होकर भी अपना विवाह नहीं करवाया था। वह हमेंशा शास्त्रोंके अध्ययन तथा किसी नई चीजकी खोजमें लगा रहता था।

अब स्वयं प्रभा जिसे कि ललिताङ्ग देव छोड़कर चला आया था, का उपाख्यान सुनिये। प्राणनाथ ललितांग देवके मरनेपर स्वयंप्रभाको बहुत दुःख हुआ, जिससे वह तरह तरहके विलाप करने लगी। यह देखकर एक दृढ़ वर्मा जोकि ललितांगका घनिष्ठ मित्र था, नामके देवने उसे खूब समझाया और अच्छे अच्छे कार्योंका उपदेश दिया। उसके उपदेशसे स्वयं प्रभाने पति विरह से उत्पन्न हुए दुःखको कुछ शान्त किया और अपने शेष जीवनके छह मास जिन पूजन, चैत्य बन्दन आदि शुभ कर्मोंमें व्यतीत किये। मृत्युके समय सौमनस वनमें शोभित किसी चैत्य वृक्षके नीचे पंच परमेष्ठीका ध्यान करती हुई स्वयं प्रभाने देवी पर्यायसे छुट्टी पाई।

"जम्बूद्वीपके पूर्व विदेह क्षेत्रमें कोई पुण्डरीकिणी नामकी नगरी है। बज्रदन्त राजा उसका पालन करते थे। उसकी स्त्रीका नाम लक्ष्मीमती था" स्वयं प्रभा देवी स्वर्गसे चयकर इन्हीं राज दम्पतीके श्रीमती नामकी पुत्री हुई श्रीमतीकी सुन्दरता देखकर लोग कहा करते थे कि इसे ब्रह्माने चन्द्रमाकी कलाओंसे बनाया है। किसी समय श्रीमती छतके ऊपर रत्नोंके पलंगपर पड़ी सो रही थी। उसी समय वहांके आकाशमें जय २ शब्द करते हुए बहुतसे देव निकले। वे देव, पुण्डरीकिणी पुरीके किसी उद्यानमें विराजमान यशोधर गुरुके केवल ज्ञान महोत्सवमें शामिल होनेके लिये जा रहे थे। उन देवोंके आगे हजारों बाजे बजते जाते थे जिनका गम्भीर शब्द सब ओर फैल रहा था। देवोंकी जयजयकार और बाजोंकी उच्च ध्वनिसे श्रीमतीकी नींद खुल गई। नींद खुलते ही उसकी दृष्टि देवोंपर पड़ी जिससे उसे उसी समय अपने पूर्व भवोंका स्मरण हो आया। अब ललितांग देव उसकी आंखोंके सामने झूलने लगा और स्वर्ग लोककी सब अनुभूत क्रियायें उसकी नज़रमें आने लगीं। वह बार बार ललितांग देवका स्मरण कर विलाप करने लगी और विलाप करती करती मूर्छित भी हो गयी। सखियोंने अनेक शीतल उपचारोंसे सचेत कर अब उससे मूर्छित होनेका कारण पूछा तब वह चुपचाप रह गयी और चारों ओर

देखने लगी। जब लक्ष्मीमती और बज्रदन्तको श्रीमतीके इस हालका पता चला तब वे दौड़े हुए उसके पास आये। उन्होंने उससे मूर्छित होनेका कारण पूछा पर वह कुछ नहीं बोली सिर्फ ग्रह ग्रस्तकी तरह चारों ओर निहारती रही पुत्रीकी वैसी अवस्था देखकर राजा रानीको बहुत ही दुःख हुआ। कुछ देर बाद उसकी चेष्टाओंसे राजा बज्रदन्त समझ गये कि इसके दुःखका कारण इसके पूर्व भवका स्मरण है और कुछ नहीं। उन्होंने यह विचार लक्ष्मीमतीको भी सुनाया। इसके बाद श्रीमतीको समझानेके लिये एक पण्डित नामकी धायको नियुक्त कर राजा और रानी अपने अपने स्थानपर चले गये।

श्रीमतीके पाससे वापिस आते ही राजाको पता चला कि आयुधशालामें चक्ररत्न प्रकट हुआ है। और पुरीके बाह्य उद्यानमें यशोधर महाराजके लिये केवल ज्ञान प्राप्त हुआ है। 'दिग्विजयके लिये जाऊं या यशोधर महाराजके ज्ञान कल्याणके महोत्सवमें शामिल होऊं' इन दो विचारोंने राजाकी चित्त-वृत्तिको क्षण एकके लिये दो भागोंमें विभाजित कर दिया। पर पहले धर्म कार्यमें ही शामिल होना चाहिये, ऐसा विचारकर राजा बज्रदन्त यशोधर महा राजके ज्ञानोत्सवमें शामिल होनेके लिये गये। वनमें पहुंचकर राजाने भक्ति-पूर्वक मुनिराजके चरणोंमें प्रणाम किया और अपना जन्म सफल माना। वहां विचित्र बात यह हुई थी कि राजाने ज्योंही पूज्य मुनिराजके चरणोंमें प्रणाम किया था त्योंही उसे अवधिज्ञान प्राप्त हो गया था। अवधि ज्ञानके प्रतापसे राजा बज्रदन्त अपने तथा श्रीमती आदिके समस्त पूर्वभव स्पष्ट रूपसे जान गये थे। जिससे वे श्रीमतीके विषयमें प्रायः निश्चिन्त हो गये थे। मुनिराजके पाससे वापिस आकर बज्रदन्त चक्रवर्ती दिग्विजयके लिये गये।

इधर पण्डिता धाय श्रीमतीको घरके बगीचेमें ले जाकर अनेक तरहसे उसका मन बहलाने लगी। मौका देखकर पण्डिताने उससे मूर्छित होनेका कारण पूछा। अबकी बार श्रीमती पण्डिताका आग्रह न टाल सकी, वह बोली सखी! जब मैं छतपर सो रही थी तब वहाँसे जयजय शब्द करते हुए कुछ देव निकले, उनके कोलाहलसे मेरी आंख खुल गई। जब मेरी निगाह उन देवों पर पड़ी तब मुझे अपने पूर्व भवका स्मरण हो आया। बस, यही मेरे दुःखका

कारण है। मैं इसे स्पष्ट रूपसे आप लोगोंके सामने कहना चाहती हूं पर लज्जा मुझे कहने नहीं देती। अब मैं देखती हूं कि लज्जासे काम नहीं चलेगा इसलिये क्षमा करना, मैं आज लज्जाका परदा फाड़कर अपनी मनोवृत्ति प्रकट ... हूं। सुनती हो न?

धातकीखण्ड द्वीपकी पूर्व दिशामें जो मेरु पर्वत है, उससे पश्चिमकी विदेह क्षेत्रमें एक गान्धिल नामका देश है उसके पाटलिगांवमें एक ... नामका वणिक रहता था। उसकी स्त्रीका नाम सुदति था। इस वणिक ... के नन्द, नन्दिमित्र, नन्दिषेण, वरसेन और जयसेन नामके पांच पुत्र ... मदन कान्ता और श्रीकान्ता नामकी दो पुत्रियां थी। उन दो पुत्रियोंमेंसे ... छोटी पुत्री थी। लोग मुझको निर्नामिका भी कहा करते थे। किसी समय वह... के अम्बर तिलक पर्वतपर पिहितास्रव नामके एक मुनिराज आये। मैंने जाक... उनसे विनयपूर्वक पूछा कि भगवन्! मैं इस दरिद्र कुलमें पैदा क्यों हुई हूं तब मुनिराज बोले—

इसी गान्धिल देशके पलाल पर्वत गांवमें एक देवल नामका मनुष्य रहत... था उसकी स्त्रीका नाम सुमति था। तुम पहले इसीके घर धनश्री नाम... प्रसिद्ध लड़की हुई थीं। एक दिन तुम्हारे बगीचेमें कोई समाधिगुप्त नाम... मुनीश्वर आये थे सो तुमने उनके सामने मरे हुए कुत्तेका कलेवर डाल दिय... जिससे वे कुछ क्रुद्ध हो गये। तब डरकर तुमने उनसे क्षमा मांगीं। उस क्षम... से तुम्हारे उस पापमें कुछ न्यूनता हो गयी थी जिससे तुम इस दरिद्र कुलमें उत्पन्न हो सकी हो नहीं तो मुनियोंके तिरस्कारसे नरक गतिमें जाना पड़ता यह कह चुकनेके बाद मुनिराज पिहिताश्रवने मुझे जिनेन्द्र गुण सम्पत्ति और श्रुतज्ञान नामके व्रत दिये जिनका मैंने यथाशक्ति पालन किया। उन व्रतोंके प्रभावसे मैं मरकर ऐशान स्वर्गमें ललितांग देवकी अंगना हुई थी। वहां मेरा नाम स्वयंप्रभा था। हम दोनों एक दूसरेको बहुत अधिक चाहते थे। पर मेरे दुर्भाग्यसे ललितांग देवकी मृत्यु हो गयी। उनकी मृत्युसे मुझे बहुत ही दुःख हुआ पर करती ही क्या? जिनेन्द्र प्रतिमाओंकी पूजा करते ... मैंने अपनी अवशेष आयु पूर्ण की और वहांसे चयकर यह श्रीमती हुई हूं

वोंका आगमन देखकर आज मुझे ललितांग देवका स्मरण हो आया है बस, ही मेरे दुःखका कारण है। अब ललिताँगके बिना मुझे एक क्षण भी वर्षके मान मालूम होता है और यह दुष्ट काम अपने पैने वाणोंसे मुझको घायल र रहा है। यह कहकर श्रीमतीने पण्डितासे कहा कि प्यारी सखि! तुम्हारे ोते हुए भी क्या मुझे दुख होगा? चांदनीके छिटकनेपर भी क्या कुमुदिनी ःखी होती है? मेरा विश्वास है कि आप हमारे ललितांगकी खोजकर नके साथ मुझे अवश्य हो मिला देवेगी। देखो, मैंने इस पटियेपर अपने पूर्व वके चित्र अङ्कित किए हैं इन्हें दिखलाकर आप सरलतासे ललितांगकी खोज र सकती हैं। यह सुनकर पण्डिता धायने श्रीमतीको खूब आश्वासन दिया ौर उसके पाससे चित्र पट लेकर ललितांगकी खोज करनेके लिये चल दिया ह सबसे पहले महापूत चैत्यालयको गई और वहां जिनेन्द्र देवको प्रणाम कर चेत्रशालामें चित्रपट फैलाकर बैठ गई। प्रायः चैत्यालयमें सभी लोग आते थे सलिये पण्डिताके अनोखे चित्रपटपर सभीकी नजर पड़ती थी पर कोई उसका हस्य नहीं समझ पाते थे। इसके बाद जो कुछ हुआ वह आगे लिखा जावेगा।

श्रीमतीके पिता वज्रदन्त चक्रवर्ती जो कि श्रीमतीका उक्त हाल होनेके ाद दिग्विजयके लिए चले गये थे अबतक लौटकर वापिस आगये। यद्यपि वे पने समस्त शत्रुओंको जीत कर आये थे इसलिये प्रसन्न चित्त थे तथापि ीमतीकी चिन्ता उन्हें रहकर म्लान मुख बना देती थी। मौका पाकर वज्रद न्तने श्रीमतीको अपने पास बुलाकर कुशल प्रश्न पूछा और फिर कहने लगे कि यारी बेटी! मुझे यशोधर महाराजके प्रसादसे अवधि ज्ञान प्राप्त हुआ है इस- लिये मैं अपने तुम्हारे और तुम्हारे प्रियभर्त्ता ललितांगदेवके ही पूर्व भव ानने लगा हूँ। मैं यह भी जान गया हूँ कि तुम्हें देवोंके देखनेसे अपने पूर्व- भवका स्मरण हो आया है जिससे तुम अपने हृदयवल्लभ ललितांगदेवका बार ार स्मरण कर दुःखी हो रही हो। पर अब निश्चिंत होओ और पहलेकी रह आनन्दसे रहो। तुम्हारा ललितांग पुष्कलावती देशके उत्पल खेट नगरमें हनेवाले राजा वज्रबाहु और रानी वसुन्धराके वज्रजंघ नामका पुत्र हुआ है। ोकि हमारा भानेज है। उसके साथ तुम्हारा शीघ्रही विवाह सम्बन्ध होनेवाला

है इसी सिलसिलेमें राजा वज्रदन्तने अपने, श्रीमतीके और ललितांगदेवके कितनेही पूर्वभवोंका वृत्तान्त सुनाया था। जिन्हें सुनकर श्रीमतीको अपार हर्ष हुआ। 'मैं अब बहनोई वज्रबाहु बहिन वसुन्धरा और भानेज वज्रजङ्घको लेनेके लिये जा रहा हूँ वे मुझे कुछ दूरी पर रास्तामें ही मिल जावेंगे' यह कहकर चक्रवर्ती श्रीमतीके पाससे गये ही थे कि इतनेमें पण्डिता धाय, जोकि श्रीमतीका चित्रपट लेकर ललितांगदेवको खोजनेके लिये गई हुई थी, हंसती हुई वापिस आगई और श्रीमतीके सामने एक चित्र पट रखकर बैठ गई। यद्यपि पिताके कहनेसे उसे ललितांगदेवका पूरा पता लग गया था तथापि उसने कौतुक पूर्वक पण्डितासे उसका सब हाल पूछा उत्तरमें पण्डिता बोली—सखि! मैं यहांसे तुम्हारा चित्र पट लेकर महापूत जिनालय को गई थी वहां जिनेन्द्र देवको प्रणाम कर वहांकी चित्रशालामें बैठ गई। मैंने वहांपर ज्योंही तुम्हारा चित्र पट फैलाया त्योंही अनेक युवक क्या है? क्या है? कहकर उसे देखने लगे। पर उसका रहस्य किसीकी समझमें नहीं आया। कुछ मनचले लोग तुम्हें पानेकी इच्छासे झूठ मूठ ही उसका हाल बतलाते थे। पर मैं उन्हें सहज ही में चुप कर देती थी। कुछ समय बाद वहां एक युवा आया जो देखनेमें साक्षात्कामेश्वर सा लगता था। उसने एक-एक करके श्रीमतीके चित्रपटका समस्त हाल बतला दिया। देव समूहके देखनेसे यहांपर जैसी तुम्हारी अवस्था हो गई थी वहां चित्र पट देखनेसे ठीक वैसी ही अवस्था उसकी हो गई। वह देखते देखते मूर्छित होकर जमीन पर गिर पड़ा। जब बन्धु वर्गने उसे सचेत किया तब वह मुझसे पूछने लगा—भद्रे! कहो, यह चित्रपट किसका है? किस देवीके मनोहर हाथोंसे इसका निर्माण हुआ है? यह मुझे बहुत ही प्यारा लगता है। तब 'मैंने उससे कहा कि यह तुम्हारी मामी लक्ष्मीमतीकी पुत्री श्रीमतीके कोमल हाथोंसे रचा गया है।' मैंने उसकी चेष्टाओंसे निश्चय कर लिया था, कि यही ललितांगका जीव है। उसके बन्धु वर्गसे मुझे मालूम हुआ है कि वह पुष्कलावती देशके राजा वज्रबाहुका पुत्र है। लोग उसे वज्रजङ्घ नामसे पुकारते हैं। वज्रजंघने तुम्हारा चित्र पट अपने पास रख लिया है और यह दूसरा चित्र पट मेरे द्वारा तुम्हारे पास भेजा है। कैसा चित्र पट है सखि? इतना कहकर

पण्डिता चुप हो रही। श्रीमतीने कृतज्ञता भरी नजरसे उसकी ओर देखा और फिर उस नूतन चित्र पटको हृदयसे लगा लिया।

इधर वज्रदन्त चक्रवर्तीकी राजा वज्रबाहु वगैरहसे रास्तामेंही भेंट हो गई। चक्रवर्ती, बहनोई वज्रबाहु, बहिन बसुन्धरा और भानजे वज्रजंघको बड़े आदर सत्कारसे अपने घर लिवा लाये। जब उन्हें घरपर रहते हुये कुछ दिन हो गये तब चक्रवर्तीने वज्रबाहुसे कहा कि महाशय! आप लोगोंके आनसे मुझे जो हर्ष हुआ है उसका वर्णन करना कठिन है। यदि आप लोग मुझपर प्यार करते हैं तो मेरे घरमें आपके योग्य जो भी उत्तम बस्तु हो उसे स्वीकार कीजियेगा। तब वज्रबाहुने कहा—यद्यपि आपके प्रसादसे मेरे पास सब कुछ है—किसी वस्तुकी आकांक्षा नहीं है तथापि यदि आपकी इच्छा है तो चिरंजीव वज्रजंघके लिये आप अपनी पुत्री श्रीमती दे दीजियेगा। चक्रवर्ती तो यह चाहते ही थे उन्होंने झटसे बहनोईकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और विवाहकी तैयारी करनेके लिये सेवकोंको आज्ञा दे दी। सेवकोंने सुन्दर विवाह मण्डप बनाया तथा पुण्डरीकिणी पुरीको ऐसा सजाया कि उसके सामने इन्द्रकी अमरावती भी लजाती थी। निदान शुभमुहूर्तमें वज्रजंघ और श्रीमतीका विधि पूर्वक पाणिग्रहण हो गया। पाणिग्रहणके बाद वर वधू अनेक जन समूहके साथ महापूत चैत्यालयको गये और वहां जिनेन्द्रदेवकी अर्चा एवं स्तवन कर राजमन्दिरको लौट आये। वहां चक्रवर्ती बत्तीस हजार मुकुटबद्ध राजाओंने वज्रजंघ और श्रीमतीका स्वागत किया। विवाहके बाद वज्रजंघने कुछ समयतक अपनी ससुरालमें ही रहकर आमोद प्रमोदसे समय व्यतीत किया था। इसी बीचमें राजा वज्रबाहुने अपनी अनुन्दरी नामकी पुत्रीका चक्रवर्तीके ज्येष्ठ पुत्र अमिततेजके साथ विवाह कर दिया था। जब वज्रजंघ अपने घर वापिस जाने लगे तब चक्रवर्तीने हाथी, घोड़ा, सोना चांदी, मणि मुक्ता आदिका बहुमूल्य दहेज देकर उनके साथ श्रीमतीको बिदा करदी। यद्यपि श्रीमती और वज्रजंघके विरहसे चक्रवर्तीका अन्तःपुर तथा सकल पुरवासी जन शोकसे विह्वल हो उठे थे तथापि 'जिनका संयोग होता है उनका वियोग भी अवश्य होना है' ऐसा सोचकर कुछ समय बाद शान्त हो गये थे। अनेक वन-उपवनोंकी शोभा निहा-

रते हुये वज्र जंघ कुछ दिनोंमें अपनी राजधानी उत्पलखेट नगरीको प्राप्त हुये। उस समय राजकुमार वज्र जंघ और उनकी नवविवाहिता पत्नीके शुभ ग[illegible] उपलक्ष्यमें उत्पलखेट नगरी खूब सजाई गई थी। महलोंकी शिखरों पर रत्नोंकी ध्वजाएं फहरा रही थीं और राजमार्ग मणियोंकी वन्दनमालाओंसे वि[illegible] षित किये गये थे। सड़कों पर सुगन्धित जल सींचकर वेला, जुही, [illegible] आदिमें बिखेरे गये थे। नववधू श्रीमतीको देखनेके लिये मकानोंकी [illegible] स्त्रियां एकत्रित हो रही थीं और जगह जगह पर नृत्य, गीत, वादित्र [illegible] सुन्दर शब्द सुनाई पड़ते थे। वज्रजंघने श्रीमतीके साथ राजभवनमें [illegible] किया। माता पिताके वियोगसे जब कभी श्रीमती दुखी होती थी तब व[illegible] अपनी लीलाओं और रस भरे शब्दोंसे उसके दुःखको क्षण भरमें दूर कर[illegible] थे। श्रीमतीके साथ उसकी प्यारी सखी पण्डिता भी आई थी इसलिये श्रीमतीको कभी दुखी नहीं होने देती थी। धीरे धीरे बहुत समय बीत ग[illegible] इसी बीचमें क्रम क्रमसे श्रीमतीके पचास युगल अर्थात् सौ पुत्र हुए जो अ[illegible] स्वाभाविक शोभासे इन्द्र पुत्र जयन्तको भी शर्मिन्दा करते थे। उन [illegible] वज्र बाहु और वज्र जंघ आदिने अपने गृहस्थ जीवनको सफल माना था।

किसी समय राजा वज्रबाहु मकानकी छतपर बैठे हुये आकाशकी [illegible] देख रहे थे। ज्योंही वहां उन्होंने क्षण एकमें विलीन होते हुये मेघ [illegible] देखा त्योंही उनके अन्तरङ्ग नेत्र खुल गये। वे सोचने लगे कि—" [illegible] सभी पदार्थ इसी मेघ खण्डकी नांई क्षणभंगुर हैं। मैं इस राज्य विभूतिको [illegible] समझकर व्यर्थ ही इसमें विमोहित हो रहा हूँ। नर भव पाकर भी जिसने [illegible] प्राप्तिके लिये प्रयत्न नहीं किया वह फिर हमेशाके लिए पछताता रहता [illegible] इत्यादि विचार कर वज्रबाहु महाराज संसारसे एक दम उदास होगये अ[illegible] बहुत जल्दी वज्र जंघके लिये राज्य दे, वनमें जाकर किन्हीं आचार्यके [illegible] दीक्षा लेकर तप करने लगे। उनके साथमें श्रीमतीके सौ पुत्र, पण्डिता स[illegible] तथा अनेक राजाओंने भी जिन दीक्षा ग्रहण की थी। उधर मुनिराज वज्र ब[illegible] कुछ समय बाद केवल ज्ञान प्राप्त कर सदाके लिये संसारके बन्धनोंसे छूट गये और इधर पिता तथा पुत्रोंके विरहसे शोकातुर वज्र जंघ नीति पूर्वक प्रजा

पालन करने लगे। अब श्रीमतीके पिता वज्रदन्तका भी कुछ हाल सुनिये।

एकदिन चक्रवर्ती राजसभामें बैठे हुये थे कि मालीने उन्हें एक कमलका फूल अर्पित किया। उस कमलकी सुगन्धिसे चारों ओर भौंरे मंडरा रहेथे। ज्योंही उन्होंने निमीलित कमलको विकसानेका प्रयत्न किया त्योंही उस कमलमें रुके हुए एक मृत भौंरे पर उनकी दृष्टि पड़ी वह भौंरा सुगन्धिके लोभसे सायंकालके समय कमलके भीतर बैठा हुआ था कि अचानक सूर्य अस्त हो गया जिससे वह उसीमें बन्द होकर मर गया था। उसे देखते ही चक्रवर्ती सोचने लगे कि "जब यह भौंरा एक नासिका इन्द्रियके विषयमें आसक्त होकर मर गया है तब जो रात दिन पांचों इन्द्रियोंके विषयोंमें आसक्त हो रहे हैं क्या भौंरेकी तरह मृत्युको प्राप्त न होवेंगे? सच है—संसारमें इन्द्रियोंके विषय प्राणियोंको दुःखी किया करते हैं। मैंने जीवन भर विषय भोगे पर कभी सन्तुष्ट नहीं हुआ।" इत्यादि विचारकर उन्होंने जिन दीक्षा धारण करनेका संकल्प कर लिया। चक्रवर्तीने अपने बड़े पुत्र अमित तेजके लिये राज्य देना चाहा पर जब उसने और उसके छोटे भाईने राज्य लेना स्वीकार नहीं किया तब उन्होंने अमित तेजके पुण्डरीक नामक पुत्रके लिये जिसकी आयु उस समय सिर्फ छह माह की थी राज्य दे दिया और आप अनेक राजाओं, पुत्रों तथा पुरवासियोंके साथ दीक्षित हो गये।

चक्रवर्ती और अमिततेजके विरहसे सम्राज्ञी लक्ष्मीमती तथा अनुन्दरी आदिको बहुत दुःख हुआ। कहां चक्रवर्तीका विशाल राज्य और कहां छह माहका अबोध बालक पुण्डरीक अब इस राज्यकी रक्षा किस तरह होगी? इत्यादि विचार कर लक्ष्मीमतीने दामाद वज्रजंघके लिये एक पत्र लिखा और उसे एक पिटारेमें बन्दकर चिन्ता गति तथा मनोगति नामके विद्याधर दूतोंके द्वारा उनके पास भेज दिया। जब वज्रजंघने पिटारा खोलकर उसमेंका पत्र पढ़ा तब उन्हें बहुत दुःख हुआ। श्रीमतीके दुःखका तो पार ही नहीं रहा। वह पिता और भाइयोंका स्मरण कर विलाप करने लगी पर राजा वज्रजंघ संसारकी परिस्थितिसे भलीभांति परिचित थे इसलिये उन्होंने किसी तरह उसका शोक दूर कर श्रीमतीको धीरज बंधाया। और मैं आता हूँ, कह कर

उन विद्याधर दूतोंको वापिस भेज दिया। कुछ समय बाद राजा वज्रजंघ और श्रीमतीने पुण्डरीकिणी पुरीकी ओर प्रस्थान किया। उनके साथ महामन्त्री मतिवर, पुरोहित आनन्द, सेठ धनमित्र, और सेनापति अकम्पन भी थे। इन सबके साथ हाथी, घोड़ा, रथ, प्यादे आदिसे भरी हुई विशाल सेना थी। चलते चलते वज्रजंघ किसी सुन्दर सरोवरके पास पहुंचे वहां चारों ओर सेनाको ठहराकर स्वयं श्रीमतीके साथ अपने तम्बूमें चले गये। इतनेमें 'यदि वनमें आहार मिलेगा तो लेवेंगे, गांव नगर आदिमें नहीं' ऐसी प्रतिज्ञाकर दो मुनि आकाशमें विहार करते हुए वहांसे निकले। जब उन मुनियोंपर राजाकी दृष्टि पड़ी तब उसने उन्हें भक्ति सहित पड़गाहा और श्रीमतीके साथ शुद्ध सरस आहार दिया। जब आहार लेकर मुनिराज वनकी ओर विहार कर गये तब राजा वज्रजंघसे उनके पहरेदारने कहा कि महाराज! ये युगल मुनि आपके सबसे लघु पुत्र हैं। आत्मशुद्धिके लिये हमेशा वनमें ही रहते हैं। यहांतक कि आहारके लिये भी नगरमें नहीं जाते। यह सुनकर वज्रजंघ और श्रीमतीके शरीरमें हर्षके रोमांच निकल आये। वे दोनों लपककर उसी ओर गये जिस ओर कि मुनिराज गये थे।

निर्जन वनमें एक शिलापर बैठे हुए मुनि युगलको देखकर राज दम्पतिके हर्षका पार नहीं रहा। राजा रानीने भक्तिसे मुनिराजके चरणोंमें अपना माथा झुका दिया तथा विनय पूर्वक बैठकर उनसे गृहस्थ धर्मका व्याख्यान सुना। इसके बाद अपने और श्रीमतीके पूर्वभव सुनकर राजाने पूछा— हे मुनिनाथ! ये मतिवर, आनन्द, धनमित्र और अकम्पन मुझसे बहुत प्यार करते हैं। मेरा भी इनमें अधिक स्नेह है इसका क्या कारण है? उत्तरमें मुनिनाथ बोले— 'राजन्! अधिकतर पूर्वभवके संस्कारोंसे ही प्राणियोंमें परस्पर स्नेह या द्वेष रहा करता है। आपका भी इनके साथ पूर्वभवका सम्बन्ध है। सुनिये मैं इनके पूर्वभव सुनाता हूँ।'

जम्बूद्वीपके पूर्व विदेह क्षेत्रमें एक वत्सकावती देश है उसमें प्रभाकरी नामकी एक सुन्दर नगरी है। वहांके राजाका नाम नरपाल था। नरपाल हमेशा आरम्भ परिग्रहमें लीन रहता था इसलिये वह मरकर पंक प्रभा नामके नरकमें

ारकी हुआ। वहां दश सागर पर्यन्त अनेक दुःख भोगता रहा। फिर वहांसे नेकलकर उसी नगरीके पासमें विद्यमान एक पर्वतपर शार्दूल हुआ। किसी समय उस पर्वतपर वहांके तात्कालिक राजा प्रीतिवर्धन अपने छोटे भाईके गाथ ठहरे हुए थे। राजा पुरोहितने उनसे कहा—'यदि आप इस पर्वतपर ुनिराजके लिये आहार देवें तो विशेष लाभ होगा। जब राजाने पुरोहितसे हा कि इस निर्जन पहाड़पर कोई मुनि आहारके लिये क्यों आवेगा? तब सने कहा कि तुम नगरीकी समस्त रास्ताएं सुगन्धित जलसे सिंचवाकर उन र ताजे फूल बिछवा दो अर्थात नगरीको इस तरह सजवा दो कि जिससे ोई निर्ग्रन्थ मुनि उसमें प्रवेश न कर सकें। क्योंकि वे अप्रासुक भूमिपर एक दम भी नहीं रखते। तब कोई मुनि आहारके लिये नगरीमें न जाकर इसी ोर आवेंगे सो आप पड़गाहकर उन्हें विधि पूर्वक आहार दे सकते हैं। राजा ीतिवर्धनने पुरोहितके कहे अनुसार ऐसा ही किया जिससे एक पिहितास्रव ्मके मुनि नगरीको बिहारके अयोग्य समझकर 'बनमें आहार मिलेगा तो वेंगे अन्यथा नहीं' ऐसा संकल्पकर उसी पर्वतकी ओर गये जहांपर राजा ीतिवर्धन मुनिराजकी प्रतीक्षा कर रहे थे। मुनिराजको आते हुए देखकर ाजाने उन्हें भक्तिपूर्वक पड़गाहा और उत्तम आहार दिया। पात्रदानसे प्रभा- वेत होकर देवोंने वहांपर रत्नोंकी वर्षा की। रत्नोंको बरषते हुए देखकर मुनि- ाज पिहितास्रवने राजासे कहा—'ऐ धरारमण! दानके वैभवसे बरसती हुई त्न धाराको देखकर जिसे जाति स्मरण हो गया है ऐसा एक शार्दूल इसी र्वतपर सन्यास वृत्ति धारण किये हुए है सो तुम उसकी योग्य रीतिसे परि- ार्या करो वह आगे चलकर भारत क्षेत्रके प्रथम तीर्थंकर वृषभनाथका प्रथम ्त्र सम्राट भरत होकर मोक्ष प्राप्त करेगा। मुनिराजके कहे अनुसार राजाने ाकर उस शार्दूलकी खूब परिचर्या की और मुनिराजने स्वयं पंच नमस्कार न्त्र सुनाया जिससे वह अठारह दिन बाद समता परिणामोंसे मरकर ऐशान वर्गके दिवाकर प्रभ विमानमें दिवाकर देव हुआ। पात्रदानके तात्कालिक भ्युदयसे चकित होकर प्रीतिवर्धन राजाके सेनापति, मन्त्री और पुरोहितने ी अत्यन्त शान्त परिणामोंसे राजाके द्वारा दिये गये मुनिदानकी अनुमोदना

की जिसके प्रभावसे वे तीनों मरकर कुरुक्षेत्र उत्तम भोग भूमिमें आर्य हुए। और वहांकी आयु पूर्णकर ऐशान स्वर्गके प्रभा, कांचन और रुषित नामके विमानोंमें क्रमसे प्रभाकर, कनकाभ और प्रभञ्जन नामके देव हुए। जब आप ऐशान स्वर्गमें ललितांग देव थे तब ये सब तुम्हारे परिवारके देव थे। वहांसे चय कर वह शार्दूलका जीव दिवाकर देव श्रीमती और सागरका लड़का होकर मतिवर नामका आपका मन्त्री हुआ है। कनकप्रभका जीव अनन्तमति और श्रुतकीर्तिका सुपुत्र होकर आपका आनन्द नामधारी पुरोहित हुआ है। प्रभाकरका जीव, आजीव और अपराजित सेनानीका पुत्र होकर अकंपन नामसे प्रसिद्ध आपका सेनापति हुआ है और प्रभञ्जनका जीव धनदत्ता एवं धनदत्तका पुत्र होकर धनमित्र नामसे प्रसिद्ध आपका सेठ हुआ है। बस, इस पूर्व भवके बन्धनसे ही आपका इनमें और इनका आपमें अधिक स्नेह है। इस तरह मुनिराजके मुखसे मतिवर आदिका परिचय पाकर श्रीमती और वज्रजंघ बहुत ही प्रसन्न हुए।

उस निर्जन वनमें राजा और मुनिराजके बीच जब यह सम्वाद चल रहा था तब वहां नेवला, शार्दूल, बन्दर और सुअर ये चार जीव मुनिराजके चरणोंमें अनिमेष दृष्टि लगाये हुए बैठे थे। वज्रजंघने कौतुक वश मुनिराजसे पूछा—हे तपोनिधे! ये नकुल आदि चार जीव आपकी ओर टकटकी लगाये हुए क्यों बैठे हैं? तब उन्होंने कहा—सुनिये, "यह व्याघ्र पहले इसी देशमें शोभायमान हस्तिनापुरमें धनवती और सागरदत्त नामक वैश्य दम्पतिके उग्रसेन नामका पुत्र था। यह क्रोधी बहुत था इसलिये इसने अपने जीवनमें तिर्यञ्च आयुका बन्ध कर लिया था। उग्रसेन वहांके राजभण्डारका प्रधान कार्यकर्त्ता था इसलिये वह दूसरे छोटे नौकरोंको दबाकर भण्डारसे घी चावल आदि वस्तुएं वेश्याओंके लिये दिया करता था। जब राजाको इस बातका पता चला तब उसने उसे पकड़वाकर खूब मार लगवाई जिससे वह मर कर यह व्याघ्र हुआ है।"

यह सुअर पूर्वभवमें विजय नगरके वसन्त सेना और महानन्द नामका राज दम्पतीका हरिवाहन नामसे प्रसिद्ध पुत्र था। हरिवाहन अधिक अभि-

मानी था, वह अपने सामने किसीको कुछ भी नहीं समझता था। यहांतक कि पिता वगैरह गुरुजनोंकी भी आज्ञा नहीं मानता था। एक दिन इसके पिताने इसे कुछ आज्ञा दी जिसे न मानकर इसने पत्थरके खम्भेसे अपना सिर फोड़ लिया और उसकी व्यथासे मरकर यह सुअर हुआ है।

यह बन्दर अपने पहले भवमें धान्य नगरके सुदत्ता और कुबेर नामक वैश्य दम्पतिका नागदत्त नामसे प्रसिद्ध पुत्र था। यह बड़ा मायावी था, इसका चित्त हमेशा छल कपट करनेमें लगा रहता था। किसी समय इसकी मांने अपनी छोटी लड़कीकी शादीके लिये दूकानमेंसे कुछ धन ले लिया जिसे यह देना नहीं चाहता था। इसने मांसे धन लेनेके लिये अनेक उपाय किये पर वे सब निष्फल हुए। अन्तमें इसी दुःखसे मरकर यह बन्दर हुआ है।

और "यह नेवला भी पहले भवमें सुप्रतिष्ठित नगरमें कादम्बिक नामका पुरुष था। कादम्बिक बहुत लोभी था, किसी समय वहांके राजाने जिन मन्दिर बनवानेके कामपर इसे नियुक्त किया। सो यह ईंट लानेवाले पुरुषोंको कुछ धन देकर बहुत कुछ ईंटें अपने घर डलवाता जाता था। भाग्य वश किसी दिन कुछ ईंटोंमें इसे सोनेकी शलाकाएँ मिल गयीं जिससे इसका लोभ और भी अधिक बढ़ गया। कादम्बिकको एक दिन अपनी लड़कीकी ससुराल जाना पड़ा सो वह बदलेमें मन्दिरके कामपर अपने पुत्रको नियुक्त कर गया था और उससे कह भी गया था कि मौका पाकर कुछ ईंटे अपने घरपर भिजवाते जाना। परन्तु पुत्रने यह पापका काम नहीं किया। जब कादम्बिक लौटकर वापिस आया और मालूम हुआ कि लड़केने हमारे कहे अनुसार घरपर ईंटे नहीं डलवाई हैं तब उसने उसे खूब पीटा और साथमें 'यदि ये पांव न होते तो मैं लड़कीकी ससुराल भी न जाता' ऐसा सोचकर अपने पांव भी काट लिये जब राजाको इस बातका पता मिला तब उसने इसे खूब पिटवाया जिससे मर कर वह नेवला हुआ है।

आज आपने जो मुझे आहार दिया है उसका वैभव देखनेसे इन सबको अपने पूर्व भवोंका स्मरण हो गया है जिससे ये सब अपने कुकर्मोंपर पश्चाताप कर रहे हैं। इन सबने आज पात्र दानकी अनुमोदनासे विशेष पुण्यका

संचय किया है इसलिये ये मरकर उत्तर भोग-भूमि कुरुक्षेत्रमें पैदा होवेंगे ये सब आठ भवोंतक आपके साथ स्वर्ग एवं मनुष्योंके सुख भोगकर सं. बन्धनसे मुक्त हो जावेंगे। हां, और इस श्रीमतीका जीव आपके तीर्थमें दा तीर्थको चलाने वाला श्रेयांस कुमार होगा तथा उसी पर्यायसे मोक्ष श्रेय- सभा करेगा।"

इस तरह मुनिराजके सुभाषितसे राजा वज्रजंघ और रानी ... जो आनन्द हुआ था उसका वर्णन करना कठिन है। दोनों राज दम्पती मुनि राजको नमस्कार कर अपने तम्बूकी ओर चले आये और मुनि युगल भी ..नं आकाशमें बिहार कर गये। वज्रजंघने वह दिन उसी सरोवरके किनारे बिताया। फिर कुछ दिनोंतक चलनेके बाद समस्त सेना और परिवारके सा पुण्डरीकिणी पुरीमें प्रवेश किया। वहां उन्होंने शोकसे आक्रान्त लक्ष्मीम और बहिन अनुन्दरीको समझाकर बालक पुण्डरीकका राज्य-तिलक कि तथा जबतक पुण्डरीक, राज्यकार्य संभालनेके लिये योग्य न हो जावे तबत के लिये विश्वस्त वृद्ध मन्त्रियोंके जिम्मे राज्यका भार सौंप दिया। इस .. कुछ दिन पुण्डरीकिणी पुरीमें रहकर परिवार और सेनाके साथ अपने उत्पल खेट नगरको लौट आये। प्रजाने राजा वज्रजंघके शुभागमनके उपलक्षमें राज धानीकी खूब सजावट की थी।

एक दिन रातके समय वज्रजंध और श्रीमती जिस शयनागारमें सो रा थे उसमें सब ओर चन्दन आदिकी सुगन्धित धूपका धुंवां फैल रहा था दुर्भाग्यसे उस दिन नौकर वहांकी खिड़कियां खोलना भूल गया जिससे व धुवां वहीं संचित होता रहा। उसी धुएंमें अचानक राज दम्पतीका .ास रुक गया और वे दोनों सदाके लिये सोते रह गये। जब सवेरे राजा औ रानीकी आकस्मिक मृत्युका समाचार नगरमें फैला तब समस्त नगरवासी हा हाकार करने लगे। सभी ओर शोकके चिन्ह दिखाई देने लगे। अन्तःपुरकी स्त्रियोंके करुण विलापसे सारा आकाश गूंज उठा। पर किया क्या जाता! होनहार अमिट थी। अब पाठकोंको अधिक न रुलाकर आगे एक सुन्दर क्षेत्र- में लिये चलता हूँ।

जम्बू द्वीपके मेरु पर्वतसे उत्तरकी ओर एक उत्तर कुरु नामका सुहावना क्षेत्र है। वह क्षेत्र खूब हरा भरा रहता है। वहाँ दस तरहके कल्प वृक्ष हैं जो कि वहाँके मनुष्योंको हरएक प्रकारको खाने, पीने, पहनने, रहने आदिकी सुन्दर सामग्री दिया करते हैं। वहां स्वच्छ जलसे भरे हुए सुन्दर सरोवर है। जिनमें बड़े बड़े कमल फूल रहे हैं। बनकी भूमि हरी-हरी घाससे शोभायमान है। वहांके नर नारियों तथा पशु-पक्षियोंकी तीन पल्य प्रमाण आयु होती है और जीवन भर कभी किसीको कोई बीमारी नहीं होती। यदि संक्षेपसे वहांके मनुष्योंके सुखोंका वर्णन पूछा जावे तो यही उत्तर पर्याप्त होगा कि वहांके मनुष्योंको जो सुख है वह कहींपर नहीं है और जो सब जगह है उससे बढ़कर वहां है। जो जीव सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रसे भूषित उत्तम पात्रों-मुनियोंके लिये भक्तिसे आहार देते हैं वे ही मरकर वहां जन्म लेते हैं। बज्रजाँघ और श्रीमतीने भी पुण्डरीकिणी पुरीको जाते समय सरोवरके तटपर मुनि युगलके लिये आहार दान दिया था इसलिये वे दोनों मरकर ऊपर कहे हुए उत्तर कुरुक्षेत्रमें उत्तम आर्य और आर्या हुए। जिनका कथन पहले कर आये हैं वे नेवला, व्याघ्र, सुअर और बन्दर भी उसी कुरुक्षेत्रमें आर्य हुए। कारण कि उन सबने मुनिदानकी अनुमोदना की थी। वहांपर वे सब मनवांछित भोग भोगते हुए सुखसे रहने लगे। 2281

इधर उत्पल खेट नगरमें बज्रजंघके विरहसे मतिवर, आनन्द, धनमित्र और अकम्पन पहले तो बहुत दुःखी हुए। फिर बादमें दृढ़ धर्म नामक मुनिराजके पासमें जिन दीक्षा धारण कर उग्र तपश्चर्याके प्रभावसे अधोग्रैवेयकमें अहमिन्द्र हुए।

एक दिन उत्तर कुरुक्षेत्रमें आर्य और आर्या जो कि बज्रजंघ और श्रीमती के जीव थे, कल्प वृक्षके नीचे बैठे हुए क्रीड़ा कर रहे थे कि इतनेमें वहांपर आकाश मार्गसे बिहार करते हुए दो मुनिराज पधारे। आर्य दम्पतीने खड़े हो कर उनका स्वागत किया और चरणोंमें नमस्कार कर पूछा—ऐ मुनीन्द्र! आप लोगोंका क्या नाम है? कहांसे आ रहे हैं? और इस भोग भूमिमें किस लिये घूम रहे हैं? आपकी शान्तिमुद्रा देखकर हमारा हृदय भक्तिसे उमड़ रहा है।

कृपा कर कहिये, आप कौन हैं ? यह सुनकर उन मुनियोंमें जो बड़े मुनि बोले—आर्य ! पूर्वकालमें जब तुम महाबल थे तब मैं आपका स्वयं बुद्ध का मन्त्री था। मैंने ही आपको जैन धर्मका उपदेश दिया था। जब आप दिनका सन्यास समाप्त कर स्वर्ग चले गये थे तब आपके विरहसे दुःखी हो मैंने जिन दीक्षा धारण कर ली थी जिसके प्रभावसे मैं आयुके अन्तमें मर सौधर्म स्वर्गके स्वयं प्रभ विमानमें मणिचूल नामका देव हुआ था। वहांसे चयकर जम्बू द्वीपके पूर्व विदेह सम्बन्धी पुष्कलावती देशमें स्थित पुण्डरीकिणी नगरीमें सुन्दरी और प्रियसेन नामके राजदम्पतीके प्रीतिंकर नामसे ज्येष्ठ पुत्र हुआ हूँ। मैं प्रीतिदेव नामक अपने छोटे भाईके साथ अल्प वयमें ही स्वयंप्रभ जिनेन्द्रके समीप दीक्षित हो गया था। तीव्र तपके प्रभावसे हम लोगोंको आकाशमें चलनेकी शक्ति और अवधिज्ञान प्राप्त हो गया है। जब मुझे अवधि ज्ञानसे मालूम हुआ कि आप यहांपर उत्पन्न हुए हैं तब मैं आप को धर्मका स्वरूप समझानेके लिये यहां आया हूँ। यह दूसरा मेरा छोटा भाई प्रीतिदेव है। ऐ भव्य ! विषयाभिलाषाकी प्रबलतासे महाबल पर्यायमें तुम्हें निर्मल सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं हुआ था इसलिये आज निर्मल दर्शनको धारण करो। यह दर्शन ही संसारके समस्त दुःखोंको दूर करता है। जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष इन सात तत्वों तथा दयामय धर्मका सच्चे दिलसे विश्वास करना सो सम्यग्दर्शन है। हमेशा निःशंक रहना भोगों से उदास रहना, ग्लानिका जीतना, विचारकर कार्य करना, दूसरोंके दोष छिपाना, गिरते हुएको सहारा देना, धर्मात्माओंसे प्रेम रखना और सम्यग्ज्ञान का प्रचार करना ये उसके आठ अंग हैं। प्रशम, संवेग, अनुकम्पा और आस्तिक्य भाव उसके गुण हैं। इस तरह आर्यको उपदेश देकर प्रीतिंकर महाराजने आर्यासे भी कहा—अम्ब ! 'मैं स्त्री हूँ' इसलिये ये कुछ नहीं कर सकती यह सोचकर दुखी मत होओ। सम्यग्दर्शन तो प्राणी मात्रका धर्म है उसे हर कोई धारण कर सकता है।

मुनिराजके उपदेशसे आर्य और आर्याने अत्यन्त प्रसन्न होकर अपनी आत्माओंको निर्मल सम्यग्दर्शनसे विभूषित किया। काम हो चुकनेके बाद

ुनिराज आकाश मार्गसे विहार कर गये। कुछ समय बाद आयु पूर्ण होनेपर
ज्रजंघका जीव आर्य ऐशान स्वर्गके श्रीप्रभ विमानमें श्रीधर नामका देव हुआ
ौर श्रीमती आर्याका जीव उसी स्वर्गके स्वयं प्रभ विमानमें स्वयं प्रभ नाम-
ा देव हुआ। एवं शार्दूल व्याघ्रका जीव उसी स्वर्गके चित्रांगद विमानमें
चेत्रांगद नामका सुअरका जीव नन्द विमानमें मणि कुण्डली नामका वानरका
ीव नंद्यावर्त विमानमें मनोहर नामका और नेवलेका जीव प्रभाकर विमानमें
ानोरथ नामका देव हुआ। वहां ये सब पुण्यके प्रतापसे अनेक तरहके भोग
ोगते हुए सुखसे रहने लगे। किसी समय स्वयं बुद्ध मन्त्रीके जीव प्रीतिंकर
ुनिराजको जिनने अभी उत्तर कुरुक्षेत्रमें आर्य आर्याको सम्यग्दर्शन प्राप्त
राया था। श्रीप्रभ पर्वतपर केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ। सभी देव उनकी
न्दनाके लिये गये। श्रीधर देवने भी जाकर अपने गुरु केवली भगवान प्रीति-
रको भक्ति सहित नमस्कार किया। और फिर धर्मका स्वरूप सुननेके बाद
ूछा—भगवन्! महाबल भवमें जो मेरे सम्भिन्नमति, शतमती और महा-
ती नामके तीन मिथ्यादृष्टि मन्त्री थे वे अब कहांपर हैं? उन्होंने कहा कि
ंभिन्नमति और महामति निगोद राशिमें उत्पन्न होकर अचिन्त्य दुख भोग
हे हैं और शतमति मिथ्या ज्ञानके प्रभावसे दूसरे नरकमें कष्ट पा रहा है।
जो जैसा कार्य करता है वैसा ही फल पाता है'।

यह सुनकर श्रीधर देवको बहुत ही दुख हुआ। वह संभिन्नमति और
हामतिके विषयमें तो कर ही क्या सकता था हां, पुरुषार्थसे शतमतिको
ुधार सकता था इसलिये झटसे दूसरे नरकमें गया। वहां अवधिज्ञानसे शत-
ति मन्त्रीके जीवनारकीको पहिचानकर उससे कहने लगा। क्यों महाशय!
ाप मुझे पहिचानते हैं? मैं विद्याधरोंके राजा महाबलका जीव हूँ। मिथ्या
ानके कारण आपको ये नरकके तीव्र दुःख प्राप्त हुए हैं। अब यदि इनसे छुट
ारा चाहते हो तो सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानसे अपने आपको अलंकृत
रो। श्रीधरके उपदेशसे नारकी शतमतिने शीघ्र ही सम्यग्दर्शन धारण कर
िया। सम्यग्दर्शनके प्रभावसे उसका समस्त ज्ञान सम्यग्ज्ञान हो गया। श्री-
र देव कार्यकी सफलतासे प्रसन्न चित्त होता हुआ अपने स्थानपर वापिस

लौट आया। वह शतमतिका जीव नारकी भी नरककी आयु पूर्णकर पुष्कर द्वीपके पूर्वार्ध भागमें विशोभित पूर्व विदेह सम्बन्धी मंगलावती देशमें रत्नसंचय नगरमें रहने वाले सुन्दरी और मनोहर नामक राज दम्पतीके जयसेन नामका पुत्र हुआ। जिस समय जयसेनका विवाह होने वाला था उस समय श्रीधर देवने जाकर समझाया और नरकके समस्त दुःखोंकी याद दिला जिससे उसने विरक्त होकर यमधर मुनिराजके पास दीक्षा ले ली। और कठि तपश्चर्याके प्रभावसे मरकर पांचवें स्वर्गमें ब्रह्मेन्द्र हुआ। ब्रह्मेन्द्रने जब अवधि ज्ञानसे अपने उपकारी श्रीधर देवका परिचय प्राप्त किया तब उसने उसके पास जाकर विनम्र और मीठे शब्दोंमें कृतज्ञता प्रकट की।

कुछ समय बाद श्रीधर देव स्वर्गसे चयकर जम्बू द्वीपके पूर्व विदेह संबंधी महा वत्सकावती देशमें स्थित सुसीमा नगरीके सुदृष्टि और सुनन्दा नामक राज दम्पतीके सुविधि नामका पुत्र हुआ। वह सुविधि बहुत ही भाग्यशाली और बुद्धिमान लड़का था। अभयघोष चक्रवर्ती उसके मामा थे। चक्रवर्तीके मनोहरा नामकी एक सुन्दरी कन्या थी जो सचमुचमें मनोहरा ही थी। राजा सुदृष्टिने योग्य अवस्था देखकर सुविधिका मनोरमाके साथ विवाह करवा दिया जिससे वे दोनों विविध भोगोंको भोगते हुए सुखसे समय बिताने लगे। कुछ समय बाद राजा सुदृष्टि राज्यका भार सुविधिके लिये सौंपकर मुनि हो गये सुविधि राज्य कार्यमें बहुत ही कुशल पुरुष था जिससे उसकी धवलकीर्ति चारों ओर फैल गई थी और समस्त शत्रुओंकी सेना अपने आप वशमें हो गई थी।

काल पाकर सुविधि राजाके केशव नामका पुत्र हुआ। सुविधि राजाकी वज्रजंघ पर्यायमें जो श्रीमतीका जीव था वह भोग भूमिके सुख भोग चुकनेके बाद दूसरे स्वर्गके स्वयंप्रभ विमानमें स्वयं प्रभ नामका देव हुआ था। वही जीव राजा सुविधिके केशव नामका पुत्र हुआ था। पूर्वभवके संस्कारसे राजा का उसमें अधिक स्नेह रहता था। शार्दूलका जीव चित्रांगद भी स्वर्गसे चय कर इसी देशमें विभीषण राजाकी प्रियदत्ता पत्नीसे वरदत्त नामका पुत्र हुआ सुअरका जीव मणि कुण्डली देव अनन्तमति और नन्दिषेण नामक राजदम्पती

के बरसेन नामका पुत्र हुआ। बानरका जीव मनोहर देव चन्द्रमति और रतिषेण नामक राजा दम्पतिके चित्रांगद नामका देव हुआ। और नकुलका जीव मनोरथ देव चित्रमालिनी और प्रभञ्जन नामका राज दम्पतीके मदन नामसे प्रसिद्ध लड़का हुआ।

कुछ समय बाद चक्रवर्ती अभय घोषने अठारह हजार राजाओंके साथ विमल वाहन नामक मुनिराजके पास जिन दीक्षा ले ली। वरदत्त, वरसेन, चित्रांगद और मदन भी चक्रवर्तीके साथ दीक्षित हो गये थे। पर सुविधि राजाका अपने केशव पुत्रमें अधिक स्नेह था इसलिये वे घर छोड़कर मुनि न हो सके किन्तु उत्कृष्ट श्रावकके व्रत रखकर घरपर ही धर्म सेवन करते रहे। और आयुके अन्त समयमें महाव्रत धारण कर कठिन तपस्याके प्रभावसे सोलहवें अच्युत स्वर्गमें अच्युतेन्द्र हुए। पिताके वियोगसे दुःखी होकर केशव ने भी जिन दीक्षा की शरण ली। वह आयुके अन्तमें मरकर उसी स्वर्गमें प्रतीन्द्र हुआ। तथा वरदत्त आदि राजपुत्र भी अपनी तपस्याके प्रभावसे उसी स्वर्गमें सामानिक जातिके देव हुए। इन सभीकी विभूति इन्द्रके समान थी। वहां अच्युतेन्द्रकी बाईस सागर प्रमाण आयु थी बाईस हजार वर्ष बीत जाने पर आहारकी अभिलाषा होती थी, सो शीघ्र ही कण्ठमें अमृत झर जाता था बाईस पक्षमें एक बार श्वासोछ्वास होता था। उसका शरीर तीन हाथ ऊंचा था, वह सोनेसा चमकता था। मनमें इन्द्राणीका स्मरण होते ही उसकी काम सेवनकी इच्छा शान्त हो जाती थी। कहनेका मतलब यह है कि वह हर एक तरहसे सुखी था।

आयुके अन्तमें वह अच्युतेन्द्र स्वर्गसे चयकर जम्बूद्वीप—सम्बन्धी पूर्व विदेहमें स्थित पुष्कलावती देशकी पुण्डरीकिणी नगरीमें श्रीकान्त और वज्रसेन नामक राज दम्पतीके पुत्र हुआ। वहां उसका नाम वज्रनाभि था। वरदत्त, वरसेन, चित्राङ्गद और मदन जोकि अच्युत स्वर्गमें सामानिक देव हुए थे वहांसे चयकर क्रमसे वज्रनाभिके विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित नामके लघु सहोदर-छोटे भाई हुए। और केशव जोकि सोलहवें स्वर्गमें प्रतीन्द्र हुआ था वहांसे चयकर इसी पुण्डरीकिणी पुरीमें कुबेरदत्त तथा अनन्त

मती नामक वैश्य दम्पतीके धनदेव नामका लड़का हुआ। वज्रनाभिके वज्रज भवमें जो मतिवर, आनन्द, धनमित्र और अकम्पन नामके मन्त्री, पुरोहित सेठ और सेनापति थे वे मरकर अधोग्रैवेयकमें अहमिन्द्र हुए थे अब वे वहांसे चयकर वज्रनाभिके भाई हुए। वहां उनके नाम सुवाहु, महावाहु पीठ और महापीठ नाम रक्खे गये थे। इस तरह ऊपर कहे हुए दशों एक साथ खेलते, बैठते उठते, लिखते और पढ़ते थे क्योंकि उन परस्परमें बहुत प्रेम था। राजपुत्र वज्रनाभिका शरीर पहले सा सुन्दर था जवानीके आनेपर वह और भी अधिक सुन्दर मालूम होने लगा था। समय उसकी लम्बी और स्थूल भुजाएं, चौड़ा सीना, गम्भीर नयन तथ तेजस्वी चेहरा देखते ही बनता था। एक दिन वज्रनाभिके पिता वज्रसे महाराज संसारके विषयोंसे उदास होकर वैराग्यका चिन्तवन करने लगे उस समय लौकान्तिक देवोंने आकर उनके विरक्त विचारोंका समर्थन किया जिससे उनका वैराग्य और भी अधिक बढ़ गया। अन्तमें वे ज्येष्ठ पुत्र वज्रनाभिव राज्य देकर हजार राजाओंके साथ दीक्षित हो गये और कठिन तपस्याओंरं केवल ज्ञान प्राप्त कर अपनी दिव्य वाणीसे पथ भ्रान्त पुरुषोंको सच्चा मार्ग बत लाने लगे और कुछ समय बाद आठों कर्मोंको नष्टकर मोक्ष स्थानपर पहुंच गये। इधर वज्रनाभिकी आयुधशालामें चक्ररत्न प्रकट हुआ जिसमें एक हजा आरे थे और जो अपनी कान्तिसे सहस्र किरण सूर्य सा चमकता था। चक्ररत को आगेकर राजा वज्रनाभि दिग्विजयके लिये निकले और कुछ समय बा दिग्विजयी होकर लौट आये। अब वज्रनाभि चक्रवर्ती कहलाने लगे थे। उन का प्रताप और यश सब ओर फैल रहा था। उस समय वहां उनसा सम्पति शाली पुरुष दूसरा नहीं था जो केशव (श्रीमतीका जीव) स्वर्गसे चयक उसी पुण्डरीकिणी पुरीमें कुवेरदत्त और अनन्तमती नामक वैश्य दम्पतीके ध देव नामका पुत्र हुआ था वह वज्रनाभिका गृह पति नामक रत्न हुआ इस प्रका नौनिधि और चौदह रत्नोंका स्वामी सम्राट वज्रनाभिका समय सुखसे बीतं लगा। किसी समय महाराज वज्रनाभिका चित्त संसारसे विरक्त ह गया जिससे वे अपने वज्रदन्त पुत्रको राज्यका भार सौंप कर सोलह हजा

राजाओं, एक हजार पुत्रों, आठ भाइयों और धनदेवके साथ तीर्थंकर देवके समीप दीक्षित होकर तपस्या करने लगे। बज्रनाभिने वहींपर दर्शन विशुद्धि विनय सम्पन्नता, शीलव्रतोंमें अतिचार नहीं लगाना, निरन्तर ज्ञानमय उपयोग रखना, संवेग, शक्त्यनुसार तप और त्याग, साधु समाधि, वैयावृत्य, अर्हद्भक्ति, आचार्य भक्ति,बहुश्रुत भक्ति,प्रवचन भक्ति, आवश्यकापरिहाणि मार्ग प्रभावना और प्रवचन वात्सल्य इन सोलह भावनाओंका चिंतवन किया जिस से उन्हें तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध हो गया। आयुके अन्त समयमें वे श्रीप्रभ नामक पर्वतकी शिखरपर पहुंचे और वहां शरीरसे ममत्व छोड़कर आत्म समाधिमें लीन हो गये। जिसके फल स्वरूप नश्वर मनुष्य देहको छोड़ कर सर्वार्थ सिद्धिमें अहमिन्द्र हुए। वहां उनकी आयु तेतीस सागर प्रमाण थी। और शरीर एक हाथ ऊंचा सफेद रंगका था। वे कभी संकल्प मात्रसे प्राप्त हुए जल चन्दन आदिसे ज़िनेन्द्र देवकी पूजा करते और कभी अपनी इच्छासे पासमें आये हुए अहमिन्द्रोंके साथ तत्व चर्चाएं करते थे। तेतीस हजार वर्ष बीत जानेपर उन्हें आहारकी अभिलाषा होती थी सोभी तत्काल कण्ठमें अमृत झर जाता था जिससे फिर उतने ही समयके लिये निश्चिन्त हो जाते थे। उन का श्वासोच्छ्वास भी तेतीस पक्षमें चला करता था। संसारमें उन जैसा सुखी कोई दूसरा नहीं था। यह अहमिन्द्र ही आगे चलकर कथानायक भगवान वृषभनाथ होगा। विजय, वैजयन्त; जयन्त, अपराजित; सुबाहु, महाबाहु; बाहु; पीठ; महापीठ और धनदेव भी जो इन्हींके साथ दीक्षित हो गये थे। आयुके अन्तमें सन्यास पूर्वक शरीर छोड़कर सर्वार्थ सिद्धि विमानमें अहमिन्द्र हुए थे। इन सबका वैभव वगैरह भी अहमिन्द्र बज्रनाभिके समान था। ये सभी भगवान वृषभदेवके साथ मोक्ष प्राप्त करेंगे।



पूर्वभव परिचय

घनाक्षरी छन्द

आदि जै वर्मा दूजै, महाबल भूप तीजै,
स्वर्ग ईशान ललितांग देव भयो है
चौथे बज्र जंघ राय पांचवें युगल देह,
सम्यक हो दूजे देव लोक फिर गयो है॥
सातवें सुविधि देव आठवें अच्युत इन्द्र
नोमें भोनरिन्द्र बज्रनाभि नाम पायो है।
दशमें अहमिन्द्र जान ग्यारमें ऋषभभान
नाभिवंश भूधरके साथे जन्म लियो है।

—भूधरदास

[२]

भरतैरावनयो र्वृद्धिह्रासौ पट्समयाभ्या मुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभ्याम्।

भगवान उमास्वामीने कहा है कि भरत और ऐरावत क्षेत्रमें उ.. तथा अवसर्पिणी कालके द्वारा क्रमसे वृद्धि और हानि होती रहती है— प्रकार शुक्ल पक्षमें चन्द्रमाकी कलाएं दिन प्रतिदिन बढ़ती जाती हैं उसी उत्सर्पिणी कालमें लोगोंका बलाविद्या आयु आदि वस्तुएं बढ़ती जाती भरत और ऐरावत क्षेत्रमें शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्षकी नांई उत्सर्पिणी अवसर्पिणी कालका परिवर्तन होता रहता है। उनके छह छह भेद हैं। १ अति दुःषमा २ दुःषमा ३ दुषम सुषमा ४ सुषम दुषमा ५ सुषमा ६ सु सुषमा। यह क्रम उत्सर्पिणीका है। अवसर्पिणीका क्रम इससे उल्टा होता है ये दोनों मिलकर कल्पकाल कहलाते हैं जिसका प्रमाण बीस कोड़ा को सागर है।

अभी इस जम्बूद्वीपके भरत क्षेत्रमें अवसर्पिणी कालका संचार हो रहा है उनके सुषम सुषमा नामक पहले भेदका समय चार कोड़ा कोड़ी सागर है

सके प्रारम्भमें मनुष्य उत्तर कुरुके मनुष्योंके समान होते थे। वहांपर जीवों
ी आयु तीन पल्यकी होती है. शरीरकी ऊंचाई छह हजार धनुषकी होती है
हांके लोगोंका रंग सोनेसा चमकीला होता है और वे तीन तीन दिन बाद
ोड़ा सा आहार लेते हैं। फिर क्रम क्रमसे हानिपर दूसरा सुषमां काल आता
जिसका प्रमाण तीन कोड़ा कोड़ी सागर है। उसके प्रारम्भमें मनुष्य हरि-
र्ष क्षेत्रके मनुष्योंकी भांति होते हैं उनकी आयु दो पल्यकी और शरीरकी
ंचाई चार हजार धनुषकी होती है। वे दो दिन बाद थोड़ा सा आहार लेते हैं
नका शरीर शंखके समान श्वेत वर्णका होता है। फिर क्रमसे हानि होनेपर
ीसरा सुषम दुषमा काल आता है जिसका प्रमाण दो कोड़ा कोड़ी सागर है
सके प्रारम्भमें मनुष्य हैमवतक क्षेत्रके मनुष्योंकी भांति होते हैं वे एक पल्यतक
ीवित रहते हैं उनका शरीर दो हजार धनुष उंचा होता है वे एक दिन बाद
ोड़ा आहार लेते हैं और उनके शरीरका रंग नील कमलके समान नीला
ोता है। फिर क्रमसे हानि होनेपर चौथा दुःषम सुषमा काल आता है जिस
ा प्रमाण ब्यालीस हजार वर्ष न्यून एक कोड़ा कोड़ी सागर है। उसके प्रारम्भ
ालमें मनुष्य विदेह क्षेत्रके मनुष्योंके सदृश होते हैं। उनके शरीरकी ऊंचाई
ांच सौ धनुषकी और आयु एक करोड़ वर्षकी होती है। वे दिनमें एक-दो
ार आहार करते हैं। फिर क्रमसे हानि होनेपर पांचवां दुःषमा काल आता है
जसका प्रमाण इक्कीस हजार वर्षका है इसके प्रारम्भमें मनुष्योंकी ऊंचाई
हलेसे बहुत कम हो जाती है यहाँतक कि साढ़े तीन हाथ ही रह जाती है आयु
ी बहुत कम हो जाती है। उस समयके लोग दिनमें कई बार खाने लगते थे
फर क्रमसे परिवर्तन होनेपर दुःषम दुःषमा नामका छठवां काल आता है
जसका प्रमाण इक्कीस हजार वर्षका है। छठवें कालमें लोगोंकी अवगाहना
शरीरकी ऊंचाई एक हाथकी रह जाती है आयु बिलकुल थोड़ी रह जाती है
और शरीर भी कुरूप होने लगते हैं। इसी तरह उत्सर्पिणीके भी छह भेद
ोते हैं और उनका प्रमाण भी दश कोड़ा कोड़ी सागरका होता है परन्तु इन-
ा क्रम अवसर्पिणीके क्रमसे विपरीत होता है। जब यहां अवसर्पिणीका क्रम
ूरा हो चुकेगा तब उत्सर्पिणीका संचार होगा।

प्रजाके ऐसे दीनता भरे बचन सुनकर नाभिराजने मधुर वचनोंसे सबको संतोष दिलाया और युगके परिवर्तनका हाल बताते हुए कहा कि भाइयो ! कल्प-वृक्षोंके नष्ट हो जाने पर भी ये साधारण वृक्ष तुम्हारा वैसा ही उपकार करेंगे जैसा कि पहले कल्प वृक्ष करते थे। देखो, ये खेतोंमें अनेक तरहके अनाज पैदा हुए हैं इनके खानेसे आप लोगोंकी भूख शान्त हो जावेगी और इन सुन्दर कुएं, बावड़ी, निर्झर आदिका पानी पीनेसे तुम्हारी प्यास मिट जावेगी इधर देखो, ये लम्बे लम्बे गन्नेके पेड़ दिख रहे हैं जो बहुत ही मीठे हैं, इन्हें दांतों अथवा यन्त्रसे पेलकर इनका रस पीना चाहिये। और इस ओर देखो, इन गाय भैंसोंके स्तनोंसे सफेद सफेद मीठा दूध झर रहा है इसे पीनेसे शरीर पुष्ट होता है और भूख मिट जाती है।" इस तरह दयालु महाराज नाभिराजने उस दिन प्रजाको जीवित रहनेके सब उपाय बतलाये तथा हाथी गण्डस्थल पर थाली आदि कई तरहके मिट्टीके बर्तन बना कर दिये एवं आगे इसी तरहका बनानेका उपदेश दिया। नाभिराजके मुखसे यह सब सुनकर प्रजाजन बहुत ही प्रसन्न हुए और उनके द्वारा बतलाये हुए उपायोंको अमल में लाकर सुखसे रहने लगे।

पहले लोग बहुत ही परिणामी होते थे इसलिये उनसे किसी प्रकारका अपराध नहीं होता था। पर ज्यों ज्यों समय बीतता गया त्यों त्यों लोगोंके परिणाम कुटिल होते गये और वे अपराध करने लगे इसलिये नाभिराजने और उनके पहले कुलकरोंने अपराधी मनुष्योंको दण्ड देनेके लिये दण्ड-विधान भी चलाया था। सुनिये उनका दण्ड-विधान ! प्रारम्भके पांच कुलकरोंने अपराधी मनुष्योंको 'हा' इस तरह शोक प्रकट करने रूप दण्ड देना शुरू किया था। उनके बाद पांच कुलकरोंने 'हा' शोक प्रकट करना तथा 'मा' अब ऐसा नहीं करना ये दो दण्ड चलाये थे और उनसे पीछेके कुलकरोंने 'हा' 'मा' 'धिक्' ये तीन प्रकारके दण्ड चलाये थे।

नाभिराजकी स्त्रीका नाम मरुदेवी था। मरुदेवीके उत्कर्षके विषयमें उसके नख-शिखका वर्णन न कर इतना ही कह देना पर्याप्त है कि उसके समान सुन्दरी और सदाचारिणी स्त्री पृथ्वी तल पर न हुई है, न है न होगी। राज

नाभिराजकी राजधानी अयोध्यापुरी थी। राजदम्पति अनेक तरहके सुख भोगते हुए बड़े आनन्दसे वहां रहते थे और नये नये उपायों से प्रजाका पालन करते थे। अब यहां पर यह प्रकट कर देना अनुचित न होगा कि वज्र नाभि चक्रवर्ती जो कि सर्वार्थ सिद्धिमें अहमिन्द्र हुए थे कुछ समय बाद वहांसे चयकर इन्हीं राजदम्पतिके पुत्र होंगे और वृषभनाथ नामसे प्रसिद्ध होंगे। ये वृषभनाथ ही इस युगके प्रथम तीर्थङ्कर कहलावेंगे।

सर्वार्थ सिद्धिमें ज्यों ज्यों वज्रनाभि अहमिन्द्रकी आयु कम होती जाती थी त्यों त्यों तीनों लोकों में आनन्द बढ़ता जाता था। यहां तक कि, वहां उनकी आयु सिर्फ छः माहकी बाकी रह गई तब इन्द्रकी आज्ञासे धनपति कुबेरने राजधानी अयोध्याके समीप ही एक दूसरी अयोध्या नगरी बनाई। वह नगरी बारह योजन लम्बी और नौ योजन चौड़ी थी। नगरीके बाहर चारों ओर अगाध जलसे भरी हुई सुन्दर परिखा थी जिसमें कई रंगोंके कमल फूले हुए थे और उन कमलोंकी परागसे उस परिखाका पानी पिघले हुए सुवर्णकी नाईं जान पड़ता था। उसके बाद सुवर्ण मय कोट बना हुआ था। उस कोटकी शिखरें बहुत ऊंची थीं। कोटके चारों ओर चार गोपुर बने हुए थे। जिनकी गगनचुम्बी शिखरों पर मणिमय कलशों ऐसे मालूम होते थे मानो उदयाचलकी शिखरों पर सूर्यके बिम्ब ही विराजमान हों। उस नगरीमें जगह जगह विशाल जिन मन्दिर बने हुए थे जिनमें जिनेन्द्र देवकी रत्नमयी प्रतिमाएं पधराईं गईं थीं। कहीं स्वच्छ जलसे भरे हुए तालाब दिखाई देते थे। उन तालाबोंमें कमल फूल रहे थे और उन पर मधुके पीनेसे मत्त हुए भौंरें मनोहर शब्द करते थे। कहीं अगाध जलसे भरी हुईं वापिकाएं नजर आती थीं जिनके रत्न खचित किनारों पर हंस, सारस आदि पक्षी क्रीड़ा किया करते थे। कहीं आम, नींबू, अमरूद, अनार जम्बीर आदिके पेड़ोंसे विशोभित बड़े बड़े बगीचे बनाये गये थे जिनमें तरह तरहके फूलोंकी सुगन्धि फैल रही थी। कहीं अच्छे अच्छे बाजार बने हुए थे जिनमें हीरा मोती पन्ना आदि मणियोंके ढेर लगाये जाते थे। कहीं सेठ साहूकारोंके बड़े बड़े महल बने हुए थे। जिनकी शिखरों पर कई तरहके रत्न जड़े हुए थे। किसी सुन्दर जगहमें गज-

भवन बने हुये थे जिनकी ऊंची शिखरें आकाशके अनन्तस्थलको भेदती हुई आगे चली गई थीं और कहीं निर्बाध स्थानोंमें विस्तनृत विद्यालय बनाये गये थे। जिनकी दीवालों पर कई प्रकारके शिक्षाप्रद चित्र टंगे हुये थे। कविवर अर्हद्दासने ठीक लिखा है—कि जिसके बनानेमें इन्द्र सूत्रधार हो और देव लोग स्वयं कार्य करने वाले हों उस अयोध्या नगरीका वर्णन कहांतक किया जा सकता है ? सचमुच उन नवनिर्मित अयोध्याके सामने इन्द्रकी अमरावती बहुत ही फीकी मालूम होती थी।

किसी दिन शुभ मुहुर्तमें सौधर्म स्वर्गके इन्द्रने सब देवोंके साथ आकर उस नवीन नगरीमें महाराज नाभिराज और मरु देवीका राज्याभिषेक कर उन्हें राजभवनमें ठहराया। उसी दिन सब अयोध्यावासियोंका भी नवीन अयोध्या में प्रवेश कराया जिससे उसकी आभा बहुत ही विचित्र हो गई थी। इसके बाद वे देव लोग कई तरहके कौतुक दिखलाकर अपने २ स्थानोंपर चले गए।

जबतक मनुष्य भोग लालसाओंमें लीन रहते हैं तबतक उनके हृदयमें धर्मकी वासना दृढ़ नहीं होने पाती पर जैसे जैसे भोग लालसाएं घटती जाती हैं वैसे ही उनमें धर्मकी वासना दृढ़ होती जाती है। इस भारत वसुन्धरापर जबसे कर्म युगका प्रारम्भ हुआ तबसे लोगोंके हृदय भोग लालसाओंसे बहुत कुछ विरक्त हो चुके थे इसलिये वह समय उनके हृदयोंमें धर्मका बीज वपन करनेके लिये सर्वथा योग्य था। उस समय संसारका ऐसे देवदूतकी आवश्यता थी जो सृष्टिके विशृङ्खल अव्यवस्थित लोगोंको शृङ्खलाबद्ध व्यवस्थित बनावे, उन्हें कर्तव्यका ज्ञान करावे और उनके सुकोमल हृदय क्षेत्रोंमें धर्म कल्प वृक्ष के बीज वपन करे। वह महान् कार्य किसी साधारण मनुष्यसे नहीं हो सकता था उसके लिये तो किसी ऐसे महात्माकी आवश्यकता थी जिसका व्यक्तित्व बहुत ही बढ़ा चढ़ा हो। जिसका हृदय अत्यन्त निर्मल और उदार हो। उस समय वज्रनाभि चक्रवर्तीका जीव जोकि सर्वार्थसिद्धिमें अहमिन्द्र पदपर आसीन था, इस महान् कार्यके लिये उद्यत हुआ। देवताओंने उसका सहर्ष अभिवादन किया। यद्यपि उसे अभी भारत भूपर आनेके लिये कुछ समय बाकी था तथापि उसके पुण्य परमाणु सब ओर फैल गये थे। सबसे पहले

देवोंने उस महात्माके स्वागतके लिये नव्य नगरीका निर्माण किया और फिर उसमें प्रति दिन दिनमें तीन तीन बार करोड़ों रत्नोंकी वर्षा की थी।

एक दिन महारानी मरु देवी गंगा जलके समान स्वच्छ चद्दरसे शोभित शय्यापर शयन कर रही थीं। उस समय सरयू नदीकी तरल तरङ्गोंके आलिङ्गनसे शीतल हुई हवा धीरे धीरे बह रही थी इसलिये वह सुखकी नींद सो रही थी। जब रात पूर्ण हुआ चाहती थी तब उसने आकाशमें नीचे लिखे सोलह स्वप्न देखे। १ ऐरावत हाथी २ सफेद बैल ३ गरजता हुआ सिंह ४ लक्ष्मी ५ दो मालाएं ६ चन्द्र मण्डल ७ सूर्य बिम्ब ८ सुवर्णके दो कलश ९ तालाबमें खेलती हुई दो मछलियां १० निर्मल जलसे भरा हुआ सरोवर ११ लहराता हुआ समुद्र १२ रत्नोंसे जड़ा हुआ सिंहासन १३ देवोंका विमान १४ नागेन्द्र भवन १५ रत्नराशि और १६ निर्धूम अग्नि। स्वप्न देखनेके बाद उसने अपने मुंहमें प्रवेश करते हुए कुन्द पुष्पके समान श्वेत वर्ण वाला एक बैल देखा। इतनेमें रात पूर्ण हो गई, पूर्व दिशामें लाली छा गई और राज मन्दिरमें बाजोंकी मङ्गल ध्वनि होने लगी। बाजोंकी आवाज़ तथा बन्दीजनोंके स्तुति भरे वचनोंसे उसकी—मरु देवीकी नींद खुल गई। वह पंच परमेष्ठीका स्मरण करती हुई शय्यासे उठी तो, अनोखे स्वप्नोंका ख्यालकर आश्चर्य सागरमें विमग्न हो गई। जब उसे बहुत कुछ सोच विचार करनेपर भी स्वप्नोंके फलका पता न चला तब वह शीघ्र ही नहा धोकर तैयार हुई और बहुमूल्य वस्त्राभूषण पहिनकर सभा मण्डपकी ओर गई। महाराज नाभिराजने हृदय वल्लभा मरुदेवीका यथोचित सत्कार कर उसे योग्य आसनपर बैठाया और मधुर बचनोंसे कुशल प्रश्न पूछ चुकनेके बाद उसने राजसभामें आनेका कारण पूछा। मरुदेवीने विनय पूर्वक रातमें देखे हुए स्वप्न राजासे कहे और उनके फल जाननेकी इच्छा प्रकट की। नाभिराजको अवधि ज्ञान था इसलिये वे सुनते समय ही स्वप्नोंका फल जान गये थे। जब मरु देवी अपनी जिज्ञासा प्रकटकर चुप हो रही तब राजा नाभिराज बोले। बोलते समय उनके दाँतोंकी सफेद किरणें मरुदेवीके वक्षस्थलपर पड़ रही थीं जिनसे ऐसा मालूम होता था मानो महाराज अपनी प्रियतमाके लिये मोतियोंका हार ही पहिना रहे हों।

"देवि! ऐरावत हाथीके देखनेसे तुम्हारे अत्यन्त उत्कृष्ट पुत्र होगा, बैलके देखनेसे वह पुत्र समस्त संसारका अधिपति होगा, सिंहके देखनेसे अत्यन्त पराक्रमी होगा, लक्ष्मीके देखनेसे अत्यन्त विभवशाली होगा, दो मालाओंके देखनेसे धर्म तीर्थका कर्ता होगा, पूर्ण चन्द्रमाके देखनेसे समस्त प्राणियोंका आनन्द देने वाला होगा, सूर्यको देखनेसे तेजस्वी होगा, सोनेके कलश देखने से निधियोंका स्वामी होगा, मछलियोंके देखनेसे अनन्त सुखी और सरोवरके देखनेसे उत्तम लक्षणोंसे भूषित होगा, समुद्रके देखनेसे सर्वदर्शी और सिंहासनके देखनेसे स्थिर साम्राज्यवान् होगा, देव विमान देखनेसे वह स्वर्गसे आवेगा, नागेन्द्रका भवन देखनेसे अवधिज्ञानी, रत्नोंकी राशि देखनेसे गुणोंकी खानि और निर्धूम अग्निके देखनेसे वह कर्म रूपी ईंधनको जलानेवाला होगा। तथा स्वप्न देखनेके बाद जो तुमने मुंहमें प्रवेश करते हुए सफेद बैलको देखा है उससे मालूम होता है कि तुम्हारे गर्भमें किसी देवने अवतार लिया है।

यहांपर राजा नाभिराज मरु देवीके लिये स्वप्नोंका फल बतला रहे थे वहां देवोंके अचानक आसन कम्पायमान हुए जिससे उन्हें भगवान् वृषभनाथके गर्भारोहणका निश्चय हो गया। इन्द्रकी आज्ञानुसार दिक्कुमारियां तथा श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि लक्ष्मी आदि देवियां जिनमाता महारानी मरु देवीकी सेवाके लिये आ गईं। इन्द्र आदि समस्त देवोंने आकर अयोध्यापुरीमें खूब उत्सव किया और वस्त्र आभूषण आदिसे राजा नाभिराज और मरु देवीका खूब सत्कार किया। जो रत्नोंकी धारा गर्भाधानमें छह माह पहलेसे बरसती थी वह गर्भके दिनोंमें भी वैसी ही बरसती रही। इस तरह आषाढ़ शुक्ला द्वितीयाके दिन उत्तराषाढ़ नक्षत्रमें बज्रनाभि अहमिन्द्रने सर्वार्थ सिद्धिसे चयकर महादेवी मरु देवीके गर्भमें स्थान पाया। जब भगवान् गर्भमें आये थे तब तीसरे सुषम दुःषमा कालके चौरासी लाख पूर्व तथा चार वर्ष साढ़े पांच माह बाकी थे।

मरु देवीकी सेवाके लिये जो दिक्कुमारियां तथा श्री ह्री आदि देवियां आई थीं उन्होंने सबसे पहले स्वर्ग लोकसे आई हुई दिव्य औषधियोंसे उसका गर्भ शोधन किया और फिर निरन्तर गर्भकी रक्षा तथा उसके पोषणमें

दत्तचित्त रहने लगीं। वे देवियां मरु देवीकी तरह तरहकी सेवा करने लगीं—कोई शरीरमें तैलका मर्दन करती थी, कोई उबटन लगाती थी, कोई नहलाती थी, कोई चन्दन कपूर कस्तूरी आदि सुगन्धित द्रव्योंका लेप लगाती थीं, कोई बालोंको सम्भालकर उन्हें सुगन्धित फूलोंसे सजाती थी, कोई उत्तम वस्त्र पहिनाती थी, कोई कंकण केयूर मंजीर आदि अनेक तरहके आभूषण पहिनाती थी, कोई अमृतके समान अत्यन्त मधुर भोजन कराती थी, कोई शिरपर छत्र लगाती थी, कोई उत्तम ताम्बूलके बीड़े समर्पण करती थी कोई रत्नोंके चूर्णसे चौंक पूरती थी; कोई तलवार लेकर पहरा देती थी कोई आंगन बुहारती थी और कोई मनोहर कविताओं कहानियों, पहेलियों और समस्याओंके द्वारा उनका चित्त अनुरंजित करती थी। इस तरह देवियोंके साथ नृत्य गीत आदि विनोदोंके द्वारा मरु देवीका समय सुखसे बीतता था। उस समय विचित्र बात यह थी कि गर्भके दिन बीतते जाते थे पर उनके शरीरमें गर्भके कुछ भी चिन्ह प्रकट नहीं हुए थे। न पेट बढ़ा था न मुखकी कान्ति फीकी पड़ी थी न आंखों और स्तनोंमें भी कुछ परिवर्तन हुआ था।

जब धीरे धीरे गर्भका समय पूरा हो गया तब चैत्र कृष्ण नवमीके दिन उत्तम लग्नमें प्रातःकालके समय मरु देवीने पुत्र रत्न प्रसव किया। उस समय वह पुत्र सूर्यके समान मालूम होता था, क्योंकि जिस प्रकार सूर्य उदयाचलके द्वारा प्राची दिशामें प्रकट होता है उसी प्रकार वह भी महाराज नाभिराजके द्वारा महारानी मरुदेवीमें प्रकट हुआ था। जिस तरह सूर्य किरणोंसे प्रकाशमान होता है तथा अन्धकार नष्ट करता है उसी तरह वह भी मति, श्रुत अवधि ज्ञान रूपी किरणोंसे चमक रहा था और अज्ञान तिमिरको नष्ट करता था। बालक रूपी बाल सूर्यको देखकर देवाङ्गनाओंके नयन-कमल विकसित हो गये थे और उनसे हर्षाश्रु रूपी मकरन्द झरने लगा था। बालककी अनुपम प्रभासे समस्त प्रसूति गृह अन्धकार रहित हो गया था इसलिये देवियोंने जो दीपक जलाये थे वे सिर्फ मंगलके लिये ही थे। उस समय तीनों लोकोंमें क्षोभ मच गया था। क्षण एकके लिये नारकी भी सुखी हो गये थे। दिशाएं निर्मल हो गयी थीं, आकाश निर्मेघ हो गया था, नदी तालाब आदिका पानी

स्वच्छ हो गया था, सूर्यकी कान्ति फीकी पड़ गई थी, मन्द सुगन्धित पवन वह रहा था। बनमें एक साथ छहों ऋतुओंकी शोभा प्रकट हो गई थी। घर घर उत्सव मनाये जा रहे थे, जगह-जगहपर लय और तालके साथ सुन्दर संगीत हो रहे थे, मृदङ्ग, वीणा आदि बाजोंकी रसीली आवाज सारे गगनमें गूंज रही थी, मकानोंको शिखरोंपर कई रंगकी पताकाएं फहराई गई थीं। सड़कोंपर सुगन्धित जल सींचकर चन्दन छिड़का गया था और उत्तम उत्तम फूल बिखेरे गये थे और आकाशसे तरह तरहके रत्न तथा मन्दार, सुन्दर नमेरु, पारिजात, सन्तान आदि कल्प वृक्षोंसे फूल बरस रहे थे। इन सबसे अयोध्यापुरीकी शोभा बड़ी ही विचित्र मालूम होती थी। उस समय वहां ऐसा कोई भी मनुष्य नहीं था जिसका हृदय तीर्थंकर बालककी उत्पत्ति सुनकर आनन्दसे न उमड़ रहा हो। देव, दानव, मृग, मानव आदि सभी प्राणियोंके हृदयोंमें आनन्द सागर लहरा रहा था।

बालकके पुण्य प्रतापसे भवनवासी देवोंके भवनोंमें बिना बजाये ही शंख बजने लगे थे। व्यन्तरोंके भवनोंमें भेरीका शब्द होने लगा था। ज्योतिषियों के विमान सिंहनादसे प्रतिध्वनित हो उठे थे और कल्पवासी देवोंके विमानोंमें घण्टाओंका सुन्दर शब्द होने लगा था। 'जगद्गुरु जिनेन्द्र देवके सामने किसी दूसरेका राज्य सिंहासन सुदृढ़ नहीं रह सकता' मानो यह प्रकट करते हुए ही देवोंके आसन हिल गये थे। जब इन्द्र हजार आंखोंसे भी आसन हिलने-का कारण न जान सका तब उसने अपना अवधि ज्ञान रूपी लोचन खोला जिस से वह शीघ्र ही समझ गया था कि अयोध्यापुरीमें श्री महाराज नाभिराजके घर प्रथम तीर्थङ्करका जन्म हुआ है। यह जानकर इन्द्रने शीघ्रता पूर्वक सिंहा-सनसे उठ अयोध्यापुरीकी ओर सात कदम जाकर तीर्थंकर बालकको परोक्ष नमस्कार किया। फिर भगवान्के जन्माभिषेक महोत्सवमें शामिल होनेके लिये प्रस्थान भेरी बजवाई। भेरीका गम्भीर शब्द, चिरकालसे सोये हुए समीचीन धर्मको जगाते हुएके समान तीनों लोकोंमें फैल गया था प्रस्थान भेरीकी आवाज सुन समस्त देव सेनाएं अपने अपने आवासोंसे निकलकर स्वर्गके गो-पुर द्वारपर इन्द्रकी प्रतीक्षा करने लगीं। सौधर्म स्वर्गका इन्द्र भी इन्द्राणीके

साथ ऐरावत हाथीपर बैठकर समस्त देव सेनाओंके साथ साथ अयोध्यापुरी की ओर चला। रास्तेमें अनेक सुर नर्तकियां अभिनय करती जाती थीं। सरस्वती वीणा बजाती थी, गन्धर्व गाते थे और भरताचार्य नृत्यकी व्यवस्था करते जाते थे। उस समय परस्परके आघातसे टूट टूटकर नीचे गिरते हुए माला मणि ऐसे मालूम पड़ते थे मानो ऐरावत आदि हाथियों के पादसंचारसे चूर्ण हुए नक्षत्रोंके टुकड़े ही हों। धीरे २ वह देव सेना आकाशसे नीचे उतरी और अयोध्यापुरीकी तीन प्रदक्षिणाएं देकर उसे चारों ओरसे घेरकर आकाशमें ही स्थित हो गई। इन्द्र इन्द्राणी आदि कुछ प्रमुख जन नाभिराजके भवन पर पहुंचे और तीन प्रदक्षिणाएं देकर उसके भीतर प्रविष्ट हुए। वहाँ राजमन्दिरकी अनूठी शोभा देखकर इन्द्र बहुत ही हर्षित हुआ। जिन बालकको लानेके लिये इन्द्रने इन्द्राणीको प्रसूति गृहमें भेजा और स्वयं अंगणमें खड़ा रहा। वहां जब उसकी दृष्टि माताके पास शयन करते हुए जिन बालकपर पड़ी तब उसका हृदय आनन्दसे भर गया। इन्द्राणीने उन्हें भक्ति पूर्वक नमस्कार किया और फिर वह मरु देवीको मायामयी नींदसे अचेतकर उसके समीप में एक माया निर्मित बालक सुलाकर जिन बालकको बाहर ले आई। उस समय उनके आगे दिक्कुमारी देवियां अष्ट मंगल लिये हुए चल रही थीं, कोई जय जय शब्द कर रही थीं और कोई मनोहर मंगल गीत गा रही थीं। इन्द्राणीने ले जाकर जिन बालक इन्द्रके लिये सौंप दिया। कहते हैं कि इन्द्र दो आंखोसे बालकका सौंदर्य देखकर सन्तुष्ट नहीं हुआ था इसलिए उसने उसी समय विक्रियासे हजार आंखे बना ली थीं पर कौन कह सकता है कि वह हजार आंखोंसे भी उन्हें देखकर संतुष्ट हुआ होगा? उस समय देव सेनामें जय जय कार शब्दके सिवाय और कोई शब्द सुनाई नहीं पड़ता था। सौधर्म इन्द्रने उन्हें ऐरावत हाथीपर बैठाया और स्वयं अपने हाथों या गोदसे साधे रहा। उस समय बालक वृषभनाथके सिरपर ऐशान स्वर्गका इन्द्र धवल छत्र लगाये हुए था सनत्कुमार और माहेन्द्र स्वर्गके इन्द्र दोनों चमर ढोर रहे थे तथा अवशिष्ट इन्द्र और देव जय जय शब्दका उच्चारण कर रहे थे। इसके अनन्तर वह विशाल सेना आकाश मार्गसे मेरु पर्वतकी ओर चली

स्वच्छ हो गया था, सूर्यकी कान्ति फीकी पड़ गई थी, मन्द सुगन्धित पवन बह रहा था। बनमें एक साथ छहों ऋतुओंकी शोभा प्रकट हो गई थी। घर घर उत्सव मनाये जा रहे थे, जगह-जगहपर लय और तालके साथ सुन्दर संगीत हो रहे थे, मृदङ्ग, वीणा आदि बाजोंकी रसीली आवाज सारे गगनमें गूंज रही थी, मकानोंको शिखरोंपर कई रंगकी पताकाएं फहराईं गई थीं। सड़कोंपर सुगन्धित जल सींचकर चन्दन छिड़का गया था और उत्तम उत्तम फूल बिखेरे गये थे और आकाशसे तरह तरहके रत्न तथा मन्दार, सुन्दर नमेरु, पारिजात, सन्तान आदि कल्प वृक्षोंसे फूल बरस रहे थे। इन सबसे अयोध्यापुरीकी शोभा बड़ी ही विचित्र मालूम होती थी। उस समय वहां ऐसा कोई भी मनुष्य नहीं था जिसका हृदय तीर्थंकर बालककी उत्पत्ति सुनकर आनन्दसे न उमड़ रहा हो। देव, दानव, मृग, मानव आदि सभी प्राणियोंके हृदयोंमें आनन्द सागर लहरा रहा था।

बालकके पुण्य प्रतापसे भवनवासी देवोंके भवनोंमें बिना बजाये ही शंख बजने लगे थे। व्यन्तरोंके भवनोंमें भेरीका शब्द होने लगा था। ज्योतिषियों के विमान सिंहनादसे प्रतिध्वनित हो उठे थे और कल्पवासी देवोंके विमानोंमें घण्टाओंका सुन्दर शब्द होने लगा था। 'जगत्गुरु जिनेन्द्र देवके सामने किसी दूसरेका राज्य सिंहासन सुदृढ़ नहीं रह सकता' मानो यह प्रकट करते हुए ही देवोंके आसन हिल गये थे। जब इन्द्र हजार आंखोंसे भी आसन हिलनेका कारण न जान सका तब उसने अपना अवधि ज्ञान रूपी लोचन खोला जिससे वह शीघ्र ही समझ गया था कि अयोध्यापुरीमें श्री महाराज नाभिराजके घर प्रथम तीर्थङ्करका जन्म हुआ है। यह जानकर इन्द्रने शीघ्रता पूर्वक सिंहासनसे उठ अयोध्यापुरीकी ओर सात कदम जाकर तीर्थंकर बालकको परोक्ष नमस्कार किया। फिर भगवानके जन्माभिषेक महोत्सवमें शामिल होनेके लिये प्रस्थान भेरी बजवाई। भेरीका गम्भीर शब्द, चिरकालसे सोये हुए समीचीन धर्मको जगाते हुएके समान तीनों लोकोंमें फैल गया था प्रस्थान भेरीकी आवाज सुन समस्त देव सेनाएं अपने अपने आवासोंसे निकलकर स्वर्गके गोपुर द्वारपर इन्द्रकी प्रतीक्षा करने लगीं। सौधर्म स्वर्गका इन्द्र भी इन्द्राणीके

साथ ऐरावत हाथीपर बैठकर समस्त देव सेनाओंके साथ साथ अयोध्यापुरी की ओर चला। रास्तेमें अनेक सुर नर्तकियां अभिनय करती जाती थीं। सरस्वती वीणा बजाती थी, गन्धर्व गाते थे और भरताचार्य नृत्यकी व्यवस्था करते जाते थे। उस समय परस्परके आघातसे टूट टूटकर नीचे गिरते हुए माला मणि ऐसे मालूम पड़ते थे मानो ऐरावत आदि हाथियों के पादसंचारसे चूर्ण हुए नक्षत्रोंके टुकड़े ही हों। धीरे २ वह देव सेना आकाशसे नीचे उतरी और अयोध्यापुरीकी तीन प्रदक्षिणाएं देकर उसे चारों ओरसे घेरकर आकाशमें ही स्थित हो गई। इन्द्र इन्द्राणी आदि कुछ प्रमुख जन नाभिराजके भवन पर पहुंचे और तीन प्रदक्षिणाएं देकर उसके भीतर प्रविष्ट हुए। वहाँ राजमन्दिरकी अनूठी शोभा देखकर इन्द्र बहुत ही हर्षित हुआ। जिन बालकको लानेके लिये इन्द्रने इन्द्राणीको प्रसूति गृहमें भेजा और स्वयं अंगणमें खड़ा रहा। वहां जब उसकी दृष्टि माताके पास शयन करते हुए जिन बालकपर पड़ी तब उसका हृदय आनन्दसे भर गया। इन्द्राणीने उन्हें भक्ति पूर्वक नमस्कार किया और फिर वह मरु देवोको मायामयी नींदसे अचेतकर उसके समीप में एक मांया निर्मित बालक सुलाकर जिन बालकको बाहर ले आई। उस समय उनके आगे दिक्कुमारी देवियां अष्ट मंगल लिये हुए चल रही थीं, कोई जय जय शब्द कर रही थीं और कोई मनोहर मंगल गीत गा रही थीं। इन्द्राणीने ले जाकर जिन बालक इन्द्रके लिये सौंप दिया। कहते हैं कि इन्द्र दो आंखोसे बालकका सौंदर्य देखकर सन्तुष्ट नहीं हुआ था इसलिए उसने उसी समय विक्रियासे हजार आंखें बना ली थीं पर कौन कह सकता है कि वह हजार आंखोंसे भी उन्हें देखकर संतुष्ट हुआ होगा ? उस समय देव सेनामें जय जय कार शब्दके सिवाय और कोई शब्द सुनाई नहीं पड़ता था। सौधर्म इन्द्रने उन्हें ऐरावत हाथीपर बैठाया और स्वयं अपने हाथों वा गोदसे साधे रहा। उस समय बालक वृषभनाथके सिरपर ऐशान स्वर्गका इन्द्र धवल छत्र लगाये हुए था सनत्कुमार और माहेन्द्र स्वर्गके इन्द्र दोनों चमर ढोर रहे थे तथा अवशिष्ट इन्द्र और देव जय जय शब्दका उच्चारण कर रहे थे। इसके अनन्तर वह विशाल सेना आकाश मार्गसे मेरु पर्वतकी ओर चली

और धीरे धीरे निन्यानवे हजार योजन ऊंचे जाकर मेरु पर्वतपर पहुंच गई। मेरु पर्वतकी शिखर पर जो पाण्डुक वन है उसमें देव सेनाको ठहराकर देव-राज इन्द्र उस वनके ईशानकी ओर गया। वहां उसकी दृष्टि पाण्डुक शिला पर पड़ी। वह शिला स्फटिक मणियोंसे वनी हुई थी, देखनेमें अर्ध चन्द्र सी मालूम होती थी, पचास योजन चौड़ी सौ योजन लम्बी और आठ योजन ऊंची थी। उसके बीच भागमें एक रत्न खचित सोनेका सिंहासन रक्खा था और उस सिंहासनके दोनों ओर दो सिंहासन और रक्खे हुये थे। इन्द्रने वहांपर वस्त्रांग जातिके कल्प वृक्षोंसे प्राप्त हुये वस्त्रोंसे एक सुन्दर मण्डप तैयार करवाकर उसे अनेक तरहके रत्न और चित्रोंसे सजवाया था। इसके अनन्तर इन्द्रने जिन बालकको ऐरावत हाथीके गण्डस्थलसे उतारकर बीचके सिंहासन पर विराजमान कर दिया तथा बगलमें दोनों आसनोंपर सौधर्म और ऐशान स्वर्गके इन्द्र बैठे। इन दोनों इन्द्रोंके समीपसे लेकर क्षीर समुद्र तक देवोंकी दो पंक्तियां बनी हुई थीं जो वहांसे भरे जलसे कलश हाथों हाथ इन्द्रोंके पास पहुंचा रही थीं। दोनों इन्द्रोंने विक्रियासे हजार हजार हाथ बना लिये थे इसलिये उन्होंने एक साथ हजार कलशो लेकर बालकका अभिषेक किया। जिन बालकमें जन्मसे ही अतुल्य बल था इसलिये वे उस विशाल जल धारासे रंच मात्र भी व्याकुल नहीं हुये थे। यदि वह धारा किसी वज्रमय पर्वतपर पड़ती तो वह खण्ड खण्ड हो जाता पर वह प्रचण्ड जल धारा जिनेन्द्र बालकपर फूलोंकी कलीसे भी लघु मालूम होती थी। जब अभिषेकका कार्य पूरा हो गया तब इन्द्राणीने उत्तम वस्त्रसे शरीर पोंछकर उन्हें तरह तरहके आभूषण पहिनाये। देवराजने मनोहर शब्द और अर्थसे भरे हुये अनेक स्तोत्रोंके द्वारा उनकी खूब स्तुति की। भक्तिसे भरी हुई देव नर्तकियोंने सुन्दर अभिनय नृत्य किया और समस्त देवोंने उनका जन्म कल्याणक देखकर अपनी देव पर्यायको सफल समझा था। 'ये बालकवृष-धर्मसे शोभायमान हैं' ऐसा सोचकर इन्द्रने उनका वृषभ-नाथ नाम रक्खा। इस तरह इन्द्र आदि देव मंडल मेरु पर्वत पर अभिषेक महोत्सव समाप्त कर पुनः अयोध्याको वापिस आये और वहां उन्होंने जिन बालकको माताकी गोदमें देकर अभिषेक विधिके सब समाचार कह सुनाये।

जिससे उनके माता पिता आदि परिवारके लोग बहुत ही प्रसन्न हुए। उसी समय इन्द्रने आनन्दोद्यत नामका नाटक किया था जिसमें उसने अपनी अनूठी नृत्य कलाके द्वारा समस्त दर्शकोंके चित्तको मोहित कर लिया था। फिर विक्रियासे भगवान वृषभदेवके महाबल आदि दश पूर्व भवोंका दृश्य परिचय कराया था। महाराज नाभिराजने भी दिल खोलकर पुत्रोत्पत्तिके उपलक्ष्यमें अनेक उत्सव किये थे। उस समय अयोध्यापुरीकी शोभा सजावटके सामने कुबेरकी अलकापुरी और इन्द्रकी अमरावती बहुत कुछ फीकी मालूम होती थी। जन्माभिषेकका महोत्सव पूरा कर देव और देवेन्द्र अपने अपने स्थानों पर चले गये। जाते समय इन्द्र भगवानके लालन पालनमें चतुर कुछ देव कुमार और देव कुमारियोंको नाभिराजके भवन पर छोड़ गया था। वे देव कुमार विक्रियासे अनेक रूप बनाकर भगवानका मनोरञ्जन करते थे और देव कुमारियां तरह-तरहके उत्तम पदार्थोंसे उनका लालन पालन करती थीं। कहते हैं कि इन्द्रने भगवानके हाथके अंगूठेमें अमृत छोड़ दिया था जिसे चूस-चूसकर वे बड़े हुये थे उन्हें माताके दूध पीनेकी आवश्यकता नहीं हुई थी। बाल भगवान अपनी लीलाओंसे सभीका मन हर्षित करते थे। ऐसा कौन होगा उस समय ? जो बालककी मन्द मुसकान, तोतली बोली और मनोहर चेष्टाओंसे प्रमुदित न हो जाता हो। उन्हें जन्मसे ही मतिश्रुत और अवधि ज्ञान था। उनकी बुद्धि इतनी प्रखर थी कि उन्हें किसी गुरुसे विद्या सीखनेकी आवश्यकता नहीं पड़ी। वे अपने आप ही समस्त विद्याओं और कलाओंमें कुशल हो गये थे। उनके अद्भुत पाण्डित्यके सामने अच्छे अच्छे विद्वानोंको अभिमान छोड़ देना पड़ता था।

वे कभी विद्वान् मित्रोंके साथ कोमल कान्त पदावलीके द्वारा कविताकी रचना करते थे। कभी अलंकार शास्त्रकी चर्चा करते थे, कभी तरह तरहकी पहेलियोंके द्वारा मन बहलाया करते थे, कभी न्याय शास्त्रकी चर्चासे अभिमानी वादियोंका मान दूर करते थे, कभी सुन्दर संगीत सुधाका पान करते थे, कभी मयूर, तोता, हंस, सारस आदि पक्षियोंकी मनोहर चेष्टायें देख देख कर प्रसन्न होते थे, कभी आए हुये प्रजा जनसे मधुर वार्तालाप करते थे, कभी हाथीपर

सवार होकर नदी, नद, तालाब, बगीचा आदिकी सैर करते थे और सभी ऊंचे ऊंचे पहाड़ोंकी चोटियों पर चढ़कर प्रकृतिकी शोभा देखते थे। इस प्रकार राजकुमार वृषभनाथने सुख पूर्वक कुमार काल व्यतीत कर तरुण अवस्थामें पदार्पण किया। उस समय उनके शरीरकी शोभा तपाये हुये काञ्चनकी तरह बहुत ही भली मालूम होती थी। उनका शरीर 'नन्द्यावर्त' आदि एक सौ आठ लक्षण और मसूरिका आदि नौ सौ व्यञ्जनोंसे विभूषित था। उनका रुधिर दूधके समान सफेद था, शस्त्र पाषाण, धूप, सरदी, वर्षा, विष, अग्नि, कंटक आदि कोई भी वस्तुयें उन्हें कष्ट नहीं पहुंचा सकती थीं। उनके शरीरसे फूले हुये कमल सी गन्ध निकलती थी। जवानीने उनके अंग प्रत्यंगमें अपूर्व शोभा ला दी थी। यदि आप कवियोंकी वाणीको गप्प न समझते हों तो मैं कहूँगा कि उस समय निशा नायक चन्द्रमा अपने कलंकको दूर करनेके लिये भगवानका मुख बन गया था और उसकी स्त्री निशा अपना दोषा नाम हटानेके लिये उनके केश बन गई थी। यदि ऐसा न हुआ होता तो वहां उत्पल (नयन-कुमुद) और उत्तम श्री (अन्धकारकी शोभा तथा उत्कृष्ट शोभा) कहांसे आती ? क्योंकि उत्पलोंकी शोभा चन्द्रमाके रहते हुये और अन्धकारकी शोभा रातके रहते हुये ही होती है। उनके गलेमें तीन रेखायें थीं जिनसे मालूम होता था कि वह गला तीनों लोकोंमें सबसे सुन्दर है। गलेकी सुन्दर आभा देखकर बेचारे शंखसे न रहा गया और वह पराजित होकर समुद्रमें डूब मरा। कोई कहते हैं कि उनका वक्षःस्थल मोक्ष स्थान था क्योंकि वहां पर शुद्ध दोष रहित मुक्ताः—मानो नग्न मुक्त जीव विद्यमान थे। और कोई कहते हैं कि उनका वक्षःस्थल हिमालय पर्वत था क्योंकि उसपर मुक्ता हार रूपी गंगाका प्रवाह पड़ रहा था। उनकी नाभि सरोवरके समान सुन्दर थी उसमें मिथ्यात्व रूपी घामसे संतप्त हुआ धर्म रूपी हस्ती डूबा हुआ था इसलिये उसके पासकी काली रोम राजि उस हस्तीकी मद धारा सी मालूम होती थी। उनके कन्धे बैलके ककुद्के समान अत्यन्त स्थूल थे। भुजायें घुटनों तक लम्बी थीं। उरू त्रिभुवन रूप भवनके मजबूत खम्भोंके समान जान पड़ती थीं और चरण लाल कमलोंकी तरह मनोज्ञ थे।

यह आश्चर्यकी बात थी कि जो जवानी प्रत्येक मानव हृदय पर विकारकी छाप लगा देती है उस जवानीमें भी राजपुत्र वृषभनाथके मनपर विकारके कोई चिन्ह प्रगट नहीं हुये थे। उनकी बालकों जैसी खुली हंसी और निर्विकार चेष्टायें उस समय भी ज्यों की त्यों विद्यमान थीं।

एक दिन महाराज नाभिराजने वृषभनाथके बढ़ते हुये यौवनको देखकर उनका विवाह करना चाहा पर ज्योंही उनकी निर्विकार चेष्टाओं और उदासीनता पर महाराजकी दृष्टि पड़ी त्यों ही वे कुछ हिचक गये। उन्होंने सोचा—"कि इनका हृदय अभीसे निर्विकार है विकार शून्य है। जब ये बन्धन मुक्त हांथीकी नांई हठसे तपके लिये बनको चले जावेंगे तब दूसरेकी लड़कीका क्या होगा ?" क्षण एक ऐसा विचार करनेके बाद उनके दिलमें आया कि 'संभव है विवाह कर देनेसे ये कुछ संसारसे परिचित हो सकेंगे इसलिए सहसा वनको न भागेंगे और दूसरी बात यह भी है कि यह युगका प्रारम्भ है। इस समयके लोग बहुत भोले हैं, सृष्टिकी व्यवस्था एक चालसे नहींके बराबर है। लोग प्रायः एक दूसरेका अनुकरण करते हैं अतएव इस युगमें विवाहकी रीतिका प्रचलित करना तथा सृष्टिको व्यवस्थित बनाना अत्यन्त आवश्यक है। सम्भव है जब तक इनकी कालसन्धि (तप करनेके योग्य समयकी प्राप्ति) नहीं आई है तब तक ये विवाह संबन्ध स्वीकार कर भी लेंगे" ऐसा सोचकर किसी समय पिता नाभिराज वृषभनाथके पास गए। वृषभनाथने पिताका उचित सत्कार किया। कुछ समय ठहरकर नाभिराजने कहा—'हे त्रिभुवनपते ! यद्यपि मैं समझता हूँ कि आप स्वयं भू हैं—अपने आपही उत्पन्न हुए हैं, मैं आपकी उत्पत्तिमें उस तरह सिर्फ निमित्त मात्र हूं जिस तरह कि सूर्यकी उत्पत्तिमें उदयाचल होता है तथापि निमित्त मात्रकी अपेक्षा मैं आपका पिता हूँ इसलिए मेरी आज्ञाका पालन करना आपका कर्तव्य है। मुझे आशा है कि आप जैसे उत्तम पुत्र गुरु जनोंकी बातोंका उल्लंघन नहीं करेंगे। मैं जो बात कहना चाहता हूँ वह यह है कि इस समय आप लोककी सृष्टिकी ओर दृष्टि दीजिए जिसमें आपको लोककी सृष्टिमें प्रवृत्त हुआ देखकर दूसरे लोग भी उसमें प्रवृत्त होवें। इस समय मानव समाजको सृष्टिका क्रम सिखलानेके लिए आप ही सर्वोत्तम हैं,

आपका ही व्यक्तित्व सबसे ऊंचा है। इसके लिये आप किसी योग्य कन्याके साथ विवाह सम्बन्ध करनेकी अनुमति दीजियेगा।" जब इतना कहकर नाभिराज चुप हो रहे तब भगवान वृषभनाथने सिर्फ मन्द मुसकानसे पिताके वचनों का उत्तर दिया। महाराज नाभिराज पुत्रकी अनुमति पाकर बहुत प्रसन्न हुए उन्होंने उसी समय इन्द्रकी सहायतासे विवाहकी तैयारियांकरनी शुरू कर दीं और किसी शुभ मुहुर्तमें राजा कच्छ और महाकच्छकी बहिनें यशस्वती तथा सुनन्दाके साथ विवाह कर दिया। यशस्वती और सुनन्दाके सौन्दर्यके विषयमें विशेष न लिखकर इतना ही लिखना पर्याप्त होगा कि वे दोनों अनुपम सुन्दरी थीं उस समय उन जैसी सुन्दरी स्त्रियां दूसरी नहीं थीं। भगवानके विवाहोत्सवमें देव तथा देवराज सभी शामिल हुए थे। पुत्र वधुओंको देखकर माता मरु देवी का हृदय फूला न समाता था। उन दिनों अयोध्यामें कई तरहके उत्सव मनाये गये थे। यशस्वती और सुनन्दाने अपने रूप पाशसे वृषभनाथके चंचल चित्तको अपने वशमें कर लिया था। वे उन दोनोंके साथ नाना तरहकी क्रीड़ाएं करते हुए सुखसे समय बिताने लगे।

किसी एक दिन रातके समय यशस्वती महादेवी अपने महलकी छतपर पड़े हुए रत्नखचित पलंगपर सो रही थी। सोते समय उसने रात्रिके पिछले पहरमें सुमेरू पर्वत, सूर्य, चन्द्र, कमल, महीग्रसन और समुद्र ये स्वप्न देखे सवेरा होते ही माङ्गलिक बाजों तथा बन्दी जनोंकी स्तुतियोंके मनोहर शब्दोंसे उसकी नींद खुल गई। जब वह सोकर उठी तब उसे बहुत आश्चर्य हुआ। उसने स्वप्नोंका फल जाननेके लिये बहुत कुछ प्रयत्न किये पर जब सफलता न मिली तब नहा धोकर और सुन्दर वस्त्राभूषण पहिनकर भगवान वृषभनाथके पास गई। उन्होंने उसका खूब सत्कार किया तथा अपने पासमें ही सुवर्ण मय आसनपर बैठाया। कुछ समय बाद उनसे महादेवीने रातमें देखे हुए स्वप्न कहे और उनका फल जाननेकी इच्छा प्रकट की। हृदय वल्लभाके वचन सुनकर भगवान् वृषभनाथने हंसते हुए कहा कि सुन्दरि! तुम्हारे, मेरुपर्वतके देखनेसे चक्रवर्ती, सूर्यके देखनेसे प्रतापी, चन्द्रमाके देखनेसे कान्तिमान्, कमलके देखनेसे लक्ष्मीवान्, महीग्रसनके देखनेसे समस्त वसुधाका पालक और

समुद्रके देखनेसे गम्भीर हृदय वाला चरम शरीरी पुत्र उत्पन्न होगा। वह पुत्र इस इक्ष्वाकु वंशकी कीर्ति-कौमुदीको प्रसारित करेगा और अपने अतुल्य भुज बलसे भरत क्षेत्रके छहों खण्डोंका राज्य करेगा। पति देवके मुखसे स्वप्नोंका फल सुनकर यशस्वती महादेवी बहुत ही हर्षित हुई। इसके अनन्तर व्याघ्र-का जीव सुबाहु, जोकि सर्वार्थ सिद्धिमें अहमिंद्र हुआ था, वहांसे चयकर यशस्वतीके गर्भमें आया। धीरे २ महादेवीके शरीरमें गर्भके चिन्ह प्रकट हो गये, समस्त शरीर सफेद हो गया, स्तन युगल स्थूल और कृष्ण वर्ण हो गये, मध्य भाग कृष हो गया और उदर वृद्धिको प्राप्त हो गया था। उस समय उसका मन शृङ्गार चेष्टाओंसे हटकर वीर चेष्टाओंमें रमता था। वह शाणपर घिसी हुई तलवारमें मुंह देखती थी, योद्धाओंके वीरता भरे वचन सुनती थी, धनुषकी टंकार सुनकर अत्यन्त हर्षित होती थी, पिंजड़ेमें बन्द किये हुए सिंहोंके बच्चोंसे प्यार करती थी और शूर वीरोंकी युद्ध कला देखकर अत्यन्त प्रसन्न होती थी। महादेवीकी उक्त चेष्टाओंसे स्पष्ट मालूम होता था कि उसके गर्भमें किसी विशेष पराक्रमी पुरुषने अवतार लिया है।

क्रम-क्रमसे जब नौ महीने बीत चुके तब किसी शुभ लग्नमें प्रातः कालके समय उसने एक तेजस्वी बालकको प्रसूत किया। उस समय वह बालक प्रतापी सूर्यकी नाईं और यशस्वती देवी प्राची दिशाकी नांई मालूम होती थी। वह बालक अपनी भुजाओंसे जमीनको छूता हुआ उत्पन्न हुआ था इस लिये निमित्त शास्त्रके जानकारोंने कहा था कि यह पुत्र सार्वभौम समस्त पृथ्वीका अधिपति अर्थात् चक्रवर्ती होगा। पुत्र रत्नकी उत्पत्तिसे जिनराज वृषभ देव बहुत ही प्रसन्न हुए थे। मरु देवी और नाभिराजके हर्षका तो पार ही नहीं रहा था। उस समय अयोध्यामें ऐसा कोई भी मानव नहीं था जिसे वृषभ देवके पुत्रकी उत्पत्ति सुनकर हर्ष न हुआ हो। सम्पूर्ण नगरी तरह तरह की पताकाओंसे सजाई गई थी- राजमार्ग सुगंधित जलसे सींचे गये थे और उनपर सुगंधित फूल बिखेरे गये थे। प्रत्येक घरके आंगनोंमें रत्नचूर्णसे चौक पूरे गये थे और अट्टालिकाओंमें सारङ्गी तबला आदि मनोहर बाजोंके साथ संगीत चतुर पुरुषोंके श्रुति सुभग गान हुए थे। राजा नाभिराजने जो दान

दिया था उससे पराजित होकर कल्पवृक्ष, कामधेनु और चिन्तामणि रत्न भी भूलोक छोड़ कहीं अन्यत्र जा छिपे थे। कच्छ महाकच्छ आदि राजाओंने मिल कर पुत्रका जन्मोत्सव मनाया और उसका 'भरत' नाम रक्खा। भरत अपनी बाल चेष्टाओंसे माता पिता का मन हर्षित करता हुआ बढ़ने लगा।

भगवान् वृषभनाथके वज्रजंघ भवमें जो आनन्द नामका पुरोहित था और और क्रम क्रमसे सर्वार्थ सिद्धिमें अहमिन्द्र हुआ था वह कुछ समय बाद यशस्वतीके वृषभसेन नामका पुत्र हुआ। फिर क्रम क्रमसे सेठ धनमित्र, शार्दूलार्य वराहार्य, वानरार्य, और नकुलार्यके जीव सर्वार्थ सिद्धिसे च्युत होकर उसी यशस्वतीके क्रमसे अनन्तविजय, अनन्तवीर्य, अच्युत, वीर, और वरवीर नामके पुत्र हुए। इस तरह भरतके बाद महादेवी यशस्वतीके निन्यानवे पुत्र और ब्राह्मी नामक पुत्री उत्पन्न हुई। अब वृषभनाथ की दूसरी पत्नी सुनन्दा का हाल सुनिये।

किसी दिन रातके समय सुनन्दाने भी उत्तम स्वप्न देखे जिसके फल स्वरूप उसके गर्भमें वज्रजंघभवका सेनापति जो क्रम क्रमसे सर्वार्थ सिद्धिमें अहमिन्द्र हुआ था अवतीर्ण हुआ। नौ माहके बाद सुनन्दाने बाहुबली नामका पुत्र उत्पन्न किया। बाहुबली का जैसा नाम था वैसे ही उसमें गुण थे। उसकी वीर चेष्टाओंके सामने यशस्वती के समस्त पुत्रोंको मुहकी खानी पड़ती थी। वृषभेश्वर की वज्रसंघ भवमें जो अनुन्दरी, नामकी बहिन थी वह कुछ समय बाद उसी सुनन्दाके सुन्दरी नामकी पुत्री हुई। इस प्रकार भगवान् वृषभनाथ का समय अनेक पुत्र पुत्रियोंके साथ सुखसे व्यतीत होता था।

एक दिन भगवान् वृषभेश्वर सभाभवनमें स्वर्ण सिंहासन पर बैठे हुए थे कुछ अमरकुमार चमर ढोल रहे थे। वन्दीगण, गर्भकल्याणक जन्मकल्याण आदिकी महिमा का बखान कर रहे थे। पासमें ही देव मनुष्य विद्याधर वगैरह बैठे हुए थे। इतनेमें ब्राह्मी और सुन्दरी कन्यायें उनके पास पहुंची। कन्याओंने पिता वृषभदेव को झुक कर प्रणाम किया। वृषभदेवने उन्हें उठा कर अपनी गोदमें बैठा लिया और प्रेमसे कुशल प्रश्न पूछा। पुत्रियों की विनय शीलता देखकर वे बहुत ही प्रसन्न हुए। उसी समय उन्होंने विद्याप्रदान

के योग्य समझकर उन्हें विद्याप्रदान करनेका निश्चय किया और निश्चयानुसार वर्णमाला सिखलानेके बाद उन्होंने ब्राह्मीको गणित शास्त्र और सुन्दरी को व्याकरण छन्द तथा अलङ्कार शास्त्र सिखलाये। ज्येष्ठ पुत्र भरतके लिये अर्थ शास्त्र और नाट्य शास्त्र, बृषभसेन के लिये संगीत शास्त्र, अनन्त विजयके लिये चित्रकला और घर बनानेकी विद्या, बाहुबलीके लिये कामतन्त्र, सामुद्रिक शास्त्र, आयुर्वेद, धनुर्वेद हस्तितन्त्र अश्वतन्त्र तथा रत्न परीक्षा आदि शास्त्र पढ़ाये। इसी तरह अन्य पुत्रोंके लिये भी लोकोपकारी समस्त शास्त्र पढ़ाये। उस समय अनेक शास्त्रोंके जानकार पुत्रोंसे घिरे हुए भगवान् तेजस्वी किरणोंसे उपलक्षित सूर्यके समान मालूम होते थे। इस तरह महा पवित्र पुत्र और स्त्रियोंके साथ विनोद मय जीवन बिताते हुए भगवान् बृषभनाथ का बहुत कुछ समय क्षण एक के समान बीत गया था।

यह पहले लिख आये हैं कि वह समय अवसर्पिणी काल का था इसलिये प्रत्येक विषयमें ह्रास ही ह्रास होता जाता था। कुछ समय पहले कल्पबृक्षों के बाद बिना बोयी हुई धान्य पैदा होती थी पर अब वह नष्ट हो गई, औषधि वगैरह की शक्तियां कम हो गईं इसलिये मनुष्य खाने पीनेके लिये दुखी होने लगे। सब ओर त्राहि त्राहिकी आवाज सुनाई पड़ने लगी। जब लोगों को अपनी रक्षाका कोई भी उपाय नहीं सूझ पड़ा तब वे एकत्रित होकर महाराज नाभिराजकी सलाहसे भगवान् बृषभनाथके पास पहुंचे। और दीनता भरे वचनों में प्रार्थना करने लगे "हे त्रिभुवनपते! हे दयानिधे! हम लोगोंके दुर्भाग्य से कल्पवृक्ष तो पहले ही नष्ट हो चुके थे पर अब रही सही धान्य वगैरह भी नष्ट हो गई है। इसलिये भूख प्यासकी बाधायें हम सब को अधिक कष्ट पहुंचा रही हैं वर्षा, धूप, और शर्दीसे बचने के लिये हमारे पास कोई साधन नहीं है नाथ! इस तरह हम लोग कब तक जीवित रहेंगे आप हम सबके उपकार के लिये ही पृथ्वी तल पर उत्पन्न हुए हैं। आप विज्ञ हैं, समर्थ हैं, दयालुताके समुद्र हैं इसलिये जीविकाके कुछ उपाय बतला कर हमारी रक्षा कीजिये, प्रसन्न होइये।" इस तरह लोगों की आर्त वाणी सुनकर भगवान् वृषभदेव का हृदय दयासे भर आया। उन्होंने निश्चय किया कि पूर्व पश्चिम विदेहोंकी

दिया था उससे पराजित होकर कल्पवृक्ष, कामधेनु और चिन्तामणि रत्न भी भूलोक छोड़ कहीं अन्यत्र जा छिपे थे। कच्छ महाकच्छ आदि राजाओंने मिल कर पुत्रका जन्मोत्सव मनाया और उसका 'भरत' नाम रक्खा। भरत अपनी बाल चेष्टाओंसे माता पिता का मन हर्षित करता हुआ बढ़ने लगा।

भगवान् वृषभनाथके वज्रजंघ भवमें जो आनन्द नामका पुरोहित था और और क्रम क्रमसे सर्वार्थ सिद्धिमें अहमिन्द्र हुआ था वह कुछ समय बाद यशा· स्वतीके वृषभसेन नामका पुत्र हुआ। फिर क्रम क्रमसे सेठ धनमित्र, शार्दूलार्य वराहार्य, वानरार्य, और नकुलार्यके जीव सर्वार्थ सिद्धिसे च्युत होकर उसी यशस्वतीके क्रमसे अनन्तविजय, अनन्तवीर्य, अच्युत, वीर, और वरवीर नामके पुत्र हुए। इस तरह भरतके बाद महादेवी यशस्वतीके निन्यानवे पुत्र और ब्राह्मी नामक पुत्री उत्पन्न हुई। अब वृषभनाथ की दूसरी पत्नी सुनन्दा का हाल सुनिये।

किसी दिन रातके समय सुनन्दाने भी उत्तम स्वप्न देखे जिसके फल स्व- रूप उसके गर्भमें वज्रजंघभवका सेनापति जो क्रम क्रमसे सर्वार्थ सिद्धिमें अह- मिन्द्र हुआ था अवतीर्ण हुआ। नौ माहके बाद सुनन्दाने बाहुबली नामका पुत्र उत्पन्न किया। बाहुबली का जैसा नाम था वैसे ही उसमें गुण थे। उसकी वीर चेष्टाओंके सामने यशस्वती के समस्त पुत्रोंको मुहकी खानी पड़ती थी। वृषभेश्वर की वज्रसंघ भवमें जो अनुन्दरी, नामकी बहिन थी वह कुछ समय बाद उसी सुनन्दाके सुन्दरी नामकी पुत्री हुई। इस प्रकार भगवान् वृषभनाथ का समय अनेक पुत्र पुत्रियोंके साथ सुखसे व्यतीत होता था।

एक दिन भगवान् वृषभेश्वर सभाभवनमें स्वर्ण सिंहासन पर बैठे हुए थे कुछ अमरकुमार चमर ढोल रहे थे। वन्दीगण, गर्भकल्याणक जन्मकल्याण आदिकी महिमा का बखान कर रहे थे। पासमें ही देव मनुष्य विद्याधर वगैरह बैठे हुए थे। इतनेमें ब्राह्मी और सुन्दरी कन्यायें उनके पास पहुंची। कन्याओंने पिता वृषभदेव को झुक कर प्रणाम किया। वृषभदेवने उन्हें उठा कर अपनी गोदमें बैठा लिया और प्रेमसे कुशल प्रश्न पूछा। पुत्रियों की विनय शीलता देखकर वे बहुत ही प्रसन्न हुए। उसी समय उन्होंने विद्याप्रदान

के योग्य समझकर उन्हें विद्याप्रदान करनेका निश्चय किया और निश्चयानुसार वर्णमाला सिखलानेके बाद उन्होंने ब्राह्मीको गणित शास्त्र और सुन्दरी को व्याकरण छन्द तथा अलङ्कार शास्त्र सिखलाये। ज्येष्ठ पुत्र भरतके लिये अर्थ शास्त्र और नाट्य शास्त्र, वृषभसेन के लिये संगीत शास्त्र, अनन्त विजयके लिये चित्रकला और घर बनानेकी विद्या, बाहुबलीके लिये कामतन्त्र, सामुद्रिक शास्त्र, आयुर्वेद, धनुर्वेद हस्तितन्त्र अश्वतन्त्र तथा रत्न परीक्षा आदि शास्त्र पढ़ाये। इसी तरह अन्य पुत्रोंके लिये भी लोकोपकारी समस्त शास्त्र पढ़ाये। उस समय अनेक शास्त्रोंके जानकार पुत्रोंसे घिरे हुए भगवान् तेजस्वी किरणोंसे उपलक्षित सूर्यके समान मालूम होते थे। इस तरह महा पवित्र पुत्र और स्त्रियोंके साथ विनोद मय जीवन बिताते हुए भगवान् वृषभनाथ का बहुत कुछ समय क्षण एक के समान बीत गया था।

यह पहले लिख आये हैं कि वह समय अवसर्पिणी काल का था इसलिये प्रत्येक विषयमें ह्रास ही ह्रास होता जाता था। कुछ समय पहले कल्पवृक्षों के बाद बिना बोयी हुई धान्य पैदा होती थी पर अब वह नष्ट हो गई, औषधि वगैरह की शक्तियां कम हो गईं इसलिये मनुष्य खाने पीनेके लिये दुखी होने लगे। सब ओर त्राहि त्राहिकी आवाज सुनाई पड़ने लगी। जब लोगों को अपनी रक्षाका कोई भी उपाय नहीं सूझ पड़ा तब वे एकत्रित होकर महाराज नाभिराजकी सलाहसे भगवान् वृषभनाथके पास पहुंचे। और दीनता भरे वचनों में प्रार्थना करने लगे "हे त्रिभुवनपते! हे दयानिधे! हम लोगोंके दुर्भाग्य से कल्पवृक्ष तो पहले ही नष्ट हो चुके थे पर अब रही सही धान्य वगैरह भी नष्ट हो गई है। इसलिये भूख प्यासकी बाधायें हम सब को अधिक कष्ट पहुंचा रही हैं वर्षा, घूप, और शर्दीसे बचने के लिये हमारे पास कोई साधन नहीं है नाथ! इस तरह हम लोग कब तक जीवित रहेंगे आप हम सबके उपकार के लिये ही पृथ्वी तल पर उत्पन्न हुए हैं। आप विज्ञ हैं, समर्थ हैं, दयालुताके समुद्र हैं इसलिये जीविकाके कुछ उपाय बतला कर हमारी रक्षा कीजिये, प्रसन्न होइये।" इस तरह लोगों की आर्त वाणी सुनकर भगवान् वृषभदेव का हृदय दयासे भर आया। उन्होंने निश्चय किया कि पूर्व पश्चिम विदेहोंकी

दिया था उससे पराजित होकर कल्पवृक्ष, कामधेनु और चिन्तामणि रत्न भी भूलोक छोड़ कहीं अन्यत्र जा छिपे थे। कच्छ महाकच्छ आदि राजाओंने मिल कर पुत्रका जन्मोत्सव मनाया और उसका 'भरत' नाम रक्खा। भरत अपनी बाल चेष्टाओंसे माता पिता का मन हर्षित करता हुआ बढ़ने लगा।

भगवान् वृषभनाथके वज्रजंघ भवमें जो आनन्द नामका पुरोहित था और और क्रम क्रमसे सर्वार्थ सिद्धिमें अहमिन्द्र हुआ था वह कुछ समय बाद यशस्वतीके वृषभसेन नामका पुत्र हुआ। फिर क्रम क्रमसे सेठ धनमित्र, शार्दूलार्य वराहार्य, वानरार्य, और नकुलार्यके जीव सर्वार्थ सिद्धिसे च्युत होकर उसी यशस्वतीके क्रमसे अनन्तविजय, अनन्तवीर्य, अच्युत, वीर, और वरवीर नामके पुत्र हुए। इस तरह भरतके बाद महादेवी यशस्वतीके निन्यानवे पुत्र और ब्राह्मी नामक पुत्री उत्पन्न हुई। अब वृषभनाथ की दूसरी पत्नी सुनन्दा का हाल सुनिये।

किसी दिन रातके समय सुनन्दाने भी उत्तम स्वप्न देखे जिसके फल स्वरूप उसके गर्भमें वज्रजंघभवका सेनापति जो क्रम क्रमसे सर्वार्थ सिद्धिमें अहमिन्द्र हुआ था अवतीर्ण हुआ। नौ माहके बाद सुनन्दाने बाहुबली नामका पुत्र उत्पन्न किया। बाहुबली का जैसा नाम था वैसे ही उसमें गुण थे। उसकी वीर चेष्टाओंके सामने यशस्वती के समस्त पुत्रोंको मुहकी खानी पड़ती थी। वृषभेश्वर की वज्रजंघ भवमें जो अनुन्दरी, नामकी बहिन थी वह कुछ समय बाद उसी सुनन्दाके सुन्दरी नामकी पुत्री हुई। इस प्रकार भगवान् वृषभनाथ का समय अनेक पुत्र पुत्रियोंके साथ सुखसे व्यतीत होता था।

एक दिन भगवान् वृषभेश्वर सभाभवनमें स्वर्ण सिंहासन पर बैठे हुए थे कुछ अमरकुमार चमर ढोल रहे थे। वन्दीगण, गर्भकल्याणक जन्मकल्याण आदिकी महिमा का बखान कर रहे थे। पासमें ही देव मनुष्य विद्याधर वगैरह बैठे हुए थे। इतनेमें ब्राह्मी और सुन्दरी कन्यायें उनके पास पहुंची। कन्याओंने पिता वृषभदेव को झुक कर प्रणाम किया। वृषभदेवने उन्हें उठा कर अपनी गोदमें बैठा लिया और प्रेमसे कुशल प्रश्न पूछा। पुत्रियों की विनय शीलता देखकर वे बहुत ही प्रसन्न हुए। उसी समय उन्होंने विद्याप्रदान

के योग्य समझकर उन्हें विद्याप्रदान करनेका निश्चय किया और निश्चयानुसार वर्णमाला सिखलानेके बाद उन्होंने ब्राह्मीको गणित शास्त्र और सुन्दरी को व्याकरण छन्द तथा अलङ्कार शास्त्र सिखलाये। ज्येष्ठ पुत्र भरतके लिये अर्थ शास्त्र और नाट्य शास्त्र, वृषभसेन के लिये संगीत शास्त्र, अनन्त विजयके लिये चित्रकला और घर बनानेकी विद्या, बाहुबलीके लिये कामतन्त्र, सामुद्रिक शास्त्र, आयुर्वेद, धनुर्वेद हस्तितन्त्र अश्वतन्त्र तथा रत्न परीक्षा आदि शास्त्र पढ़ाये। इसी तरह अन्य पुत्रोंके लिये भी लोकोपकारी समस्त शास्त्र पढ़ाये। उस समय अनेक शास्त्रोंके जानकार पुत्रोंसे घिरे हुए भगवान् तेजस्वी किरणोंसे उपलक्षित सूर्यके समान मालूम होते थे। इस तरह महा पवित्र पुत्र और स्त्रियोंके साथ विनोद मय जीवन बिताते हुए भगवान् वृषभनाथ का बहुत कुछ समय क्षण एक के समान बीत गया था।

यह पहले लिख आये हैं कि वह समय अवसर्पिणी काल का था इसलिये प्रत्येक विषयमें ह्रास ही ह्रास होता जाता था। कुछ समय पहले कल्पवृक्षों के बाद बिना बोयी हुई धान्य पैदा होती थी पर अब वह नष्ट हो गई, औषधि वगैरह की शक्तियां कम हो गईं इसलिये मनुष्य खानें पीनेके लिये दुखी होने लगे। सब ओर त्राहि त्राहिकी आवाज सुनाई पड़ने लगी। जब लोगों को अपनी रक्षाका कोई भी उपाय नहीं सूझ पड़ा तब वे एकत्रित होकर महाराज नाभिराजकी सलाहसे भगवान् वृषभनाथके पास पहुंचे। और दीनता भरे वचनों में प्रार्थना करने लगे "हे त्रिभुवनपते! हे दयानिधे! हम लोगोंके दुर्भाग्य से कल्पवृक्ष तो पहले ही नष्ट हो चुके थे पर अब रही सही धान्य वगैरह भी नष्ट हो गई है। इसलिये भूख प्यासकी बाधायें हम सब को अधिक कष्ट पहुंचा रही हैं वर्षा, धूप, और शर्दीसे बचने के लिये हमारे पास कोई साधन नहीं है नाथ! इस तरह हम लोग कब तक जीवित रहेंगे आप हम सबके उपकार के लिये ही पृथ्वी तल पर उत्पन्न हुए हैं। आप विज्ञ हैं, समर्थ हैं, दयालुताके समुद्र हैं इसलिये जीविकाके कुछ उपाय बतला कर हमारी रक्षा कीजिये, प्रसन्न होइये।" इस तरह लोगों की आर्त वाणी सुनकर भगवान् वृषभदेव का हृदय दयासे भर आया। उन्होंने निश्चय किया कि पूर्व पश्चिम विदेहोंकी

तरह यहांपर भी ग्राम शहर आदिका विभाग कर असि, मषी, कृषी, शिल्प, वाणिज्य और विद्या इन छह कार्योंकी प्रवृति करनी चाहिये। ऐसा करने पर ही लोग सुखसे आजीविका कर सकेंगे ऐसा निश्चयकर उन्होंने लोगों को आश्वासन दिया और इच्छानुसार समस्त व्यवस्था करने के लिये इन्द्र का स्मरण किया। उसी समय इन्द्र समस्त देवोंके साथ अयोध्यापुरी आया और वृषभेश्वरके चरण कमलों में प्रणाम कर आज्ञाकी प्रतीक्षा करने लगा। भगवान् ने अपने समस्त विचार इन्द्रके सामने प्रगट किये। इन्द्रने हर्षित हो मस्तक झुका कर उनके विचारों का समर्थन किया और स्वयं देव परिवारके साथ सृष्टिकी रचना करनेके लिये तत्पर हो गया।

सबसे पहले उसने अयोध्यापुरीमें चारों दिशाओंमें बड़े-बड़े सुन्दर जिनमन्दिरोंकी रचना की फिर काशी-कौशल कलिंग-कर हाटक अंग-बंग-मगध-चोल-केरल-मालव-महाराष्ट्र सोरठ-आन्ध्र-तुरुष्क-शूरसेन विदर्भ आदि देशोंका विभाग किया। उन देशोंमें नदी-नहर-तालाब वन-उपवन आदि लोकोपयोगी सामग्रीका निर्माण किया। फिर उन देशोंके मध्यमें परिखा कोट बगीचा आदिसे शोभायमान गांव पुर खेट कर्वट आदिकी रचना की। उस समय पुर अर्थात् नगरोंका विभाग करनेवाले इन्द्रका पुरन्दर नाम सार्थक हो गया था। वृषभेश्वरकी आज्ञा पाकर देवेन्द्रने उन नगरोंमें प्रजाको ठहराया। प्रजा जन भी रहनेके लिए ऊंचे ऊंचे मकान पा अत्यन्त प्रसन्न हुए। इन्द्र अपना कर्तव्य पूरा कर समस्त देवोंके साथ स्वर्गको चला गया। किसी दिन मौका पाकर वृषभदेवने प्रजाके लोगों क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन तीन वर्णोंकी कल्पना कर उन्हें उनके योग्य आजीविकाके उपाय बतलाये उन्होंने क्षत्रियोंके लिए धनुष बांण तलवार आदि शस्त्रोंका चलाना सिखलाकर दीन हीन जनोंकी रक्षा करनेका कार्य सौंपा। वैश्योंके लिये देश विदेशोंमें घूमकर तरह तरहके व्यापार करना सिखलाए और शूद्रोंके लिए दूसरोंकी सेवा शुश्रूषाका काम सौंपा था। उस समय भगवान्का आदेश लोगोंने मस्तक झुकाकर स्वीकार किया था जिससे सब ओर सुख शान्ति नजर आने लगी थी।

वृषभेश्वरने सृष्टिकी सुव्यवस्था की थी इसलिए लोग उन्हें स्रष्टा-ब्रह्मा

नामसे, और उस युगको कृतयुग नामसे पुकारने लगे थे। जब भगवान् आदि-नाथका प्रजाके ऊपर पूर्ण व्यक्तित्व प्रगट हो गया तब इन्द्रने समस्त देवोंके साथ आकर महाराज नाभिराजकी सम्मति पूर्वक उनका राज्याभिषेक किया। राज्याभिषेकके समय अयोध्यापुरीकी खूब सजावट की गई थी, गगन चुम्बी मकानों पर कई रंगकी पताकाएं फहराई गईं थीं, जगह जगह पर तोरण द्वार बनाकर उनमें मणिमयी बन्धन मालाएं बांधी गई थीं और सड़कें सुगन्धित जलसे सींची जाकर उनपर हरी हरी दूब बिछाई गई थी जगद्गुरु आदिनाथका राज्याभिषेक था और देव देवेन्द्र उसके प्रवर्तक थे तब किसकी कलममें ताकत है जो उस समयकी समग्र शोभाका वर्णन कर सके।

मणि खचित सुवर्ण सिंहासन पर बैठे हुए भगवान् आदिनाथका तेजोमय मुख ठीक सूर्यके समान चमकता था। पासमें खड़े हुए वन्दीगण मनोहर शब्दों में उनकी कीर्ति गा रहे थे। महाराज नाभिराजने अपने हाथसे उनके मस्तकपर राज्य पट्ट बांधा था। उस समय सनत्कुमार और माहेन्द्र स्वर्गके इन्द्र चमर ढोल रहे थे और ईशान स्वर्गका इन्द्र शिरपर छत्र लगाए हुए था। सौधर्मेन्द्रने सभास्थलमें आनन्द नामका नाटक किया था जिससे समस्त देव दानव नर, विद्याधर वगैरह अत्यन्त हर्षित हुए थे। भगवान् आदिनाथने पहले प्रभावक शब्दोंमें सुन्दर भाषण दिया जिसमें धर्म अर्थ आदि पुरुषार्थोंका स्पष्ट विवेचन किया गया था। फिर लघुता प्रगट करते हुए सृष्टिका भार अपने कन्धोंपर लिया था—राज्य करना स्वीकार किया था। भगवानका राज्याभिषेक समाप्त कर देव देवेन्द्र वगैरह अपने अपने स्थानों पर चले गये।

यह हम पहले लिख आए हैं कि वृषभ देवने प्रजाको-सुव्यवस्थित बनानेके लिए उसमें क्षत्रिय वैश्य और शूद्र वर्णका विभाग कर दिया था! तथा उन्हें उनके योग्य कार्य भार सौंप दिया था। लोग उक्त व्यवस्थासे सुखमय जीवन बिताने लगे थे। पर कालके प्रभावसे लोगोंके हृदय उत्तरोत्तर कुटिल होते जाते थे इसलिए कोई कभी वर्ण व्यवस्थाके क्रमका उल्लंघन भी कर बैठते थे। वह क्रमोल्लंघन आदिनाथको सह्य नहीं हुआ इसलिए उन्होंने द्रव्य क्षेत्र काल और भावका ख्याल रखते हुये अनेक तरहके दंड विधान नियुक्त किये थे।

उन्होंने अपने सिवाय सोमप्रभ, हरि. अकम्पन और काश्यप नामके चार महा माण्डलिक राजाओंका भी राज्याभिषेक कराया था। उन चारों माण्डलिक राजाओंमें प्रत्येकके चार चार हजार मुकुट बद्ध राजा आधीन थे। आदिनाथने इन राजाओंको अनेक प्रकारके दण्ड विधान सिखलाकर राज्यका भार सौंप दिया था और आप महा मण्डलेश्वर होकर सबकी देख भाल किया करते थे। भगवान आदिनाथने सोमप्रभको 'कुरुराज' नामसे पुकारा था और उनके वंशका नाम कुरु वंश रक्खा था। हरिको 'हरिकान्त' नामसे सम्बोधित किया था और उनके वंशका नाम हरिवंश रक्खा था। अकम्पनको 'श्रीधर' नामसे प्रख्यात किया था और उनके वंशका नाम नाथ वंश रक्खा था। एवं काश्यपको 'मघवा' नामसे पुकारा था और उनके वंशका नाम उग्र वंश रक्खा था। इसके सिवाय कच्छ महाकच्छ आदि राजाओंको भी वृषभेश्वरने अच्छे अच्छे देशोंका राजा बना दिया था। अपने पुत्रोंमें ज्येष्ठ पुत्र भरतको युवराज बनाया तथा शेष पुत्रोंको भी योग्य पदोंपर नियुक्त किया था।

भगवान् वृषभनाथने समस्त मनुष्योंको इक्षु-ईखके रसका संग्रह करनेका उपदेश दिया था इसलिये लोग उन्हें इक्ष्वाकु कहने लगे थे। उन्होंने प्रजा पालनके उपाय प्रचलित किये थे इसलिये उन्हे प्रजापति कहते थे। उन्होंने अपने वंशकुलका उद्धार किया था इसलिये लोग उन्हें कुलधर कहते थे। वे काश्य अर्थात् तेजके अधिपति थे इसलिये लोग उन्हें काश्यप कहते थे। वे कृत युगके प्रारम्भमें सबसे पहले हुए थे इसलिये लोग उन्हें आदि ब्रह्मा नामसे पुकारते थे। अधिक कहांतक कहें, उस समयकी प्रजाने उनके गुणोंसे विमुग्ध होकर कई तरहके सुन्दर सुन्दर नाम रख लिये थे।

उनके राज्य कालमें कभी किसी जगह राजाओंमें परस्पर कलह नहीं हुई। सब देश खूब सम्पन्न थे कहीं भी ईति भीतिका डर नहीं था, सभी लोग सुखी थे। वहांका प्रत्येक प्राणी राज राजेश्वर भगवान् वृषभदेवके राज्यकी प्रशंसा किया करता था। इस तरह उन्होंने तिरेसठ लाख पूर्व वर्षतक राज्य किया। सो उनका वह विशाल समय पुत्र पौत्र आदिका सुख भोगते हुए सहज हीमें व्यतीत हो गया था।

एक दिन भगवान् वृषभदेव राजसभामें सुवर्ण सिंहासनपर बैठे हुए थे। उनके आस पासमें और भी अनेक राजा सामन्त पुरोहित मन्त्री आदि बैठे हुए थे। इतनेमें उपासना करनेके लिये अनेक देव देवियोंके साथ सौधर्म स्वर्गका इन्द्र आया। आते समय इन्द्र सोचता आता था 'कि भगवान् वृषभदेव अबतक सामान्य मनुष्योंकी भांति विषय वासनामें फंसे हुए हैं। जबतक ये विषय वासनासे हटकर मुनि मार्गमें पदार्पण नहीं करेंगे तबतक संसारका कल्याण होना मुश्किल है इसलिये किसी छलसे आज इन्हें विषय भोगोंसे विरक्त बना देनेका उद्योग करना चाहिये।' यह सोचकर उसने राज सभामें एक नीलाञ्जना नामक अप्सराको जिसकी आयु अत्यन्त अल्प रह गई थी नृत्य करनेके लिये खड़ा किया। जब नीलाञ्जना नृत्य करते करते क्षण एकमें बिजलीकी भांति विलीन हो गई तब इन्द्रने रसमें भङ्ग न हो इसलिये उसीके समान रूप और वेष भूषावाली दूसरी अप्सरा नृत्य स्थलमें खड़ी कर दी। वह भी नीलाञ्जनाकी तरह हाव भाव पूर्वक मनोहर अभिनय दिखाने लगी। सामान्य जनताको इस सब परिवर्तनका कुछ भी पता नहीं लगा पर भगवान् की दिव्यदृष्टिसे यह समाचार छिपा न रहा। वे नीलाञ्जनाके अदृश्य होते ही संसारसे एकदम उदास हो गये। इन्द्रने अपनी चतुराईसे जो दूसरी अप्सरा खड़ी की थी उसका उनपर कुछ भी असर नहीं हुआ। वे सोचने लगे—'कि यह शरीर हवाके वेगसे कम्पित दीप शिखाकी नांई नश्वर है, यह लक्ष्मी बिजलीकी चमककी तरह क्षण भंगुर है, यौवन संध्याकी लालीके समान देखते देखते नष्ट हो जाता है और यह विषय सुख समुद्रकी लहरोंके समान चञ्चल है। इन्द्रकी आज्ञासे नृत्य करती हुई यह कमलनयिनी देवी भी जब आयु क्षीण हो जानेपर इस अवस्था-मृत्युको प्राप्त हुई है तब कौन दूसरा संसारमें अमर होगा? देवोंके सामने मनुष्योंकी आयु ही कितनी है? यह लक्ष्मी विषराशि-समुद्रसे उत्पन्न हुई है तब भी लोग इसे अमृत सागरसे उत्पन्न हुई बतलाते हैं। जो शरीर इस आत्माके साथ दूध और पानीकी तरह मिला हुआ है—सुख दुःखमें साथ देता है वह भी जब समय पाकर आत्मासे न्यारा हो जाता है तब बिलकुल न्यारे रहनेवाले स्त्री, पुत्री, पुत्र,

धन सम्पत्ति वगैरहमें कैसे स्थिर बुद्धि की जा सकती है ? यह प्राणी पापके वश नरक गतिमें जाता है, वहां सागरों पर्यन्त अनेक तरहके दुःख भोगता है वहांसे निकल तिर्यंच गतिमें शीत-उष्ण क्षुत्-प्यास आदिके विविध दुःख उठाता है। कदाचित् सौभाग्यसे मनुष्य भी हुआ तो दरिद्रता रोग आदिसे दुःखी होकर हमेशा संक्लेशका अनुभव करता है और कभी कुछ पुण्योदयसे देव भी हुआ तो वहां भी अनेक मानसिक दुःखोंसे दुःखी होता रहता है। इस तरह चारों गतियोंमें कहीं भी सुखका ठिकाना नहीं है। सच्चा सुख मोक्षमें ही प्राप्त हो सकता है और वह मोक्ष मनुष्य पर्यायसे ही प्राप्त किया जा सकता है ! इस मनुष्य पर्यायको पाकर यदि मैंने आत्म कल्याणके लिये प्रयत्न नहीं किया तब मुझसे मूर्ख और कौन होगा ?" इधर भगवान् अपने हृदयमें ऐसा विचार कर रहे थे उधर ब्रह्मलोक-पांचवें स्वर्गमें रहनेवाले लौकान्तिक देवोंके आसन कम्पायमान हुए जिससे वे भगवान आदिनाथका हृदय विषयोंसे विरक्त समझ कर शीघ्र ही उनके पास आये और तरह तरहके वचनोंसे स्तुति कर उनके विचारोंका समर्थन करने लगे। देवोंके वचन सुनकर उनकी वैराग्यधारा अत्यन्त वेगवती हो गई। अब उन्हें राज्य सभामें, गगन-चुम्बी महलोंमें, स्वर्गपुरीको जीतनेवाली अयोध्यापुरीमें और स्त्री, पुत्र, धन, धान्य आदिमें थोड़ा भी आनन्द नहीं आता था। जब लौकान्तिक देव अपना कार्य समाप्त कर हंसोंकी नांई आकाशमें उड़ गये तब इन्द्र सतीन्द्र आदि चारों निकायके देवोंने अयोध्यापुरी आकर जय जय घोषणाके साथ भगवान्का क्षीरसागरके जलसे अभिषेक किया। अभिषेकके बादमें तपः कल्याणककी विधि प्रारम्भ की। इसी बीचमें भगवान् वृषभदेवने ज्येष्ठ पुत्र भरतके लिये राजगद्दी देकर बाहुबलीको युवराज बना दिया था जिससे वे राज्य कार्यकी ओरसे बिलकुल निराकुल हो गये थे। उस समय तपःकल्याणक और राज्याभिषेक इन दो महान् उत्सवोंसे नर नारियों और देव देवियोंके ही क्या प्राणी मात्रके हृदयोंमें आनन्द सागर लहरा रहा था। त्रिभुवन पति भगवान् वृषभनाथ, महाराज नाभिराज और महारानी मरुदेवी आदिसे आज्ञा लेकर वनमें जानेके लिये देव निर्मित पालकीपर सवार हुए। वह पालकी खूब

सजाई गई थी उसके ऊपर कई रंगोंकी पताकाएं लगी हुई थीं और चारों ओर बंधी हुई मणियोंकी छोटी छोटी घंटियां रुण झुण शब्द करती थीं। सबसे पहले बड़े बड़े भूमि गोचरी राजा पालकीको अपने कंधोंपर रखकर जमीनमें सात कदम चले फिर विद्याधर राजा कन्धोंपर रखकर सात कदम आकाशमें चले इसके अनन्तर प्रेमसे भरे हुए सुर असुर उस पालकीको अपने कन्धों पर रखकर आकाश मार्ग से चले। उस समय देव देवेन्द्र जय जय शब्द बोलते और कल्प वृक्षके सुगन्धित फूलोंकी वर्षा करते जाते थे। असंख्य देव देवियां और नर नारी समूह भगवान्के पीछे जा रहा था। शोक से विह्वल माता मरुदेवी, महादेवी, यशस्वती और सुनन्दा आदि अंतःपुर की नारियां तथा महाराज नाभिराज, भरतेश्वर, बाहुबली कच्छ महाकच्छ आदि प्रधान प्रधान राजा अत्यन्त उत्कण्ठित भावसे भगवान्के तपः कल्याणक की महिमा देख रहे थे। देव लोग भगवान्की पालकी अयोध्यापुरीके समीपवर्ती सिद्धार्थ नामक वनमें ले गये। वह वन चारों ओरसे सुगन्धित फूलोंकी सुवास से सुगन्धित हो रहा था। वहां चतुर देवांगनाओंने कई तरह चौक पूर रक्खे थे। देवोंने एक सुन्दर पट मण्डप बनाया था जिसमें देवांगनाओं का मनोहर अभिनय नृत्य हो रहा था। वह वन गन्धर्व और किन्नरों के सुरीले संगीत से गूंज रहा था। वनके मध्य भाग में एक चन्द्रकान्त मणिकी शिला पड़ी थी। पालकीसे उतर कर भगवान उसी शिला पर बैठ गये। वहां उन्होंने क्षण भर ठहर कर सबकी ओर मधुर दृष्टिसे देखा और फिर देव, देवेन्द्र तथा कुटुम्बी जनोंसे पूछ कर समस्त वस्त्राभूषण उतार कर फेंक दिये। पंच मुष्टियोंसे केश उखाड़ डाले तथा पूर्व दिशाकी ओर मुंहकर खड़े हो सिद्ध परमेष्ठी को नमस्कार करते हुए इन्द्र, सिद्ध, और आत्माकी साक्षी पूर्वक समस्त परिग्रहों का त्याग कर दिया था इस तरह भगवान् आदिनाथने चैत्र बदी नवमी के दिन सायंकालके समय उत्तराषाढ़ नक्षत्रमें जिन दीक्षा ग्रहण की थी। इन्हें दीक्षा लेते समयही मनःपर्यय ज्ञान और अनेक ऋद्धियां प्राप्त हो गईं थीं। इनके साथमें कच्छ महाकच्छ आदि चार हजार राजाओंने भी जिनदीक्षा ग्रहण की थी। चार हजार मुनियोंसे घिरे हुए आदीश्वर महाराज, तारा परिवृत चन्द्रमा की तरह शोभायमान होते थे।

दीक्षा लेते समय वृषभदेवने जो केश उखाड़ कर फेंक दिये थे इन्द्र उन्हें रत्नमयी पिटारीमें रखकर क्षीर सागर ले गया। और उसकी तरल तरङ्गोंमें विनय-पूर्वक छोड़ आया था। जिनेन्द्रके तप कल्याणकका उत्सव पूराकर समस्त देव देवेन्द्र अपने स्थान पर चले गये। बाहुबली आदि राजपुत्र भी पितृ वियोगसे कुछ खिन्न होते हुए अयोध्यापुरी को लौट आये।

वनमें भगवान् आदिनाथ छह महीनाका अनशन धारणकर एक आसनसे बैठे हुए थे। धूप, वर्षा, शीत आदिकी बाधाएं उन्हें रंच-मात्र भी विचलित नहीं कर सकीं थीं। वे मेरुके समान अचल थे, बालकके समान निर्विकार थे, निर्मेघ आकाशकी तरह शुद्ध थे, साक्षात् शरीरधारी शमके समान मालूम होते थे। उनकी दृष्टि नासाके अग्र भाग पर लगी हुई थी हाथ नीचेको लटक रहे थे, और मुंहके भीतर अव्यक्त रूपसे कुछ मन्त्राक्षरों का उच्चारण हो रहा था। कहनेका मतलब यह है कि वे समस्त इन्द्रियोंको बाह्य व्यापारसे हटाकर अध्यात्म की ओर लगा चुके थे। अपने आप उत्पन्न हुए अलौकिक आत्मानन्दका अनुभव कर रहे थे। न उन्हें भूखका दुःख था, न प्यासका कष्ट था, और न राज्य कार्य की ही कुछ चिन्ता थी।

उधर मुनिराज वृषभदेव आत्मध्यानमें लीन हो रहे थे और इधर कच्छ महाकच्छ आदि चार हजार राजा, जो कि देखा देखी ही मुनि बन बैठे थे—मुनि मार्गका कुछ रहस्य नहीं समझ सके, कुछ दिनोंमें ही भूख प्यासकी बाधाओं से तिलमिला उठे। वे सब आपसमें सलाह करने लगे—कि 'भगवान् वृषभदेव न जाने किस लिये नग्न दिगम्बर होकर बैठे हैं। ये हम लोगोंसे कुछ कहते ही नहीं हैं। न इन्हें भूख प्यासकी बाधा सताती है, न ये धूप, वर्षा, शर्दीसे ही दुःखी होते हैं। पर हम लोगोंका हाल तो इनसे बिल्कुल उल्टा हो रहा है। अब हमसे भूख प्यासकी बाधा नहीं सही जाती। हमने सोचा था कि इन्होंने कुछ दिनोंके लिये ही यह वेष रचा है, पर अब तो माह दो माह हो गये फिर भी इनके रहस्यका पता नहीं चलता। जो भी हो, शरीरकी रक्षा तो हम लोगों को अवश्य करनी चाहिये। और अब इसका उपाय क्या है? यह चलकर उन्हीं से पूछना चाहिये" ऐसी सलाहकर सब राजमुनि, मुनिनाथ भगवान् वृषभदेव

के पास जाकर तरह तरहके शब्दोंमें उनकी स्तुति करने लगे—उनकी धीरता की प्रशंसा करने लगे। स्तुति कर चुकनेके बाद उन्होंने मुनि वेष धारण करनेका कारण पूछा, उसकी अवधि पूछी और 'हम भूख प्यासका दुःख नहीं सह सकते, यह प्रकटकर उसके दूर करनेका उपाय पूछा। पर वे तो मौन व्रत लिये हुए थे, आत्मध्यानमें मस्त थे, उनकी दृष्टि बाह्य पदार्थोंसे सर्वथा हट गई थी—वे कुछ न बोले। जब उन्हें वृषभदेवकी ओरसे कुछ भी उत्तर नहीं मिला, उन्होंने आंख उठाकर भी उन लोगोंकी ओर नहीं देखा तब वे बहुत घबड़ाये और मुनि मार्गसे भ्रष्ट होकर जंगलोंमें चले गये। उन्होंने सोचा था कि यदि हम अपने अपने घर वापिस जाते हैं तो राजा भरत हमको दण्डित करेगा इसलिये इन्हीं सघन बनोंमें रहना अच्छा है। यहां वृक्षोंके कन्द, मूल फल खाकर नदी तालाब आदिका मीठा पानी पीवेंगे और पर्वतोंकी गुफाओंमें रहेंगे अब ये शेर, चीते, वगैरह ही हम लोगोंके परिवार होंगे, इस तरह भ्रष्ट होकर वे चार हजार द्रव्य लिङ्गी मुनि ज्योंही तालाबोंमें पानी पीनेके लिये घुसे त्योंही उन देवताओंने प्रकट होकर कहा कि यदि तुम दिगम्बर मुद्रा धारण कर ऐसा अन्याय करोगे तो हम तुम्हें दण्डित करेंगे। यह सुनकर किन्हींने वृक्षोंके पत्ते व वक्कल पहिनकर हाथमें पलाश वृक्षके दण्ड ले लिये। किन्हींने शरीरमें भस्म रमाली और किन्हींने जटायें बढ़ालीं। कहनेका मतलब यह है कि उन्हें जिसमें सुविधा दिखी वही वेष उन्होंने धारणकर लिया। इतना होने पर भी वे सब लोग भगवान् आदिनाथके लिये ही अपना इष्ट देव समझते थे, उन्हें सिंह और अपनेको सियार समझते थे वे लोग प्रतिदिन तालावों में से कमलके फूल तोड़कर लाते थे और उनसे भगवान् की पूजा किया करते थे।

वृषभदेवको बाह्य जगतका कुछ ध्यान नहीं था। वे समताभावोंसे क्षुधा तृषाकी बाधा सहते हुए आत्मध्यानमें लीन रहते थे। जिस बनमें महामुनि वृषभेश्वर ध्यान कर रहे थे उस बनमें जन्म विरोधी जीवोंने भी परस्पर का विरोध छोड़ दिया था—सिंहनी गायके बच्चेको प्यारसे दूध पिलाती थी और गाय सिंहनीके बच्चेको प्रेमसे पुचकारती थी, मृग और सिंह परस्परमें खेला करते थे, सर्प, नेवला, मोर आदि विरोधी जीव एक दूसरेके साथ क्रीड़ा किया

करते थे, हाथियोंके बच्चे बड़े मृगराजोंकी अयालों—गर्दनके बालोंको नोचते थे। सच है—विशुद्ध आत्माका असर प्राणियों पर ही क्यों अचेतन वस्तुओं पर भी पड़ सकता है।

एक दिन कच्छ और महाकच्छ राजाओंके लड़के नमि और विनमि भगवान्के चरण कमलोंके पास आकर उनसे प्रार्थना करने लगे कि 'हे त्रिभुवन नायक! आप अपने समस्त पुत्रों तथा इतर राजकुमारोंको राज्य देकर सुखी कर आये पर हम दोनोंको आपने कुछ भी नहीं दिया! भगवन्! आप तीनों लोकोंके अधीश्वर हैं, समर्थ हैं, दयालु हैं, इसलिये राज्य देकर हमको सुखी कीजिएगा' भगवान आत्म ध्यानमें लीन हो रहे थे इसलिये यद्यपि नमि विनमिको उनकी ओरसे कुछ भी उत्तर नहीं मिला तथापि वे अपनी प्रार्थना जारी ही किये गये। इस घटनासे एक धरणेन्द्रका आसन कंपा जिससे वह भगवानके ध्यानमें कुछ बाधा समझकर शीघ्र ही उनके पास आया। आकर जब वह देखता है कि दोनों ओर खड़े हुये नमि विनमि भगवानसे राज्यकी याचना कर रहे हैं तब धरणेन्द्रने अपना वेष बदलकर दोनों राजकुमारोंसे कहा कि आप लोग राजा भरतसे राज्यकी याचना कीजियेगा जो आपकी अभिलाषाओंको पूर्ण करनेमें समर्थ हैं। इनके पास क्या रक्खा है जिसे देकर ये आपकी राज्य लिप्साक पूर्ण करें। आप लोग राजकुमार इतना भी नहीं समझ सके कि जिसके पास होता है वही किसीको कुछ दे सकता है?" धरणेन्द्रकी बातें सुनकर उन दोनोंने कहा कि महाशय! आप बड़े बुद्धिमान मालूम होते हैं, बोलनेमें आप बहुत ही चतुर प्रतीत होते हो, आपका वेष भी विश्वासनीय है पर मेरी समझमें नहीं आता कि आप बिना पूंछे ही हम लोगोंके बीचमें क्यों बोलने लगे? तीनों लोकोंके एक मात्र अधीश्वर वृषभदेवकी चरण छायाको छोड़कर भरतसे राज्यकी याचना करूं? जो बेचारा खुद जरा सी जमीनका राजा है। कहिये महाशय? जो कमण्डलु महासागरके जलसे नहीं भरा वह क्या गोष्पदके जलसे भर जावेगा? क्या अनोखा उपदेश है आपका?" राजकुमारोंकी उक्ति प्रत्युक्तिसे प्रसन्न होकर धरणेन्द्रने अपना कृत्रिम वेष छोड़ दिया और प्रकृति वेषमें प्रकट होकर उनसे—नमि विनमिसे कहा। "राजपुत्रो!

राज्यका विभाग करते समय भगवान् बृषभेश्वर आप लोगोंका राज्य मुझे बतला गये हैं सो चलिये, मैं चलकर आपका राज्य आपको दे दूं। इस समय वे ध्यानमें लीन हैं इनके मुखसे आपको कुछ भी उत्तर नहीं मिलेगा" इत्यादि प्रकारसे समझाकर वह धरणेन्द्र उन्हें बिमानपर बैठाकर विजयार्ध पर्वत पर ले गया। पर्वतकी अलौकिक शोभा देखकर दोनों राजपुत्र बहुत ही प्रसन्न हुये।

उस पर्वतकी दो श्रेणियां हैं कि दक्षिण श्रेणि और दूसरी उत्तर श्रेणि। इन दोनों श्रेणियोंपर सुन्दर सुन्दर नगरोंकी रचना है जिसमें विद्याधर लोग रहा करते हैं। वहां पहुंचकर धरणेन्द्रने कहा कि भगवान् आप लोगोंको यहांका राज्य देना स्वीकार कर चुके हैं सो आप यहांका राज्य प्राप्त कर देवराजकी तरह अनेक भोगोंको भोगो और इन विद्याधरोंका पालन करो। ऐसा कहकर उसने दक्षिण श्रेणिके साम्राज्यमें नमिका और उत्तर श्रेणिके साम्राज्यमें विनमिका अभिषेक किया, उन्हें कई प्रकारकी विद्यायें दीं तथा जनतासे उनका परिचय कराया। नमि विनमि विद्याधरोंका राज्य पाकर बहुत प्रसन्न हुये। धरणेन्द्र कर्तव्य पूरा कर अपने स्थानको वापिस चला गया।

ध्यान करते करते जब छह माह व्यतीत हो गये तब वृषभदेवने अपनी ध्यान मुद्रा समाप्त कर आहार लेनेका बिचार किया। यद्यपि उनके शरीरमें जन्मसे ही अतुल्य बल था—वे आहार न भी करते तब भी उनके शरीरमें कुछ शिथिलता न आती तथापि मुनि मार्ग चलानेका ख्याल करते हुये उन्होंने आहार करनेका निश्चय कर गावोंमें बिहार करना शुरू कर दिया। बिहार करते समय वे चार हाथ जमीन देखकर चलते थे और किसीसे कुछ बोलते न थे। यह हम पहले लिख चुके हैं कि उस समयके लोग अत्यन्त भोले थे। आदिनाथके पहले वहां कोई मुनि हुआ ही नहीं था इसलिये वे लोग मुनि मार्गसे सर्वथा अपरिचित थे। वे यह नहीं समझते थे कि मुनियोंके लिये आहार कैसे दिया जाता है। महामुनि आदिनाथ किसीको कुछ बतलाते न थे क्योंकि यह नियम है कि दीक्षा लेनेके बाद जब तक केवल ज्ञान प्राप्त नहीं हो जाता तब तक तीर्थंकर मौन होकर रहते हैं—किसीसे कुछ नहीं कहते। इसलिये जब वे आहारके लिये नगरोंमें पहुंचते तब कोई लोग कहने लगते थे कि हे

देव ! प्रसन्न होओ, कहिये, कैसा आगमन हुआ ? कोई महा मूल्य रत्न सामने रखकर ग्रहण करनेकी प्रार्थना करते थे, कोई हाथी घोड़ा आदि सवारियां समर्पण कर उन्हें प्रसन्न करना चाहते थे, कोई सर्वाङ्ग सुन्दरी कन्यायें ले जाकर उन्हें स्वीकार करनेका आग्रह करते थे और कोई सोनेकी थालियोंमें उत्तम उत्तम भोजन ले जाकर ग्रहण करनेकी प्रार्थना करते थे पर वे विधि पूर्वक न मिलनेके कारण बिना आहार लिये ही नगरोंसे वापिस चले जाते थे। इस तरह जगह २ घूमते हुये उन्हें एक माह और बीत गया पर कहीं विधि पूर्वक उत्तम पवित्र आहार नहीं मिला। खेदके साथ लिखना पड़ता है कि जिनके गर्भमें आने के छह माह पहले इन्द्र किंकरकी तरह हाथ जोड़कर आज्ञाकी प्रतीक्षा करता रहा, सम्राट भरत जिनका पुत्र था. और जो स्वयं तीनों लोकोंके अधिपति कहलाते थे वे भी ना कुछ आहारके लिये निरन्तर छह माह तक एक-दो नहीं कई नगरोंमें घूमते रहे पर आहार न मिला। कितना विषम है कर्मोंका उदय ?

इस तरह भगवान आदिनाथने एक वर्षतक कुछ भी नहीं खाया पिया था तो भी उनके चित्त व शरीरमें किसी प्रकारकी विकृति और शिथिलता नहीं दीख पड़ती थी। अब हम कुछ समयके लिये पाठकोंका चित्त वहां ले जाते हैं जहांपर महामुनिके लिये अकस्मात् आहार प्राप्त होगा।

जिस समयकी यह बात है उस समय कुरुजांगल देशके हस्तिनापुरमें एक सोमप्रभ राजा राज्य करते थे, वे बड़े ही धर्मात्मा थे, उनके छोटे भाईका नाम श्रेयांसकुमार था, यह श्रेयांसकुमार भगवन् आदिनाथके वज्रजंघ भवमें श्रीमती स्त्रीका जीव था जो क्रम क्रमसे आर्या स्वयंप्रभ देव, केशव, अच्युतप्रतीन्द्र धनदेव आदि होकर सर्वार्थ सिद्धिमें अहमिन्द्र हुआ था और वहांसे चयकर श्रेयांसकुमार हुआ था। एक दिन रात्रिके पिछले पहरमें श्रेयांसकुमारने अत्यन्त ऊंचा मेरु पर्वत, शाखाओंमें लटकते हुए भूषणोंसे सुन्दर कल्पवृक्ष, मूंगाके समान लाल लाल अयालसे शोभायमान सिंह, जिसके सींगोंपर मिट्टी लगी हुई है ऐसा बैल, चमकते हुए सूर्य चन्द्रमा, लहराता हुआ समुद्र, और अष्ट मंगल द्रव्योंको लिये हुए व्यन्तर देव स्वप्नमें देखे। सवेरा होते ही उसने अपने पुरोहितसे ऊपर कहे हुए स्वप्नोंका फल पूछा। पुरोहितने निमित्त ज्ञानसे सोचकर कहा

कि मेरु पर्वतके देखनेसे उसके समान उन्नत कोई महापुरुष अपने शुभागमन-से आपके भवनको अलंकृत करेगा और बाकी स्वप्न उन्हीं महापुरुषोंके गुणों की उन्नति बतला रहे हैं। पुरोहितके मुखसे स्वप्नोंका फल सुनकर सोमप्रभ और श्रेयान्स दोनों भाई हर्षके मारे फूले न समाते थे। प्रातः कालके समय देखे गये स्वप्न शीघ्र ही फल देते हैं। पुरोहितके इन बचनोंने तो उन्हें और भी अधिक हर्षित बना दिया था। राजभवनमें बैठे हुए दोनों भाई उन महा-पुरुषकी प्रतीक्षा कर ही रहे थे कि इतनेमें महापुरुष भगवान् आदिनाथ ईर्या समितिसे विहार करते हुए हस्तिनापुर जा पहुंचे। जब वे राज भवनके पास आये तब सिद्धार्थ नामक द्वारपालने राजा सोमप्रभ और युवराज श्रेयान्स कुमारको उनके आनेकी खबर दी। द्वारपालके मुखसे भगवान्‌का आगमन सुनकर दोनों भाई दौड़े हुए आए और उन्हें प्रणामकर बहुत ही आनन्दित हुए। युवराज श्रेयांस कुमारने ज्योंही भगवान्‌का दिव्य रूप देखा त्योंही उसे जाति स्मरण हो आया। श्रीमती और वज्रजंघ भवका समस्त वृतान्त उनको आंखोंके सामने ज्योंका त्यों झूलने लगा। पुण्डरीकिणीपुरीको जाते समय रास्तेमें सरोवरके किनारे जो मुनि युगलके लिये आहार दिया था वह भी श्रेयान्सको ज्योंका त्यों याद हो गया। यह प्रातः कालका समय आहार देने के योग्य है ऐसा विचार कर उसने उन्हें नवधा भक्ति पूर्वक पड़गाहा और श्रद्धा, तुष्टि आदि गुणोंसे युक्त होकर आदि जिनेन्द्र वृषभनाथको आहार देनेके लिये भीतर लिवा ले गया। वहां उसने राजा सोमप्रभ और उनकी स्त्री लक्ष्मीमतीके साथ भगवान्‌के पाणिपात्रमें इक्षुरसकी धाराएं प्रदान कीं। इस पवित्र दानसे प्रभावित होकर देवोंने आकाशसे रत्नोंकी वर्षा की, दुन्दुभि बाजे बजाये, पुष्प वर्षाये और जय जय ध्वनिके साथ 'अहो दानम् अहो दानम्' कहते हुए दानकी प्रशंसा की। उस समय सब दिशाएं निर्मल हो गई थीं। आकाशमें मेघका एक टुकड़ा भी नजर नहीं आता था और मन्द सुगन्ध पवन चलने लगा था। महा मुनीन्द्र वृषभेश्वरके लिये दान देकर दोनों भाइयोंने अपने आपको कृतकृत्य समझा। बहुतोंने इस दानकी अनुमोदना की।

आहार ले चुकनेके बाद वृषभदेव बनकी ओर विहार कर गये। उस युग

में सबसे पहले दानकी प्रथा श्रेयान्स कुमारने ही चलाई थी इसलिये देवोंने आकर उसका खूब सत्कार किया। जब सम्राट् भरतको भी इस बातका पता चला तब वे भी समस्त परिवारके साथ हस्तिनापुर आये और वहां सोमप्रभ श्रेयान्स तथा लक्ष्मीमतीका सत्कार कर प्रसन्न हुए। इसके अनन्तर श्रेयान्स कुमारने दानका स्वरूप, दानकी आवश्यकता तथा उत्तम मध्यम जघन्य पात्रोंका स्वरूप बतलाकर दान तीर्थकी प्रवृत्ति चलाई। प्रथम तीर्थंकर वृषभदेवको आहार देकर श्रेयान्स कुमारने जिस लोकोत्तर पुण्यका उपार्जन किया था उसका वर्णन कौन कर सकता है ? आचार्योंने कहा है कि जो तीर्थंकरोंको सबसे पहले आहार देता है वह नियमसे उसी भवसे मोक्ष प्राप्त करता है सो श्रेयांस भी लोकमें अत्यन्त प्रतिष्ठा प्राप्त कर जीवनके अन्त समयमें मोक्ष प्राप्त करेंगे।

भगवान् आदिनाथ बीहड़ अटवियोंमें ध्यान लगाकर आत्मशुद्धि करते थे। वे बहुत दिनोंका अन्तराल देकर नगरोंमें आहार लेनेके लिये आते थे सो भी रूखा सूखा स्वल्प आहार करते थे। वे अनशन, ऊनोदर, वृत्तिपरिसंख्यान, रस परित्याग, विविक्त शय्यासन, कायक्लेश, प्रायश्चित्त विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग और ध्यान इन बारह तपोंको भलीभांति तपते थे। उन्होंने जगह जगह घूमकर अपनी चेष्टाओंसे मुनि मार्गका प्रचार किया था। यद्यपि वे उस समय मुंहसे कुछ बोलते न थे तथापि इनकी क्रियाएं इतनी प्रभावक होती थीं कि लोग उन्हे देखकर बहुत जल्दी प्रतिबुद्ध हो जाते थे। वे कभी ग्रीष्म ऋतुमें पहाड़की चोटियोंपर ध्यान लगाते थे, कभी शीत कालकी विशाल रातोंमें नदियोंके तटपर आसन जमाते थे और कभी वर्षा ऋतुमें वृक्षोंके नीचे योगासन लगाकर बैठते थे। इस तरह उग्र तपश्चर्या करते करते जब उन्हें एक हजार वर्ष बीत गये तब वे एक दिन 'पुरिमताल' नामक नगरके पास पहुंचे और वहां शकट नामक वनमें निर्मल शिलातलपर पद्मासन लगाकर बैठे। उस समय उनकी आत्म विशुद्धि उत्तरोत्तर बढ़ती जाती थी जिसके फल स्वरूप उन्होंने क्षपक श्रेणीमें प्रवेश कर शुक्ल ध्यानके द्वारा ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय इन चार घातिया कर्मोंका नाशकर

फाल्गुन कृष्ण एकादशीके दिन उत्तराषाढ़ नक्षत्रमें सकल पदार्थोंको प्रकाशित करने वाले केवल ज्ञानका लाभ किया। भगवान् आदिनाथ केवल ज्ञानके द्वारा तीनों लोकों और तीनों कालोंके समस्त पदार्थोंको एक साथ जानने देखने लगे थे। ज्ञानावरणके नाश होनेसे उन्हें केवल ज्ञान प्राप्त हुआ था। दर्शनावरणके अभावमें केवल दर्शन और मोहनीयके अभावमें अनन्त सुख और अन्तरायके अभावमें अनन्त वीर्य प्राप्त हुआ था।

वृषभ जिनेन्द्रको केवलज्ञान प्राप्त हुआ है इस बातका जब इन्द्रको पता चला तब वह समस्त परिवारके साथ भगवानकी पूजाके लिये 'पुरीमतालपुर' आया। इन्द्रके आनेके पहिले ही धनपति कुवेरने वहाँ दिव्य सभा-समवसरण की रचना कर दी थी। वह सभा बारह योजन विस्तृत नील मणिकी गोल शिला तलपर बनी हुई थी। जमीनसे पांच हजार धनुष ऊंची थी। ऊपर पहुंचनेके लिये उसमें बीस हजार सीढ़ियां बनी हुई थीं, उस सभाके चारों ओर अनेक मणिमय सुवर्णमय कोट बने हुए थे। उसमें चारों दिशाओंमें चार मानस्तम्भ बनाये गये थे, जिन्हें देखनेसे मानियोंका मान खण्डित हो जाता था। अनेक नाट्यशालायें बनी हुई थीं जिनमें स्वर्गकी अप्सरायें भगवद्भक्ति से प्रेरित होकर नृत्य कर रही थीं। अनेक परिखाएं थीं, जिनमें सहस्रदल—हजार पांखुड़ी वाले कमल फूल रहे थे। वहांके रत्नमय दरवाजोंपर देव लोग पहरा दे रहे थे। ऊपर चलकर भगवानकी गन्ध कुटी बनाई गई थी जिसमें रत्नमय सिंहासन रक्खा हुआ था। सिंहासनके चारों ओर श्रीमण्डप बनाया गया था, उसके सब ओर परिक्रमा रूपसे बारह सभाएं बनाई गई थीं, जिनमें देव देवियां, मनुष्य, तिर्यञ्च, पशु, पक्षी आदि सभी सुखसे बैठ सकते थे। कुवेरके द्वारा बनाई हुई दिव्य सभाको देखकर इन्द्र बहुत ही हर्षित हुआ, और भक्तिसे जय, जय, जय शब्द करता हुआ समस्त परिवार के साथ वहां पहुंचा जहाँ पूर्ण ज्ञानी योगी भगवान् आदिनाथ विराजमान थे। ऊपर जिस गन्धकुटीका कथन कर आये हैं भगवान् उसीमें स्वर्ण सिंहासन पर चार अङ्गुल अन्तरीक्षमें विराजमान थे। वहां उनके दिव्य तेजसे सब ओर प्रकाश सा फैल रहा था। इन्द्रने विनय सहित नमस्कार कर

सुमधुर शब्दोंमें हजार नामोंसे उनकी स्तुति की।

महाराज भरत राजसभामें बैठे हुए ही थे कि इतने में पुरोहितने पहुंचकर उनसे जगद्गुरु वृषभदेवके केवल ज्ञान होनेका समाचार सुनाया। उसी समय कञ्चकी—अन्तःपुरके पहरेदारने आकर पुत्रोत्पत्तिका समाचार सुनाया और उसी समय शस्त्रपालने आकर कहा कि नाथ! शस्त्रशालामें चक्ररत्न प्रकट हुआ है। जो अपने तेजसे सूर्यके तेजको पराजित कर रहा है। राजा भरत तीनोंके मुखसे एक साथ शुभ समाचार सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। इन तीन उत्सवोंमें से पहले किसमें शामिल होना चाहिये, यह विचारकर क्षण एकके लिये भरत महाराज व्याकुलचित्त हुये थे अवश्य, पर उन्होंने बहुत जल्दी धर्मकार्यही पहले करना चाहिये . ऐसा दृढ़ निश्चय कर लिया और निश्चयके अनुसार समस्त भाई, बन्धु, मन्त्री, पुरोहित मरुदेवी आदि परिवार के साथ गुरुदेव-पितृदेव के कैवल्य महोत्सवमें शामिल होनेके लिये 'पुरिमतालपुर' पहुंचे। वहां समवसरणकी अद्भुत शोभा देखकर भरतका चित्त बहुत ही प्रसन्न हुआ। देव द्वारपालोंने उन्हें सभाके भीतर पहुंचा दिया। वहां उन्होंने प्रथम पीठिका पर विराजमान धर्म-चक्रोंकी प्रदक्षिणा दी फिर द्वितीय पीठिका पर शोभमान ध्वजाओंकी पूजा की, इसके अनन्तर गन्ध-कुटीमें सुवर्ण सिंहासन पर चार अङ्गुल अधर विराजमान महा योगीश्वर भगवान् वृषभदेवको देखकर उनका हृदय भक्तिसे गद्गद् हो गया। भरत वगैरहने तीन प्रदक्षिणाएं दीं फिर जमीन पर मस्तक झुकाकर जिनेन्द्र देवको नमस्कार किया। और अति सुखद शब्दोंमें अनेक स्तोत्रोंसे स्तुति कर जल चन्दन आदि अष्ट द्रव्योंसे उनकी पूजा की। भक्ति प्रदर्शित करनेके बाद भरत वगैरह मनुष्योंके कोठेमें बैठ गये। उस समय जिनेन्द्र देवकी बैठकके पास अनेक किसलयोंसे शोभायमान अशोक वृक्ष था जो अपनी श्यामल रक्त प्रभासे प्राणिमात्रके शोक समूह को नष्ट कर रहा था। वे ऊंचे सिंहासनपर विराजमान थे, उनके शरीर पर तीन छत्र लगे हुये थे जो साफ साफ बतला रहे थे कि भगवान् तीन जगत्के स्वामी हैं। उनके पीछे भामण्डल लगा हुआ था जो अपनी कान्तिसे भास्कर-सूर्यको भी पराजित कर रहा था. यक्षकुमार जातिके देव चौंसठ चमर ढोल रहे

थे, जो भगवान्के फैलते हुये धवल यशकी तरह मालूम होते थे। देव लोग स्वर तालके साथ दुन्दुभि आदि हजारों तरहके बाजे बजा रहे थे और आकाशसे मन्दार, सुन्दर, नमेरु, पारिजात सन्तानक आदि कल्प वृक्षोंके सुगन्धित फूल वर्षा रहे थे। उस समय उनका एकही मुख चारों ओरसे दिखाई देता था। उनके पुण्य प्रतापसे चारों ओर एक योजन तक सुभिक्ष हो गया था कोई धन धान्यके अभावमें दुखी नहीं था। उनके शरीरकी छाया नहीं पड़ती थी, कोई किसीको नहीं सताता था, सभीके हृदय-क्षेत्रोंमें दया-सत्रन्ती कल-कल नाद करती हुई बह रही थी। त्रिभुवनपति वृषभदेवके इस दिव्य प्रभाव को देखकर सभी चकित हो गये थे। उनके मुख-चन्द्रको देखकर प्राणिमात्रके हृदयोंमें आनन्दका समुद्र लहरा रहा था। उस सभामें देव लोग इतना सुन्दर प्रबन्ध कर रहे थे, कि जिससे किसी को कुछ भी कष्ट मालूम नहीं होने पाता था। जन्मके अन्धे, लंगड़े, बहरे आदि मनुष्य उस सभामें पहुंचकर नीरोग हो जाते थे। धीरे धीरे सभाके बारहों कोठे देव, देवियां, मनुष्य, स्त्रियां तथा पशु पक्षी वगैरहसे खचाखच भर गये थे। जब सभामें पूर्ण शान्ति नजर आने लगी, तब भगवान्के मुखारविन्दसे दिव्य वाणी प्रकट हुई। उनकी वह वाणी ओंकार रूप थी। उसमें मुंहसे प्रकट होते समय अक्षरोंका विभाग नहीं मालूम होता था, इसलिये लोग उसे निरक्षरी भाषा कहते हैं। उस भाषामें सब भाषाओंका रूप परिणमन करनेकी शक्ति थी, इसलिये जो प्राणी जिस भाषाको समझता था उसके कानोंमें भगवान्की वाणी उसी भाषा रूप परिणित हो जाती थी। उनकी वह वाणी इतनी मधुर और स्पष्ट होती थी कि उसे सुनकर सभीको मालूम होता था कि हमारे कानोंमें अमृतके झरने झर रहे हैं।

उन्होंने अतिशय पूर्ण दिव्य ध्वनिमें धर्म अधर्मका स्वरूप समझाकर सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्रका, जीव अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष इन सात तत्त्वोंका, जीव पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन छहों द्रव्योंका, पुण्य पापका और लोक आलोकका स्वरूप बतलाया था। यह भी बतलाया था कि "जब तक प्राणियोंकी दृष्टि बाह्य भौतिक पदार्थोंमें उलझी रहेगी तब तक उसे आत्मीय आनन्दका अनुभव नहीं हो सकता। उसे प्राप्त करनेके

लिये तो सब ओरसे मोह छोड़कर कठिन तपस्याएं करनेकी आवश्यकता है—इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करनेकी आवश्यकता है और है आवश्यकता आत्मध्यानमें अचल होनेकी" भगवान्की भव्य भारती सुनकर हर एकका चित्त द्रवीभूत हो गया था। राजा भरतने दृढ़ सम्यग्दर्शन धारण किया। कुरुकुल चूड़ामणि राजाने सोमप्रभ दानतीर्थके प्रवर्तक युवराज श्रेयान्स और भरतका छोटा भाई वृषभसेन इन तीन पुरुषोंने प्रभावित होकर उसी सभामें जिन दीक्षा ले ली और मति श्रुत, अवधि, और मनः पर्ययज्ञान के धारक गणधर-मुख्य श्रोता बन गये। ब्राह्मी और सुन्दरी नामक पुत्रियां भी पूज्य पिताके चरण कमलोंके उपाश्रयमें आर्यिकाके व्रत लेकर समस्त आर्यिकाओंकी गणिनी-स्वामिनी हो गईं थीं। कच्छ महाकच्छ आदि चार हजार राजा जो कि पहले मुनिमार्गसे भ्रष्ट हो गये थे, भरत पुत्र मरीचिको छोड़कर वे सब फिरसे भावलिङ्ग पूर्वक सच्चे दिगम्बर मुनि हो गये थे। आदिनाथका पुत्र अनन्त वीर्य भी दीक्षित हो गया। श्रुतकीर्तिने श्रावकके व्रत लिये और प्रियव्रताने श्राविकाके व्रत ग्रहण किये। इनके सिवाय असंख्य नर नारियोंने व्रत विधान धारण किये थे यहां सिर्फ दो चार मुख्य मुख्य व्यक्तियोंका नामोल्लेख किया गया है। बहुतसे देव देवियोंने अपने आपको सम्यग्दर्शनसे अलंकृत किया था। इस प्रकार भगवान् का केवल ज्ञान महोत्सव देखकर भरत सम्राट राजधानी-अयोध्याको वापिस लौट आये। लोगोंका आना जाना जारी रहता था इसलिये समवसरणकी भूमि देव मनुष्य और तिर्यञ्चोंसे कभी खाली नहीं होने पाती थी।

इन्द्रने जिनेन्द्र देवसे प्रार्थनाकी कि "हे देव! संसारके प्राणी अधर्म रूप सन्तापसे सन्तप्त हो रहे हैं। उन्हें हेय उपादेयका ज्ञान नहीं है इसलिये देश विदेशोंमें विहारकर उन्हें हितका उपदेश देनेके लिये यही समय उचित है। किसी एक जगह जनताका उपस्थित होना अशक्य है अतएव यह कार्य जगह जगह विहार करनेसे ही सम्पन्न हो सकेगा"। इन्द्रकी प्रार्थना सुनकर उन्होंने अनेक देशोंमें विहार किया। वे आकाशमें चलते थे चलते समय देव लोग उनके पैरोंके नीचे सुवर्ण कमलोंकी रचना करते जाते थे। मन्द सुगन्धित हवा बहती थी, गन्धोदककी वृष्टि होती थी, देव जयजय शब्द करते थे, उस समय

पृथ्वी कांचके समान निर्मल हो गई थी, समस्त ऋतुएं एक साथ अपनी अपनी शोभाएं प्रकट कर रही थीं, पृथ्वीमें कहीं कण्टक नहीं दिखाई देते थे, सब ओर सुभिक्ष हो गया था, कहीं आर्त ध्वनि सुनाई नहीं पड़ती थी और उनके आगे धर्म चक्र तथा अष्ट मंगल द्रव्य चला करता था। कहनेका मतलब यह है कि उनके पुण्य परमाणु इतने सुभग और विशाल थे कि वे जहां भी जाते थे वहीं देव, दानव, मानव आदि सभी जन्तु उनके वशीभूत हो जाते थे। विहार करते करते वे जहां रुक जाते थे, धनपति कुवेर वहीं पर पूर्वकी तरह समवसरण ·दिव्य सभाकी रचना कर देता था। जहां बैठकर भव्य जीव सुख पूर्वक आत्महितका श्रवण करते थे। उनके उपदेशकी शैली इतनी मोहक थी, कि वे जहां भी उपदेश देते थे वहीं असंख्य नरनारी प्रतिबुद्ध होकर मुनि, आर्यिका, श्रावक श्राविका बन जाते थे। उस समय सकल भारतवर्षमें अखंड रूपसे जैन धर्म फैला हुआ था। इस प्रकार देश विदेशोंमें घूमकर वे कैलाश गिरि पर पहुंचे और वहां आत्म ध्यानमें लीन हो गये। अब कुछ सम्राट् भरत के विषय में सुनिये—

समवसरणसे लौटकर महाराज भरतने पहिले चक्ररत्नकी पूजा की और फिर याचकों को इच्छानुसार दान देते हुये पुत्रोत्पत्तिका उत्सव किया। 'अभिनव राजा भरतके पुत्र उत्पन्न हुआ है' यह समाचार किसे न हर्षित बना देता था? उस उत्सवमें अयोध्यापुरी इतनी सजाई गई थी कि उसके सामने पुरन्दर-पुरी अमरावती भी लज्जासे सहम जाती थी। प्रत्येक मकानोंकी शिखरोंपर तरह तरहकी पताकाएं फहराई गई थीं, राजमार्ग सुगन्धित जलसे सींचे गये थे, बड़े बड़े बाजोंकी आवाजसे आकाश गुंजाया गया था, सभी ओर मनोहर संगीत और नृत्य-ध्वनि सुनाई पड़ रही थी, जगह जगह तोरण द्वार बनाये गये थे, और हर एक घरोंके द्वार पर मणिमयी वन्दन मालाएं लटकाई गयी थीं। उस समय अन्तःपुरकी शोभा तो सबसे निराली ही नजर आती थी।

इधर समस्त नगरमें पुत्रोत्पत्तिका उत्सव मनाया जा रहा था, उधर महाराज भरत दिग्विजयकी यात्राके लिये तैयारी कर रहे थे। वह समय शरद् ऋतु का था। आकाशमें कहीं कहीं सफेद बादलोंका समूह फैल रहा था, जो कि

भरत-राजके निर्मल यशके समान मालूम होते थे, गगनमें जो सूर्य चमकता था वह सम्राटके तीव्र प्रतापकी तरह जान पड़ता था, रातमें निर्मल चन्द्रमा शोभा देता था, जो कि भरतके साधु स्वभावकी तरह दिखाई देता था नद नदी तालाव आदिका पानी स्वच्छ हो गया था, सूर्यकी तेजस्वी किरणोंसे मार्गों का कीचड़ सूख गया था, तालावोंमें दिनमें कमल और रातमें कुमुद फूलते थे। उनपर भ्रमर जो मनोहर गुञ्जार करते थे सो ऐसा मालूम होता था, मानों वे भरत-राजका यशही गा रहे हैं। हंस अपने सफेद पर फैलाकर निर्मल नील नभमें उड़ते हुए नजर आते थे, उस समय प्रकृति रानी की शोभा सबसे निराली थी। भरतने उस समयको ही दिग्विजयके लिये योग्य समझकर शुभ मुहूर्तमें प्रस्थान किया। प्रस्थान करते समय गुरुजनोंने भरतका अभिषेक किया। सुन्दर वस्त्राभूषण पहिनाये, माथे पर कुंकुम का तिलक लगाया और आरती उतारी थी। समस्त वृद्धजनोंने आशीर्वाद दिया, बालकोंने अदम्य उत्साह प्रकट किया और महिलाओंने पुष्प तथा धानके खीले बरसाये थे। उस समय भरत-राजकी असंख्य सेना उमड़ते हुए समुद्रकी तरह मालूम होती थी। वृषभनन्दन भरत कुमार आद्य चक्रवर्ती थे, इसलिये उनके चौदह रत्न और नौ निद्धियां प्रकट हुई थीं। रत्नोंके नाम ये हैं—१ सुदर्शन चक्र, २ सूर्यप्रभ छत्र, ३ सौनन्दक खंड्ग, ४ चण्डवेग दण्ड ५ चर्म रत्न ६ चूड़ामणि मणि ७ चिन्ता-जननी काकिणी ८ कामवृष्टि गृहपति ६ अयोध्य सेनापति १० भद्रमुख तक्षक ११ बुद्धि सागर पुरोहित १२ विजयार्घ-याग हस्ती १३ पवनंजय अश्व और १४ मनोहर सुभद्रा स्त्री। इनमें से प्रत्येक रत्न की एक एक हजार देव रक्षा करते थे। ये सब रत्न दिग्विजयके समय चक्रवर्तीके साथ चल रहे थे। इनके रहते हुए उन्हें कोई भी काम कठिन मालूम नहीं होता था। नव निधियां ये हैं—१ काल २ महाकाल ३ पाण्डुक ४ मानवाख्य ५ वैरूपाख्य ६ सर्व रत्नाख्य ७ शङ्ख ८ पद्म ६ और पिंगलाख्य। इन निधियों की भी हजार हजार देव रक्षा करते थे। निधियोंके रहते हुए भरत सम्राट्को कभी धन धान्यकी चिन्ता नहीं करनी पड़ती थी। इच्छानुसार समस्त वस्तुयें निधियोंसे ही प्राप्त हो जाती थीं। भरत चक्रवर्ती अपने तक्षक रत्न (उत्तम

बढ़ई) के द्वारा बनाये गये रथपर बैठे हुए थे। उनके मस्तकपर रत्न खचित सोनेका मुकुट चमक रहा था। शिरपर सफेद छत्र लगा हुआ था और दोनों ओर चमर ढोले जा रहे थे। बन्दीगण गुणगान कर रहे थे। अनेक हाथी, घोड़ा, रथ और प्यादोंसे भरी हुई सम्राट्की सेना बहुत ही भली मालूम होती थी।

उस समय लोगोंके पदाघातसे उड़ी हुई धूलिने सूर्यके प्रकाशको ढक लिया था, जिससे ऐसा मालूम होता था मानो सूर्य भरतके प्रतापसे पराजित होकर कहींपर जा छिपा है। सैनिकोंके हाथोंमें अनेक तरहके आयुध हथियार चमक रहे थे। भरत सम्राट्का सैनिक बल देखनेके लिये आये हुए देव और विद्याधरोंके विमानोंसे समस्त आकाश भर गया था। वह सेना अयोध्यापुरीसे निकलकर प्रकृतिकी शोभा निहारती हुई मैदानमें द्रुतगतिसे जाने लगी थी। बीच बीचमें अनेक अनुयायी राजा अपनी सेना सहित भरतके साथ मिलते जाते थे इसलिये वह सेना नदीकी भांति उत्तरोत्तर बढ़ती जाती थी। बहुत कुछ मार्ग तय करनेपर भरतेश गङ्गा नदीके पास पहुंचे। गङ्गाकी अनूठी शोभा देखकर भरतकी तबियत बाग बाग हो गई। गङ्गा नदीने शीतल जल कणोंसे मिली हुई और सरोजगन्धसे सुवासित मन्द समीरसे उनका स्वागत किया। भरतने वह दिन गङ्गा तीरपर ही बिताया। भरत तथा सेनाके ठहरनेके लिये स्थपतिने अनेक तम्बू-कपड़ेके पाल तैयार कर दिये थे जिनसे ऐसा मालूम होता था कि भरतके विवाहसे दुःखी होकर अयोध्यापुरी ही वहां पहुंच गई है। दूसरे दिन विजयार्ध गिरिके समान अत्यन्त ऊंचे विजयार्ध नामक हाथीपर बैठकर सम्राट्ने समस्त सेनाके साथ गङ्गाके किनारे किनारे प्रस्थान किया। चण्डवेग नामक दण्डके प्रतापसे समस्त रास्ता पक्की सड़कके समान साफ होता जाता था इसलिये सैनिकोंको चलनेमें किसी प्रकारका कष्ट नहीं होने पाता था। बीच बीचमें अनेक नर पाल मुक्ताफल, कस्तूरी, सुवर्ण, चांदी, आदिका उपहार लेकर भरतेशसे भेंट करनेके लिये आते थे। इस तरह कुछ दूरतक चलनेके बाद वे गंगा द्वारपर पहुंचे। वहांपर उपसागरकी अनुपम शोभा देखकर वे बहुत ही प्रसन्न हुए। फिर क्रम पूर्वक स्थल मार्गसे वेदी द्वारमें

प्रवृत्त हुए। वहां गंगा नदीके किनारेके वनोंमें अपनी विशाल सेना ठहरा कर लवण समुद्रके ऊपर अधिकार करनेकी इच्छासे भरत महाराज तीन दिनतक वहीं रहे। वहां उन्होंने लगातार तीन दिनका अनशन किया तथा कुशासन पर बैठकर जैन शास्त्रोंके मन्त्रोंकी आराधना की। यह सब करते हुए भी भरत परमेष्ठि पूजा सामयिक आदि नित्यकर्म नहीं भूलते थे। वहां भी उन्होंने पुरोहितके साथ मिलकर पञ्च परमेष्ठीकी पूजा की थी और एकाग्र चित्त होकर ध्यान सामयिक वगैरह किया था। फिर समस्त सेनाकी रक्षाके लिये सेनापतिको छोड़कर अजितंजय नामक रथपर सवार हो गंगा द्वारसे प्रवेशकर लवण समुद्रमें प्रस्थान किया। वे जिस रथपर बैठे हुए थे वह अनेक दिव्य अस्त्रोंसे भरा हुआ था। उसमें जो घोड़े जोते गये थे वे जलमें भी स्थलकी तरह चलते थे और अपने वेगसे मनके वेगको जीतते थे। उनका वह रथ पानीमें ठीक नावकी तरह चल रहा था। रथके प्रबल वेगसे समुद्रमें जो ऊंची लहरें उठती थीं उनसे ऐसा मालूम होता था मानो वह भरतके अभिगमनसे प्रसन्न चित्त होकर बढ़ रहा हो। चलते चलते जब वे बारह योजन आगे निकल गये तब उन्होंने वज्रमय धनुषपर अपने नामसे अङ्कित बाण आरोपित किया और क्रोधसे हुंकार करते हुए ज्योंही उसे छोड़ा त्योंही वह मगध देवकी सभामें जा पड़ा। बाणके पड़ते ही मगध देवके क्रोधका ठिकाना नहीं रहा। वह अपनी अल्प समझसे चक्रवर्तीके साथ लड़नेके लिये तैयार हो गया। परन्तु उनके बुद्धिमान मन्त्रियोंने बाणमें चक्रवर्ती भरतका नाम देखकर उसे शान्त कर दिया और कहा कि "यह चक्रवर्तीका बाण है इसकी दिव्य गन्ध, अक्षत आदिसे पूजा करनी चाहिये। इस समय प्रथम चक्रवर्ती भरत दिग्विजयके लिये निकले हुये हैं, वे बड़े प्रतापी हैं। भरत क्षेत्रके छह खण्डकी वसुधा पर उनका एक छत्र राज्य होगा। सब देव, विद्याधर आदि उनके वशमें रहेंगे इसलिये प्रबल शत्रुके साथ विग्रह करना उचित नहीं है" मन्त्रियोंके वचन सुन कर मगधका कोप शान्त हो गया। अब वह अनेक मणि मुक्ताफल आदि लेकर मन्त्री वगैरह आप्त जनोंके साथ सम्राट् भरतके पास पहुंचा और वहां उनके सामने समस्त उपहार भेंट कर विनम्र शब्दोंमें कहने लगा —देव! आज हमारे

पूर्व कृत शुभ कर्मोंका उदय आया है जिससे आप जैसे महापुरुषोंका समागम प्राप्त हुआ है। आपके शुभागमनसे मुझे जो हर्ष हो रहा है वह बचनोंसे नहीं कहा जा सक्ता। साक्षात् परमेश्वर बृषभदेव जिनके पिता हैं, और चौदह रत्न तथा नौ निधियां अप्रमत्त होकर जिनकी सदा सेवा किया करती हैं ऐसे आपके सामने यद्यपि यह मणि मुक्ताओंकी तुच्छ भेंट शोभा नहीं देती तथापि प्रार्थना है कि महानुभाव सेवककी इस अल्प भेंटको भी स्वीकृत करेंगे।' यह कहकर उसने भरतके कानोंमें मणिमयी कुण्डल और गलेमें मणिमयी हार पहिना दिया भरत महाराज मगधदेवके नम्र व्यवहारसे बहुत प्रसन्न हुये। उन्होंने सुमधुर शब्दोंमें उसके प्रति अपना कर्तव्य प्रकट कर मित्रता प्रकट की। मगध भी कर्तव्य पूरा कर अपने स्थानको वापिस चला गया।

चक्रवर्ती भी विजय प्राप्त कर शिविर सेना स्थान पर वापिस आ गये। विजयका समाचार सुनकर चक्रवर्तीकी समस्त सेना आनन्दसे फूल उठी। उसकी हर्षध्वनिसे सारे आकाशको गुंजा दिया। फिर दक्षिण दिशाके राजाओंको वशमें करनेके लिए चक्रवर्तीने विशाल सेनाके साथ दक्षिणकी ओर प्रस्थान किया। उस समय भरत महाराज उपसागर और लवणसागरके बीचमें जो स्थल मार्ग था उसीपर गमन कर रहे थे। वहाँ उनका वह विशाल सैन्य लहराते हुए तीसरे सागरकी नांई जान पड़ता था। इस तरह अनेक देशोंको उलंघन करते और उनके राजाओंको अपने आधीन बनाते हुये भरतजी इष्ट स्थान पर पहुंचे। वहांपर उन्होंने इलायचीकी बेलोंसे मनोहर वनमें सेना ठहराकर पूर्वकी तरह वैजयन्त महाद्वारसे दक्षिण लवणोदधिमें प्रवेश किया। और बारह योजन दूर जाकर उसकेअधिपति व्यन्तरदेवको पराजित कर वे वहांसे वापिस लौट आये। फिर उसी समुद्र और उपसमुद्रके बीचके रास्तेसे प्रस्थान कर पश्चिमकी ओर रवाना हुये। क्रम क्रमसे सिन्धु नदीके द्वारपर पहुंचे वहाँ उन्होंने द्वारके बाहर ही चन्दन, नारियल, एला, लवंग आदिके वृक्षोंसे शोभायमान वनोंमें सेना ठहराकर पहलेकी तरह लवण समुद्रमें प्रवेश किया और बारह योजन दूर जाकर व्यन्तरोंके अधीश्वर प्रभासनामक देवको पराजित किया। विजय प्राप्त कर लौटे हुए सम्राट्का सेनाने शानदार स्वागत किया।

इस प्रकार पूर्व, दक्षिण और पश्चिम दिशामें विजय प्राप्त कर चुकनेके बाद भरतजी उत्तर दिशाकी ओर चले। अबतक उनकी सेना बहुत अधिक बढ़ गई थी क्योंकि रास्तेमें मिलनेवाले अनेक राजा मित्र होकर अपनी २ सेना लेकर उन्हींके साथ मिलते जाते थे। जब वह विशाल सेना चलती थी तब उसके भारसे पृथ्वी, पर्वत और पादप आदि सभी वस्तुयें कांप उठती थीं। उसकी जयध्वनि सुनते ही शत्रु राजाओंके दिल दहल जाते थे। चलते चलते चक्रवर्ती विजयार्ध पर्वतके पास पहुंचे वहां उन्होंने सुखसे समस्त सेनाको ठहराया और स्वयं आवश्यक कार्य कर चुकनेके बाद मन्त्रोंकी आराधनामें लग गये। कुछ समय बाद वहांपर एक देव भरतसे मिलनेके लिए आया भरतने उसे सत्कार पूर्वक आसन दिया। भरत प्रदत्त आसनपर बैठकर देवने निम्न शब्दोंमें अपना परिचय दिया—प्रभो' मैं विजयार्ध नामका, देव हूं, मैं जातिका व्यन्तर हूं, आपको आया हुआ देख कर सेवामें उपस्थित हुआ हूं। आज्ञा कीजिये, मैं हर एक तरहसे आपका सेवक हूं। देव। देखिये, आपका निर्मल-धवल यश समस्त आकाशमें कैसा छा रहा है, इत्यादि मनोहर स्तुति कर उसने चक्रवर्तीका तीर्थोदकसे अभिषेक किया और अनेक वस्त्राभूषण, रत्नशृङ्गार, सफेद छत्र, दो चमर तथा सिंहासन प्रदान किया। इसके बाद देव आज्ञा प्रकट कर अपनी जगहपर वापिस चला गया। 'यह विजयार्धदेव विजयार्ध गिरिकी दक्षिण श्रेणीमें रहता है इसलिये इसके वशीभूत हो चुकनेपर भी उत्तर श्रेणीके देवको वशमें करना बाकी है और जब समस्त विजयार्ध पर हमारा अधिकार हो चुकेगा तभी दक्षिण भारतकी दिग्विजय पूर्ण हुई कहलावेगी' ऐसा सोचकर भरत महाराजने जल, सुगन्धि आदिसे चक्ररत्नकी पूजा की तथा उपवास रखकर मन्त्रोंकी आराधना की। फिर समस्त सेनाके साथ प्रस्थान कर विजयार्ध गिरिकी पश्चिम गुफाके पास आये। चक्रवर्तीने पासके वनोंमें सेना ठहरा दी। वहां पर भी अनेक राजा तरह तरहके उपहार लेकर उनसे मिलनेके लिये आये। उत्तर विजयार्धका स्वामी कृतमाल नामक देव भी भरतके स्वागतके लिये आया। भरतने उसके प्रति प्रेम प्रदर्शन किया कृतमालने चौदह आभूषण देकर भरतकी खूब प्रशंसा की और गुफामें प्रवेश करनेके उपाय बतलाये। चक्र-

वर्तीने प्रसन्न होकर कृनमालको वापिस किया और स्वयं दण्ड रत्नसे गुफाके द्वारका उद्घाटन किया। द्वारका उद्घाटन करते ही जब उसमेंसे चिर संचित ऊष्मा-गर्मी निकलने लगी। तब उन्होंने सेनापतिसे कहा कि 'जबतक यहांकी ऊष्मा शान्त होती है तबतक तुम पश्चिम खण्डपर विजय प्राप्त करो'। चक्रवर्तीकी आज्ञानुसार सेनापति अश्व रत्नपर सवार हो कुछ सेनाके साथ पश्चिम की ओर आगे बढ़ा। उस समय उसके आगे दण्ड रत्न भी चल रहा था। याद रहे कि भरतका सेनापति हस्तिनापुरके राजा सोमप्रभका पुत्र जयकुमार था। वह बड़ा वीर, बहादुर और निर्मल बुद्धि वाला था। जयकुमारने दण्ड रत्नसे गुहा द्वारका उद्घाटन किया। पहले द्वारके समान उसमेंसे भी ऊष्मा-दाह निकलने लगी पर उसने उसकी परवाह नहीं की। वह अश्व रत्नपर सवार हो शीघ्रतासे आगे निकल गया। देवोंकी सहायतासे उसकी समस्त सेना भी कुशलता पूर्वक आगे निकल गई। इस प्रकार सेनापति समस्त सेनाके साथ विजयार्ध गिरिकी तटवेदिकाको पारकर सिन्धु नदीकी पश्चिम वेदिकाके तोरण द्वारसे म्लेच्छ खण्डोंमें जा पहुंचा। वहां उसने घूम-घूमकर समस्त म्लेच्छ खण्डोंमें चक्रवर्तीका शासन प्रतिष्ठापित किया। फिर म्लेच्छ राजा और उनकी सेनाके साथ वापिस आकर पहली गुहाके द्वारका निरीक्षण किया। सेनापतिको म्लेच्छ खण्डोंके जीतनेमें जितना (छह माहका) समय लगा था उतने समयतक गुहा द्वारकी ऊष्मा शान्त हो चुकी थी। गुहामें प्रवेश करनेके उपाय सोचकर विजयी जयकुमार चक्रवर्तीसे आ मिला। चक्रवर्ती भरतने उसका बहुत सन्मान किया जयकुमारने साथमें आये हुए म्लेच्छ राजाओंका चक्रवर्तीसे परिचय कराया।

इसके अनन्तर सम्राट भरत समस्त सेनाके साथ उस गुहाद्वारमें प्रविष्ट हुए। सेनापति और पुरोहित गुफाकी दोनों दीवालोंपर काकिणी रत्न घिसते जाते थे जिससे उस तमिस्र गुफामें सूर्य चन्द्रमाके प्रकाशकी तरह प्रकाश फैलता जाता था। गुहाका आधा मार्ग तय करनेपर उन्हें निमग्ना और उन्मग्ना नामकी नदियां मिलीं। निमग्ना नदी हर एक पदार्थको डुबा देती थी और उन्मग्ना नदी डूबे हुए पदार्थको ऊपर ला देती थी। स्थपति रत्नने दोनों नदियों के पुल तैयार कर दिये थे। चक्रवर्ती समस्त सेनाके साथ उन्हें पार कर आगे

बढ़े। इस तरह कुछ दिनोंतक निरन्तर चलनेपर गुहामार्ग समाप्त हो गया और चक्रवर्ती तटके वनमें पहुंच गये। वहां सिन्धु नदीके शीतल जल कणोंसे मिश्रित पवनके सुखद स्पर्शसे सबको बहुत आनन्द हुआ। तट वनकी मनोहरतासे प्रमुदित होकर चक्रवर्तीने कुछ दिनोंतक वहींपर विश्राम किया। भरतकी आज्ञा पाकर सेनापति जयकुमारने पश्चिमकी तरह पूर्व खण्डोंमें भी घूम-घूमकर उनका शासन स्थापित किया। जब जयकुमार लौटकर वापिस आया तब चक्रवर्तीने उसका खूब सत्कार किया।

अब चक्रवर्ती समस्त सेना लेकर मध्यम खण्डको जीतनेके लिये चले। वहां इनकी सेनाका तुमुल रव सुनकर दो म्लेच्छ युद्ध करनेके लिये भरतके सामने आये। उन म्लेच्छ राजाओंको उनके बुद्धिमान मन्त्रियोंने पहले तो युद्ध करनेसे बहुत रोका पर अन्तमें जब उनका विशेष आग्रह देखा तब उन्हें युद्ध करनेके अनेक उपाय बताये। मन्त्रियोंके कहे अनुसार म्लेच्छ राजाओंने मन्त्र बलसे नाग देवोंका आह्वान किया। नाग देव मेघोंका रूप रखकर समस्त आकाशमें फैल गये और लगे चक्रवर्तीकी सेना पर मूसलाधार पानी बरसाने। पानी बरसते समय ऐसा मालूम होता था मानों आकाशके फट जानेसे स्वर्ग गङ्गाका प्रबल प्रवाह ही वेगसे नीचे गिर रहा हो। जब चक्रवर्तीकी सेना उस प्रचण्ड वर्षासे आकुल व्याकुल होने लगी तब उन्होंने ऊपर छत्र रत्न और नीचे चर्म रत्न फैलाकर उसके बीचमें समस्त सेनाके साथ विश्राम किया। लगातार सात दिन तक मूसलधार वर्षा होती रही जिससे ऐसा मालूम होने लगा था कि भरतकी सेना समुद्रमें तैर रही है। मौका देखकर भरतने उपद्रव दूर करनेके लिये गणबद्धदेवोंको आज्ञा दी। गणबद्ध देवोंने अपनी अप्रतिम हुंकारसे समस्त दिशाएं गुंजा दीं उसी समय बहादुर जयकुमारने दिव्य धनुष लेकर बाणोंसे आकाशको भर दिया और सिंहनादसे सब नागोंके दिल दहला दिये। वे डर कर भाग गये जिससे आकाश निर्मल हो गया। उसमें पहलेकी भांति सूर्य चमकने लगा। भरतने जयकुमारकी वीरतासे प्रसन्न होकर उसका मेघेश्वर नाम रखा और उपद्रवको दूर हुआ समझकर छत्र रत्नका संकोच किया। जब नाग देव भाग गये तब म्लेच्छ राजा बहुत दुःखी हुए क्योंकि इनके पास चक्र-

वर्तीकी सेनाके साथ लड़नेके लिये और कोई उपाय नहीं था। अन्तमें हार मानकर वे चक्रवर्तीसे मिलनेके लिये आये और साथमें अनेक मणि, मुक्ता, आदिका उपहार लाये। सम्राट भरत म्लेच्छ राजाओंसे मित्रकी तरह मिले। भरतका सद्व्यवहार देखकर वे पराजित होनेका दुःख भूल गये और कुछ देर तक अनुनय विनय करनेके बाद अपने स्थानपर चले गये। इसके अनन्तर भरतजी समस्त सेनाके साथ हिमवत् पर्वतकी ओर गये। वहां मार्गमें सिंधु देवीने अभिषेककर उन्हें एक उत्तम सिंहासन भेंट किया। कुछ दिनोंतक गमन करनेके बाद वे हिमवत पर्वतके उपकण्ठ-समीपमें पहुंच गये। वहां उन्होंने पुरोहितके साथ उपवास करके चक्ररत्नकी पूजा की तथा और भी अनेक मन्त्रोंकी आराधना की। फिर हाथमें वज्रमय धनुष लेकर हिमवत् पर्वतकी शिखरको लक्ष्य कर अमोघ बाण छोड़ा। उसके प्रतापसे वहां रहने वाला देव नम्र होकर चक्रवर्तीसे मिलने आया और साथमें अनेक वस्त्राभूषणोंकी भेंट लाया। चक्रवर्तीने उसके नम्र व्यवहारसे प्रसन्न होकर उसे विदा किया। वहांसे लौटकर वे वृषभाचल पर्वतपर पहुंचे। वह पर्वत श्वेत रंगका था इसलिये ऐसा मालूम होता था मानो चक्रवर्तीका इकट्ठा हुआ यश ही हो। सम्राट भरतने वहां पहुंच कर अपनी कीर्ति-प्रशस्ति लिखनी चाही पर उन्हें वहां कोई ऐसा शिला तल खाली नहीं मिला जिसपर किसीका नाम अङ्कित न हो। अबतक दिग्विजयी भरतका हृदय अभिमानसे फूला न समाता था पर ज्योंही उनकी दृष्टि असंख्य राजाओंकी प्रशस्तियोंपर पड़ी त्योंही उनका समस्त अभिमान दूर हो गया। निदान, उन्होंने एक शिलापर दूसरे राजाकी प्रशस्ति मिटाकर अपनी प्रशस्ति लिख दी। सच है—संसारके समस्त प्राणी स्वार्थ साधनमें तत्पर हुआ करते हैं। वृषभाचलसे लौटकर वे गङ्गा द्वार पर आये' वहां गङ्गादेवीने अभिषेक कर उन्हें अनेक रत्नोंके आभूषण भेंट किये। वहांसे भी लौटकर वे विजयार्ध गिरिके पास आये। वहां गुहा द्वारका उद्घाटन कर प्राच्य खण्डकी विजय करनेके लिये सेनापति जयकुमारको भेजा और आप वहीं पर छह माह तक सुखसे ठहरे रहे। इसी बीचमें विद्याधरोंके राजा नमि, विनमि अनेक उपहार लेकर चक्रवर्तीसे भेंट करनेके लिये आये। चक्रवर्तीके सद्व्यवहारसे

प्रसन्न होकर नमि राजाने उनके साथ अपनी सुभद्रा नामकी वहिनकी शादी कर दी। अनवद्य सुन्दरी सुभद्राको पाकर चक्रवर्तीने अपना समस्त परिश्रम सफल समझा। इतनेमें सेनापति जयकुमार प्राच्य खण्डोंको जीतकर वापिस आ गया। अब सब सेना और सेनापतिके साथ चक्रवर्ती भरत, खण्ड प्रपात नामक गुहामें घुसे। वहां नाट्य माल नामके देवने उनका खूब सत्कार किया तथा अनेक वस्त्राभूषण दिये। गुहा पार करनेके वाद क्रम क्रमसे भरत महाराज कैलाश गिरि पर पहुंचे वहां उन्होंने कुछ दिनों तक विश्राम किया। कैलाशकी गगन चुम्बी धवल शिखरोंने भरत राजके हृदय पर अपना अधिकार जमा लिया था। वहांका प्राकृतिक सौन्दर्य देखते हुए उनका जी उसे छोड़ना नहीं चाहता था। यही कारण था कि वहां पर कथानायक भगवान् वृषभदेव समवसरण सहित कई बार पहुंचे और भरतने आगे चलकर तीर्थंकरोंके सुन्दर मन्दिर बनवाये।

कैलाशसे लौटकर सम्राट् भरतने राजधानी अयोध्याकी ओर प्रस्थान किया और कुछ प्रयाण (पड़ाव) तय करनेके वाद अयोध्यापुरीको वापिस आ गये। दिग्विजयी भरतके स्वागतके लिये अयोध्या नगरी खूब सजाई गई थी समस्त नगर वासी और आस पासके बत्तीस हजार मुकुट बद्ध राजा उनकी अगवानीके लिये गये थे। अपने प्रति प्रजाका असाधारण प्रेम देखकर भरतजी बहुत प्रसन्न हुए। वे सब लोगोंके साथ अयोध्यापुरीमें प्रवेश करनेके लिये चले सब लोगोंके आगे चक्ररत्न चल रहा था।

चक्रवर्तीका जो सुदर्शन चक्र भारतवर्षकी छह खण्ड वसुन्धरामें उनकी इच्छाके विरुद्ध कहीं पर नहीं रुका था वह पुरीमें प्रवेश करते समय बाह्यद्वार पर अचानक रुक गया। यक्षोंके प्रयत्न करने पर भी जब चक्ररत्न तिल भर भी आगे नहीं बढ़ा तब चक्रवर्तीने विस्मित होकर पुरोहितसे उसका कारण पूछा। पुरोहितजीने निमित्त ज्ञानसे जानकर उसका कारण बतलाया कि "अभी आपको अपने भाइयोंको वशमें करना बाकी है—जब तक आपके सब भाई आपके आधीन न हो जावेंगे तब तक चक्ररत्नका नगरमें प्रवेश नहीं हो सकता क्योंकि इस दिव्य शस्त्रका ऐसा नियम है कि जब तक छह खण्डके समस्त

प्राणी चक्रवर्तीके अनुयायी न बन जावें तब तक वह लौटकर नगरमें प्रवेश नहीं करना पुरोहितके वचन सुनकर चक्रवर्तीने अनेक उपहारोंके साथ अपने भाइयोंके पास चतुर दूत भेजे और उन्हें अपनी आधीनता स्वीकार करनेके लिये प्रेरित किया। भरतके भाइयोंने ज्योंही दूतोंके मुखसे उनका सन्देश सुना त्योंही उन्होंने संसारसे विरक्त होकर राज्य तृष्णा छोड़कर दीक्षा लेना अच्छा समझा और निश्चयके अनुसार दीक्षा लेनेके लिये भगवान् आदिनाथ के पास चले भी गये। इन्होंने लौटकर भरतजी से सब समाचार कह सुनाये। भाईयोंके विरहसे उन्हें चिन्ता हुई तो अवश्य, किन्तु राज्य लिप्सा भी कोई चीज है? उसके वशीभूत होकर उनने अपने हृदयमें बन्धु विरहको अधिक स्थान नहीं दिया। फिर उन्होंने अपनी दूसरी मा सुनन्दाके पुत्र बाहुबलीके पास एक चतुर दूत भेजा। उस समय बाहुबली पोदनपुरके राजा थे वह दूत क्रम क्रमसे अनेक देशोंको लांघता हुआ पोदनपुर पहुंचा और वहां द्वारपालके द्वारा राजा बाहुबलीके पास आनेकी खबर भेजकर राज सभामें पहुंचा। वहां एक ऊंचे सिंहासन पर बैठे हुए बाहुबलीको देखकर इनके मनमें संशय हुआ कि 'यह शरीर धारी अनङ्ग है? मोहनी आकृतिसे युक्त बसन्त है? मूर्तिधारी प्रताप है? अथवा धाम तेजका समूह है?' दूतने उन्हें दूरसे ही नमस्कार किया। बाहुबलीने भी बड़े भाई भरतके राजदूतका यथोचित सत्कार किया। कुछ समय बाद जब उन्होंने उससे आनेका कारण पूछा तब वह विनीत शब्दोंमें कहने लगा—'नाथ! राज राजेश्वर भरत जो कि भारतवर्ष की छह खण्ड बसुन्धरा को जीतकर वापिस आये हैं, उन्होंने राजधानी अयोध्यासे मेरे द्वारा आपके पास सन्देशा भेजा है—'प्यारे भाई! यह विशाल राज्य तुम्हारे बिना शोभा नहीं देता इस लिये तुम शीघ्रही आकर मुझसे मिलो। क्योंकि राज्य वही कहलाता है जो समस्त बन्धु बन्धुओंके भोगका कारण हो। यद्यपि मेरे चरण कमलोंमें समस्त देव विद्याधर और सामान्य मनुष्य भक्तिसे मस्तक झुकाते हैं तथापि जब तक तुम्हारा प्रताप मय मस्तक उनके पास मञ्जुल मराल—मनोहर हंसकी भांति आचरण नहीं करेगा तब तक उनकी शोभा नहीं' इसके अनन्तर महाराजने यह भी कहला भेजा है कि 'जो कोई

हमारे अमोघ शासनको नहीं मानता उनका शासन यह चक्ररत्न करता है। बस' जब दूत संदेश सुनाकर चुप हो रहा तब कुमार बाहुबली मुस्कराते हुए बोले—'ठीक' तुम्हारे राज राजेश्वर बहुत ही बुद्धिमान मालूम होते हैं। उन्होंने अपने संदेशमें कुछ कुछ साम और दाम और विशेषकर भेद-दण्डका कैसा अनुपम समन्वय कर दिखाया है ? कहते कहते बाहुबलीकी गंभीरता उत्तरोत्तर बढ़ती गई। उन्होंने गंभीर स्वरमें कहा—तुम्हारा राजा भरत बहुत मायावी मालूम होता है। उसके मनमें कुछ और है और संदेश कुछ और ही भेज रहा है। यदि दिग्विजई भरत सचमुचमें सुर विजयी है तो फिर दर्भ कुशाके आसनपर बैठकर उनकी आराधना क्यों करता था ? इसी तरह यदि उसकी सेना अजेय थी तो वह म्लेच्छोंके समरमें लगातार सात दिन तक क्यों तकलीफ उठाती रही ? पूज्य पिताजीने मुझमें और उसमें समान रूपसे राजा पदका प्रयोग था फिर उसके साथ 'राजराजेश्वर' का प्रयोग कैसा ? सचमुच तुम्हारा राजा चक्री है, कुम्हार है उसे चक्र घुमानेका खूब अभ्यास है इसी लिए वह अनेक पार्थिव घड़े बनाता रहता है, चक्र ही उसके जीवनका साधन है। उससे जाकर कह दो यदि तुम अरि चक्रका संहार करोगे तो जीवन-जल-आयुसे हाथ धोना पड़ेगा।' भरतके अन्तिम सन्देशका उत्तर देते समय बाहुबलीके ओंठ कांपने लगे थे, आंखें लाल हो गई थीं, उन्होंने दूतसे कहा 'जाओ, तुम्हारा भरत संग्रामस्थलमें मेरे सामने ताण्डव नृत्य रचकर अपना भरत-नट नाम सार्थक करे। मैं किसी तरह उसकी सेवा स्वीकार नहीं कर सकता" उक्त उत्तरके साथ बाहुबलीने दूतको विदा किया और युद्धके लिए सेना तैयार की। इधर दूतने आकर जब भरतसे ज्योंके त्यों सब समाचार कह सुनाये तब वे भी युद्धके लिये सेना लेकर पोदनपुर पहुंचे। वह भाई भाईको लड़ाई किसीको अच्छी नहीं लगी। दोनोंके बुद्धिमान मन्त्रियोंने दोनोंको लड़नेसे रोका, पर राज्य लिप्सा और अभिमानसे भरे हुए उनके हृदयमें किसीके भी वचन स्थान न पा सके। अगत्या दोनों ओरके मन्त्रियोंने सलाह कर भरत और बाहुबलीसे निवेदन किया कि इस युद्धमें सेनाका व्यर्थ ही संहार होगा इसलिए आप दोनों महाशय स्वयं युद्ध करें, सैनिक लोग चुपचाप तमाशा देखें। आप भी सबसे

पहले दृष्टि युद्ध फिर जल युद्ध और बादमें मल्लयुद्ध ही कीजियेगा। इन तीन युद्धोंमें जो हार जावेगा वही पराजित कहलावेगा" मन्त्रियोंकी सलाह दोनों भाईयोंको पसन्द आ गई इसलिये उन्होंने अपनी अपनी सेनाको युद्ध करनेसे रोक दिया। निश्चयानुसार सबसे पहिले दृष्टि युद्ध करनेके लिये दोनों भाई युद्धभूमिमें उतरे। दृष्टि युद्धका तरीका यह था कि 'दोनों विजिगीषु एक दूसरे की आंखोंकी ओर देखें देखते देखते जिसके पलक पहले झप जावें वही पराजित कहलावे। यहां इतना ख्याल रखिये कि भरतका शरीर पांच सौ धनुष ऊंचा था और बाहुबलीका पांच सौ पच्चीस। इसलिये दृष्टि युद्धके समय भरत को ऊपरकी ओर देखना पड़ता था और बाहुबलीको नीचेकी ओर। वायु भरने से भरतके पलक पहले झप गये—विजय लक्ष्मी बाहुबलीको प्राप्त हुई। इसके अनन्तर जलयुद्धके लिये दोनों भाई तालाबमें प्रविष्ट हुए जल युद्धका तरीका यह था कि "दोनों एक दूसरे पर पानी फेंकें जो पहिले रुक जावेगा वही पराजित कहलावेगा"। बाहुबली ऊंचे थे इसलिये वे जो जलधारा छोड़ते थे वह भरतके सारे शरीर पर पड़ती थी और भरत जो जलधारा छोड़ते थे वह बाहुबलीको छू भी न सकती थी। निदान, इसमें भी बाहुबली ही विजयी हुए। अन्तमें मल्लयुद्धके लिए दोनों वीर युद्ध-स्थलमें उतरे। मल्लयुद्ध देखनेके लिए आए हुए देव और विद्याधरों के विमानों से आकाश भर गया था। और पृथ्वी तलपर असंख्य मनुष्य राशि दिख रही थी। देखते देखते बाहुबलीने भरतको उठाकर चक्रकी भांति आकाशमें घुमा दिया जिससे बाहुबलीका जय नाद समस्त आकाशमें गूंज उठा। चक्रवर्ती भरतको अपना अपमान सह्य नहीं हुआ इसलिये उन्होंने क्रोधमें आकर भाई बाहुबलीके ऊपर सुदर्शन चक्र चला दिया जो कि दिग्विजयके समय किसीके ऊपर नहीं चलाया गया था। पुण्यके प्रतापसे चक्ररत्न, बाहुबलीकुमारका कुछ भी न बिगाड़ सका, वह उनकी तीन प्रदक्षिणाएं देकर भरतके पास वापिस लौट आया। जब भरतने चक्र चलाया था तब सब ओरसे धिक् धिक्की आवाज आरही थी। बड़े भाई भरतका यह तुच्छ व्यवहार देखकर कुमार बाहुबलीका मन संसारसे एकदम उदास हो गया उन्होंने सोचा कि 'मनुष्य राज्य आदिकी लिप्सासे क्या क्या

अनुचित काम नहीं कर बैठते ? जिस राज्यके लिये भरत और मैंने इतनी विडम्बना की है अन्तमें उसे छोड़कर चला जाना पड़ेगा' इत्यादि विचार कर उन्होंने अपने पुत्र महाबलीके लिये राज्य भार सौंपकर जिन दीक्षा ले ली। वे एक वर्ष तक खड़े खड़े ध्यान लगाये रहे, उनके पैरोंमें अनेक घन लताएं और सांप लिपट गये थे फिर भी वे ध्यानसे विचलित नहीं हुए। एक वर्षके बाद उन्हें दिव्य ज्ञान केवल ज्ञान प्राप्त हो गया जिसके प्रतापसे वे तीनों कालोंकी बात और तीनों लोकोंको एक साथ जानने और देखने लगे थे। और अन्तमें सबसे पहले मोक्ष धामको प्राप्त हुए।

इधर जब क्रोधका वेग शान्त हुआ तब भरत भी बाहुबलीके बिना बहुत दुखी हुए। आखिर उपाय ही क्या था ? समस्त पुरवासी और सेनाके साथ लौटकर उन्होंने अयोध्यामें प्रवेश किया। वहां समस्त राजाओंने मिलकर भरतका राज्याभिषेक किया। और उन्हें सम्राट-राजाधिराज रूपसे स्वीकार किया अब वे निष्कंटक हो कर समस्त पृथ्वीका शासन करने लगे। सम्राट भरतने राज्य रक्षाके लिये समस्त राजाओंको राज-धर्म-क्षत्रिय धर्मका उपदेश दिया था। जिसके अनुसार प्रवृत्ति करनेसे राजा और प्रजा-सभी लोग सुखी रहते थे। राजा प्रजाकी भलाई करनेमें संकोच नहीं करते थे और प्रजा, राजा की भलाईमें प्राण देनेके लिये भी तैयार रहते थे। इस तरह महाराज भरत स्त्री रत्न सुभद्राके साथ नाना प्रकारके भोग भोगते हुए सुखसे समय बिताते थे।

एकदिन उन्होंने विचारा कि "मैंने जो इतनी अधिक सम्पत्ति इकट्ठी की है उसका क्या होगा ? बिना दान किए इसकी शोभा नहीं। पर दान दिया भी किसे जावे मुनिराज तो संसारसे सर्वथा निःस्पृह हैं इसलिये वे न तो धन धान्य आदिका दान ले सकते हैं, न उन्हें देनेकी आवश्यकता भी है। वे सिर्फ भोजनकी इच्छा रखते हैं सो गृहस्थ उनकी इच्छा पूर्ण कर देते हैं। हां गृहस्थ धन धान्यका दान ले सकते हैं पर अव्रती गृहस्थोंको दान देनेसे लाभ ही क्या होगा ? इसलिए अच्छा हो जो प्रजामेंसे कुछ दानपात्रोंका चुनाव किया जावे जो योग्य हों उन्हें दान देकर इस विशाल सम्पत्तिको सफल बनाया जावे। वे लोग दान लेकर आजीविकाकी चिन्ताओंसे निर्मुक्त हो धर्मका प्रचार करेंगे

और पठन पाठनकी प्रवृत्ति करेंगे" यह सोचकर उन्होंने किसी व्रतके दिन प्रजाको राजमन्दिरमें आनेके लिए आमन्त्रित किया बुलाया और राजमन्दिरके रास्तेमें हरी हरी दूब लगवा दी जब प्रजाके व्रतधारी मनुष्योंने द्वार पर पहुंचकर वहां हरी दूब देखी तब वे अपने व्रतकी रक्षाके लिए वहींपर खड़े रह गये। पर जो अव्रती थे वे पैरोंसे दूबको कुचलते हुए भीतर पहुंच गये। भरतने व्रती मनुष्योंको जो बाहर खड़े हुए थे दूसरे प्रासुक रास्तेसे बुलाकर खूब सत्कार किया। उसी समय व्रती मनुष्योंको भरत महाराजने गृहस्थोपयोगी समस्त क्रियाकाण्ड, सन्स्कार, आवश्यक कार्य आदिका उपदेश देकर यज्ञोपवीत प्रदान किये और जगत्‌में उन्हें वर्णोत्तम ब्राह्मण नामसे प्रसिद्ध किया। पाठक भूले न होंगे कि 'पहले भगवान् वृषभदेवने क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्णकी स्थापना की थी' और अब भरतने वर्णोत्तम ब्राह्मण वर्णकी स्थापना की है। इस तरह सृष्टिकी लौकिक और धार्मिक व्यवस्थाके लिए चार वर्णोंकी स्थापना हुई थी। भरतने ब्राह्मणोंके लिए अनेक वस्त्राभूषण प्रदान किए और उनकी आजीविकाके समुचित प्रबन्ध कर दिए। धीरे धीरे ब्राह्मणोंकी संख्या बढ़ती गई। वे आजीविका आदिकी चिन्तामें निर्मुक्त हो स्वतन्त्र चित्तसे शास्त्रोंका अध्ययन करते और जैनधर्मका प्रचार करते थे। वर्णव्यवस्थाका उल्लंघन न हो, इस बातका सम्राट् बहुत ख्याल रखते थे। उस समय क्षत्रिय प्रजाका पालन करते थे, वैश्य व्यापारके द्वारा सबकी आर्थिक चिन्ता दूर करते, शूद्र एक दूसरेकी सेवा करते और ब्राह्मण पठन पाठनका प्रचार करते थे। कोई अपने अपने कर्मोंमें व्यतिक्रम नहीं करने पाते थे इसलिए सब लोग सुख शान्तिसे जीवन व्यतीत करते थे। एक दिन भरत महाराजने रात्रिके पिछले पहरमें कुछ अद्भुत स्वप्न देखे जिससे उनके चित्तमें बहुत कुछ उद्वेग पैदा हुआ। स्वप्नोंका निश्चित फल जाननेके लिए उन्होंने किसी औरसे नहीं पूछा, वे सीधे जगत्पूज्य भगवान आदिनाथके समवसरणमें पहुंचे। वहां उन्होंने गन्ध कुटीमें विराजमान जगद्गुरुको भक्ति पूर्वक नमस्कार किया और जल चन्दन आदिसे उनकी पूजा की पूजा कर चुकनेके बाद भरतने पूछा 'हे त्रिभुवन गुरो! धर्म मार्गके प्रवर्तक आपके रहते हुए भी मैंने अपनी मन्दतासे एक ब्राह्मण वर्णकी सृष्टि की है

उससे कुछ हानि तो न होगी ?' यह कहकर रात्रिके देखे हुए स्वप्न भी कह सुनाये और उनका फल जाननेकी इच्छा प्रकट की। भरतका प्रश्न समाप्त होते ही भगवानने दिव्य वाणीमें कहा—

'पूजा द्विजानां शृणु वत्स ! साध्वी, कालान्तरे प्रत्युत दोष हेतुः ।
काले कलौजाति मदादिमेते, वैरं करिष्यन्ति यतः सुमार्गे ॥ —अर्हद्दास

वत्स ! यद्यपि इस समय ब्राह्मणोंकी पूजा श्रेयस्करी है उससे कोई हानि नहीं है तथापि कालान्तरमें वह दोषका कारण होगी, यहां लोग कलिकालमें समीचीन मार्गके विषयमें जाति आदिके अहंकारसे विद्वेष करेंगे, यह सुनकर भरतने कहा—'यदि ऐसा है तब मुझे इन्हें विध्वंस-नष्ट करनेमें क्या देर लगेगी ? मैं शीघ्र ही ब्राह्मण वर्णकी सृष्टि मिटा दूंगा'। तब उन्होंने कहा—'नहीं, धर्म सृष्टिका अतिक्रम करना उचित नहीं है, इसके बाद उन्होंने जो स्वप्नोंका फल बतलाया था वह यह है—'अये वत्स ! 'पृथ्वीतलमें विहार करनेके बाद पर्वतकी शिखरोंपर बैठे हुए तेईस सिंहोंके देखनेका फल यह है कि प्रारम्भसे तेइस तीर्थकरोंके समयमें दुर्णयकी उत्पत्ति नहीं होगी, पर जो तुमने दूसरे स्वप्नमें एक सिंह बालकके पास हाथी खड़ा देखा है उससे मालूम होता है कि अन्तिम तीर्थङ्कर महावीरके तीर्थमें कुलिङ्गी साधु अनेक दुर्णय प्रकट करेंगे।

हाथीके भारसे जिसकी पीठ भग्न हो गई है ऐसे घोड़ेके देखनेसे यह प्रकट होता है कि दुषम पंचम कालके साधु तपका भार धारण नहीं कर सकेंगे। सूखे पत्ते खाते हुये बकरोंका देखना बतलाता है कि कलिकालमें मनुष्य सदाचारको छोड़कर दुराचारी हो जावेंगे।

मदोन्मत्त हाथीकी पीठपर बैठा हुआ बन्दर बतलाता है कि दुःषम कालमें अकुलीन मनुष्य राज्य शासन करेंगे। कौओंके द्वारा उल्लुओंका मारा जाना बतलाता है कि कालान्तरमें मनुष्य सदा सुखद जैन धर्मको छोड़कर दूसरे मतोंका अवलम्बन करने लगेंगे। नृत्य करते हुए भूतोंके देखनेसे मालूम होता कि आगे चलकर प्रजाके लोग व्यन्तरोंको ही देव समझकर पूजा करेंगे।

जिसका मध्य भाग सूखा हुआ है और आस पास पानी भरा हुआ है

ऐसे तालाब देखनेका फल यह है कि कालान्तर है मध्य खण्डमें सद्धर्मका अभाव हो जावेगा और वह आस पासमें स्थिर रहेगा।

धूलि धूसर रत्नोंके देखनेसे ज्ञात होता है कि दुःषम कालमें मुनियोंके ऋद्धियां उत्पन्न नहीं होवेंगी।

कुत्तेका सत्कार देखना बतलाता है कि आगे चलकर व्रत रहित ब्राह्मण पूजे जावेंगे।

घूमते हुये जवान बैलके देखनेका यह फल है कि मनुष्य जवानीमें ही मुनि व्रत धारण करें गे।

चन्द्रमाके परिवेष-घेरा देखनेसे मालूम होता है कि कलिकालके मुनियोंको अवधि ज्ञान प्राप्त नहीं होगा।

परस्पर मिलकर जाते हुये बैलोंको देखनेसे प्रकट होता है कि साधु एकाकी अकेले विहार नहीं कर सकेंगे।

सूर्यका मेघोंमें छिप जाना बतलाता है कि पंचम कालमें प्रायः केवलज्ञान उत्पन्न नहीं होगा।

सूखा वृक्ष देखनेसे 'पुरुष और स्त्रियां चरित्रसे च्युत हो जावेंगी' यह प्रकट होता है।

और वृक्षोंके जीर्ण-पके हुये पत्तोंके देखनेसे विदित होता है कि पंचम युगमें महौषधियां तथा रस वगैरह नष्ट हो जावेंगे।"

इस तरह उन्होंने स्वप्नोंका फल बतलाकर भरत आदि समस्त स्रोताओंको विघ्न शान्तिके लिये धर्ममें दृढ़ रहनेका उपदेश दिया। देवाधिदेव वृषभनाथकी अमृतवाणीसे सन्तुष्ठ होकर भरत महाराजने विघ्न शान्तिके लिये उनकी पूजा की स्तुति की और अन्तमें नमस्कार कर अयोध्यापुरीकी ओर प्रस्थान किया।

भरतके मरीचि, अर्ककीर्ति आदि पुत्र उत्पन्न हुये थे ग्रन्थ विस्तारके भयसे उन सबका यहां उपाख्यान नहीं किया जाता है।

एक दिन मेघेश्वर जयकुमार जो कि भरत चक्रवर्तीका सेनापति था उसने संसारसे विरक्त होकर जिन दीक्षा ले ली और तपकी विशुद्धिसे मनःपर्यय ज्ञान प्राप्त करके जिनेन्द्र वृषभदेवका गणधर बन गया। केवल ज्ञानसे

शोभायमान त्रिभुवनपति वृषभ जिनेन्द्र धर्म क्षेत्रोंमें धर्मका बीज बोकर और उपदेशामृतकी वृष्टिसे उसे सींचकर पौष मासके पूर्णमासीके दिन चिरपरिचित कैलाश पर्वतपर पहुंचे। वहां उन्होंने योगनिरोध किया, समवसरण में बैठना छोड़ दिया, उपदेश देना बन्द कर दिया। सिर्फ मेरु की तरह अचल होकर आत्म ध्यान में लीन हो गये। जिस दिन वृषभदेव ने योग निरोध किया था उसी दिन भरत ने स्वप्न में लोक के अन्त तक लम्बायमान मन्दराचल देखा युवराज ने, भवरोग नष्ट करने के बाद महौषधि को स्वर्ग जाने के लिए उद्यत देखा. गृहपतिने सकल नर समूह को मनवाञ्छित फल देकर स्वर्ग जाने के लिये तैयार हुये कल्पवृक्ष को देखा, प्रधान मन्त्री ने याचकों के लिये अनेक रत्न देकर आगे जाते हुए रत्नद्वीपको देखा और सुभद्रा देवीने महादेवी यशस्वती और सुनन्दाके साथ शोक करती हुई इन्द्राणीको देखा। जब भरतने पुरोहितसे स्वप्नोंका फल पूछा तब उसने कहा 'ये सब स्वप्न देवाधि देव वृषभनाथके निर्वाण प्रस्थानको बतला रहे हैं' इतनेमें ही आज्ञाकारी 'आनन्द' ने आकर भरतसे भगवान्के योग निरोधका सब समाचार कह सुनाया। चक्रवर्ती भरत उसी समय समस्त परिवारके साथ कैलाश गिरि पर पहुंचे और वहां चौदह दिन तक त्रिलोकी नाथ की पूजा करते रहे।

त्रिलोकीनाथ धीरे धीरे अपने मन को बाह्यजगत से हटाकर अन्तरात्मा में लगाते जाते थे। उस समय में कैलाश के शिखर पर पूर्व दिशा की ओर पल्यंकासन से बैठे हुए थे। उनके शरीर में एक रोमाञ्च भी हिलता हुआ नजर नहीं आता था। सब देव विद्याधर मनुष्य वगैरह हाथ जोड़े हुये चुपचाप वहां बैठे थे। वह दृश्य कितना शान्ति मय न होगा? योग निरोध किये हुये जब तेरह दिन समाप्त हो गये और माघ कृष्णा चतुर्दशीका मञ्जुल प्रभात आया, प्राची दिशामें लालिमा फैल गई तब उन्होंने शुक्ल ध्यान रूप खंगके प्रथम प्रहारसे बहत्तर कर्म शत्रुओंको धराशायी बना दिया। अब आप तेरहवें गुणस्थानसे चौदहवें गुण स्थानमें पहुंच गये। वहां पहुंचकर वे अयोग केवली कहलाने लगे। उस समय उनके न वचन योग था, न काय योग था न मनो योग था। उनके इस अन्त परिवर्तनका बाह्य लोगोंको क्या लगता? वे तो उन्हें

पूर्वकी भांति ही ध्यानारूढ़ देखते रहे। चौदहवें गुणस्थानमें पहुंचे हुए उन्हें बहुत ही थोड़ा (अ इ उ ऋ लृ इन पांच लघु अक्षरोंके उच्चारणमें जितना समय लगता है उतना) समय हुआ था कि उन्होंने शुक्ल ध्यान रूपी तीक्ष्ण तलवार के दूसरे प्रहारसे बाकी बचे हुये तेरह कर्म शत्रुओंको और भी धराशायी बना दिया। अब आप सर्वदाके लिये सर्वथा स्वतन्त्र हो गये। उनकी आतमा तत्क्षणमें लोक शिखर पर पहुंच गई और शरीर देखते देखते विलीन हो गया। सिर्फ नख और केश बाकी बचे थे। उसी समय जयध्वनि करते हुए आकाशसे समस्त देव आये। उन्होंने मायासे भगवान्‌का दूसरा शरीर निर्माण कर उसे चन्दन, कपूर, लवंग घृत आदिसे बने हुए कुण्डमें विराजमान किया, फिर अग्निकुमार देवने अपने मुकुटके स्पर्शसे उसमें अग्नि ज्वाला प्रज्वलित की। उसी समय कुछ गणधर और सामान्य केवली भी मोक्ष पधारे थे सो देवोंने भगवत्कुण्ड से दक्षिणकी ओर गणधर कुण्ड और केवली कुण्ड बनाकर उनमें उनका अग्नि संस्कार किया था।

आज पवित्र आत्माएं संसार बन्धनसे मुक्त हो गईं यह सुन कर किस मुमुक्षु प्राणीको अनन्त आनन्द न हुआ होगा? अग्नि शान्त होने पर समस्त देवोंने तीनों कुण्डोंसे भस्म निकाल कर अपने ललाट कण्ठ भुज शिखर और हृदयमें लगा ली। उस समय समस्त देव आनन्दसे उन्मत्त हो रहे थे। उन्होंने गा बजाकर मधुर संगीतमें मुक्त आत्माओं की स्तुति की, इन्द्रने आनन्दसे 'आनन्द' नाटक किया और सुर गुरु बृहस्पतिने संसारका स्वरूप बतलाया। इस तरह भगवानका निर्वाण महोत्सव मनाकर देव लोग अपनी अपनी जगह पर चले गये। पिताके वियोगसे भरतको दुःखी देखकर वृषभसेन गणधरने उन्हें अपने उपदेशामृतसे शान्त किया जिससे भरतजी शोक रहित हो गणधर महाराजको नमस्कार कर अयोध्यापुरी लौट आये।

नाभिराज, मरुदेवी, यशस्वती, सुनन्दा ब्राह्मी सुन्दरी आदिके जीव अपनी अपनी तपस्याके अनुसार स्वर्गमें देव हुए। पिताके निर्वाणके बाद चक्रवर्ती भरत कुछ समय तक राज्य शासन करते तो अवश्य रहे, पर भीतरसे बिलकुल उदास रहते थे। भगवान वृषभदेवकी निर्वाण भूमि होनेके कारण

कैलाश गिरि उस दिनसे सिद्ध क्षेत्र नामसे प्रसिद्ध हो गया। भरतने वहां पर चौबीस तीर्थकरोंके सुन्दर मन्दिर बनवाकर उनमें मणिमयी प्रतिमाएं विराजमान करायी थीं।

एक दिन वे दर्पणमें अपना मुंह देख रहे थे कि उनकी दृष्टि सफेद बालों पर पड़ी। दृष्टि पड़ते ही उनके हृदयमें वैराग्य सागर लहरा पड़ा। उन्होंने तप को ही सच्चे कल्याणका मार्ग समझकर अर्ककीर्तिके लिये राज्य दे दिया और स्वयं गणीन्द्र वृषभसेनके पास जाकर दीक्षा ले ली। भरतका हृदय इतना अधिक निर्मल था कि उन्हें दीक्षा लेनेके कुछ समय बाद ही केवल ज्ञान प्राप्त हो गया। केवली भरतने भी जगह जगह घूमकर धर्मका प्रचार किया और अन्तमें कर्म शत्रुओंको नष्टकर आत्म स्वातन्त्र्य मोक्ष प्राप्त किया। वृषभसेन अनन्त विजय, अनन्तवीर्य, अच्युत, वीर, वरवीर, श्रेयांस, जयकुमार आदि गणधरोंने भी काल क्रमसे मोक्ष लाभ किया। इस तरह प्रथम तीर्थंकर भगवान वृषभनाथका पवित्र चरित्र पूर्ण हुआ। इनके बैलका चिन्ह था।





भगवान अजितनाथ

स ब्रह्मनिष्ठः सममित्र शत्रु
र्विद्या विनिर्वान्त कषाय दोषः।
लब्धात्म लक्ष्मी रजितोऽजितात्मा
जिनः श्रियं मे भगवान विधत्ताम् ॥ —समन्तभद्र

वे आत्मस्वरूपमें लीन, शत्रु और मित्रोंको समान रूपसे देखने वाले, सम्यग्ज्ञानसे कषाय रूपी शत्रुओंको हटाने वाले, आत्मीय विभूतिको प्राप्त हुए और अजित है आत्मा जिनकी ऐसे भगवान् अजित जिनेन्द्र मुझे कैवल्य लक्ष्मीसे युक्त करें।

[१]

पूर्वभव परिचय

इसी जम्बू द्वीपके पूर्व विदेह क्षेत्रमें सीता नदीके दक्षिण किनारेपर एक वत्स नामका देश है। उसमें धनधान्यसे सम्पन्न एक सुसीमा नगर है। वहाँ किसी समय विमल वाहन नामका राजा राज्य करता था। राजा विमल वाहन समस्त गुणोंसे विभूषित था। वह उत्साह, मन्त्र और प्रभाव इन तीन शक्तियोंसे हमेशा न्याय पूर्वक प्रजाका पालन करता था। राज्य कार्य करते हुए भी वह कभी आत्म-धर्म-संयम, सामयिक वगैरहको नहीं भूलता था। वह बहुत ही मन्द कषायी था।

एक दिन राजा विमलको कुछ कारण पाकर वैराग उत्पन्न हो गया। विरक्त होकर वह सोचने लगा—संसारके भीतर कोई भी पदार्थ स्थिर नहीं है। यह मेरी आत्मा भी एक दिन इस शरीरको छोड़कर चली जावेगी, क्योंकि आत्मा और शरीरका सम्बन्ध तभीतक रहता है जबतक कि आयु शेष रहती है। यह आयु भी धीरे धीरे घटती जा रही है इसलिए आयु पूर्ण होने के पहले ही आत्म कल्याणकी ओर प्रवृत्ति करनी चाहिये।

इस प्रकार विचारकर वह वनमें गया और वहां किन्हीं दिगम्बर यतीके पास दीक्षित हो गया। उसके साथ और भी बहुतसे राजा दीक्षित हुए थे। गुरुके चरणोंके समीप रहकर उसने खूब विद्याध्ययन किया जिसे उसे ग्यारह अंगका ज्ञान हो गया था। उसी समय उसने दर्शन विशुद्धि आदि सोलह भावनाओंका चिन्तवन भी किया था जिससे उनके तीर्थंकर नामक महापुण्य प्रकृतिका बन्ध हो गया था।

विमल वाहन आयुके अन्तमें संन्यास पूर्वक मरकर विजय विमानमें अहमिन्द्र हुआ। वहां उसकी आयु तेतीस सागरकी थी। उसका जैसा शरीर शुक्ल था वैसा हृदय भी शुक्ल था। उसे वहां संकल्प मात्रसे ही सब पदार्थ प्राप्त हो जाते थे। पहलेकी वासनासे वहां भी उसका चित्त विषयोंसे उदासीन रहता था। वह वहां विषयानन्दको छोड़कर आत्मानन्दमें ही लीन रहता था। तेतीस हजार वर्ष बीत जानेपर उसे एक बार आहारकी इच्छा होती थी और तेतीस पक्ष बाद एक बार श्वासोच्छ्वास हुआ करता था। वहां उसके शरीरकी ऊंचाई एक हाथकी थी। अहमिन्द्र विमल वाहनको विजय विमानमें पहुंचते ही अवधि ज्ञान हो गया था जिससे वह त्रस नाड़ीके भीतरके परोक्ष पदार्थोंको प्रत्यक्षकी तरह स्पष्ट जान लेता था। यही अहमिन्द्र आगे चलकर भगवान् अजितनाथ होंगे।

[२]

वर्तमान परिचय

इसी भारत वसुन्धरापर अत्यन्त शोभायमान एक साकेतपुरी है [अयोध्या पुरी है।] उसमें किसी समय इक्ष्वाकु वंशीय काश्यपगोत्री राजा जितशत्रु राज्य करते थे। उनकी महारानीका नाम विजयसेना था। ऊपर जिस अहमिन्द्रका कथन कर आये हैं उसकी आयु जब वहांपर छः माहकी बाकी रह गई तब यहां राजा जितशत्रुके घरपर प्रतिदिन तीन-तीन बार साढ़े तीन करोड़ रत्नोंकी वर्षा होने लगी। वे रत्न इन्द्रकी आज्ञा पाकर कुवेर बरसाता था। यह अतिशय देखकर जितशत्रु बहुत ही आनन्दित होते थे। इसके बाद जेठ महीनेकी अमा-

वसके दिन रात्रिके पिछले भागमें जबकि रोहिणी नक्षत्रका उदय था, ब्रह्म मुहूर्तके कुछ समय पहले महारानी विजय सेनाने ऐरावत आदि सोलह स्वप्न देखे और उनके बाद अपने मुंहमें एक मत्त हस्तीको प्रवेश करते हुए देखा।

सवेरा होते ही महारानीने स्वप्नोंका फल जितशत्रुसे पूछा सो उन्होंने देशावधि रूप लोचनसे देखकर कहा कि देवी! तुम्हारे कोई तीर्थंकर पुत्र होगा उसीके पुण्य बलके कारण छह माह पहलेसे ये प्रतिदिन रत्न बरस रहे हैं और आज आपने ये सोलह स्वप्न देखे हैं। स्वप्नोंका फल सुनकर विजयसेना आनन्दसे फूली न समाती थी। जिस समय इसने स्वप्नमें मुंहमें प्रवेश करते हुए गन्ध हस्तीको देखा था उसी समय अहमिन्द्र विमल वाहनका जीव विजय विमानसे चयकर उसके गर्भमें अवतीर्ण हुआ। उस दिन देवोंने आकर साकेत पुरीमें खूब उत्सव किया था।

धीरे-धीरे गर्भ पुष्ट होता गया, महाराज जितशत्रुके घर वह रत्नोंकी धारा गर्भके दिनोंमें भी पहलेकी तरह ही वर्षती रहती थी। भावीपुत्रके अनुपम अतिशयका ख्यालकर महाराजको बहुत आनन्द होता था। जब गर्भका समय व्यतीत हो गया तब माघ शुक्ल दशमीके दिन महारानी विजयसेनानें पुत्र रत्नका प्रसव किया। वह पुत्र जन्मसे ही मति, श्रुत और अवधि इन तीन ज्ञानोंसे शोभायमान था। उसकी उत्पत्तिके समय अनेक शुभ शकुन हुए थे। उसी समय देवोंने सुमेरु पर्वतपर ले जाकर उसका जन्माभिषेक किया और और अजित नाम रखा। भगवान अजितनाथ धीरे-धीरे बढ़ने लगे। वे अपनी बाल सुलभ चेष्टाओंसे माता पिता तथा बन्धु वर्ग आदिका मन प्रमुदित करते थे। आपसके खेल-कूदमें भी जब इनके भाई इनसे पराजित होते जाते थे तब वे इनका अजित नाम सार्थक समझने लगते थे।

भगवान् आदिनाथको मुक्त हुए पचास लाख करोड़ सागरबीत जानेपर इनका जन्म हुआ था। उक्त अन्तरालमें लोगोंके हृदयमें धर्मके प्रति जो कुछ शिथिलता सी हो गई थी। इन्होंने उसे दूरकर फिरसे धर्मका प्रद्योत किया था। इनके शरीरका रंग तपे हुए सुवर्णकी नाई था। ये बहुत ही वीर और क्रीड़ा चतुर पुरुष थे। अनेक तरहकी क्रीड़ा करते हुए जब इनके अठारह लाख

पूर्व वीत गये तब इन्होंने युवावस्थामें पदार्पण किया। उस समय उनके शरीर की शोभा बड़ी ही विचित्र हो गई थी। महाराज जित शत्रुने अनेक सुन्दरी कन्याओंके साथ उनका विवाह कर दिया और किसी शुभ मुहूर्तमें उन्हें राज्य देकर आप धर्म सेवन करते हुए सद्गतिको प्राप्त हुए।

भगवान् अजितनाथने राज्य पाकर प्रजाका इस तरह शासन किया कि उनके गुणोंसे मुग्ध होकर वह महराज जित शत्रुका स्मरण भी भूल गई। इन्होंने समयोपयोगी अनेक सुधार करते हुए त्रेपन लाख पूर्वतक राज्य लक्ष्मी का भोग किया अर्थात राज्य किया।

एक दिन भगवान् अजितनाथ महलकी छतपर बैठे हुए थे कि उन्होंने अचानक चमकती हुई विजलीको नष्ट होते देखा। उसे देखकर उनका हृदय विषयोंसे विरक्त हो गया। वे सोचने लगे कि "संसारके हर एक पदार्थ इसी विजलीकी तरह क्षण भंगुर है। मेरा यह सुन्दर शरीर और यह मनुष्य पर्याय भी एक दिन इसी तरह नष्ट हो जावेगी। जिस लिये मेरा जन्म हुआ था उसके लिये तो मैंने अभी तक कुछ भी नहीं किया। खेद है कि मैंने सामान्य अज्ञ मनुष्योंकी तरह अपनी आयुका बहुभाग व्यर्थ ही खो दिया। अब आजसे मैं सर्वथा विरक्त होकर दिगम्बर मुद्राको धारण कर वनमें रहूंगा। क्योंकि इन रङ्ग विरंगे महलोंमें रहनेसे चित्तको शान्ति नहीं मिल सकती।' इधर इनके चित्तमें ऐसा विचार हो रहा था उधर लौकान्तिक देवोंके आसन कंपने लगे थे। आसन कंपनेसे उन्हें निश्चय हो गया था कि 'भगवान् अजितनाथका चित्त वैराग्यकी ओर बढ़ रहा है' निश्चयानुसार वे शीघ्र ही इनके पास आये और तरह तरहके सुभाषितोंसे इनकी वैराग्यधाराको अत्यधिक प्रवर्द्धित कर अपने अपने स्थानपर चले गये। उसी समय तपःकल्याणका उत्सव मनानेके लिये वहां समस्त देव आ उपस्थित हुए। सबसे पहले, भगवान् ने अभिषेक पूर्वक 'अजितसेन' नामके पुत्रके लिये राज्यका भार सौंपा और फिर अनाकुल हो वनमें जानेके लिये तैयार हो गये। देवोंने उनका भी तीर्थजलसे अभिषेक किया और तरह तरहके मनोहर आभूषण ... अनन्तर, पर उनकी इस राग वर्द्धक क्रियामें भगवान्को कुछ भी आनन्द

मिला। वे 'सुप्रभा' नामक पालकीपर सवार हो गये। पालकीको मनुष्य, विद्याधर और देवलोग क्रम क्रमसे अयोध्याके सहेतुक वनमें ले गये। वहां वे सप्तपर्ण वृक्षके नीचे एक सुन्दर शिलापर पालकीसे उतरे। जिस शिलापर वे उतरे थे उसपर देवांगनाओंने रत्नोंके चूर्णसे कई तरहके चौक पूरे थे। सप्तपर्ण वृक्षके नीचे विराजमान द्वितीय जिनेन्द्र अजितनाथने पहले सबकी ओर विरक्त दृष्टिसे देखकर दीक्षित होनेके लिये सम्मति ली। फिर पूर्वकी ओर मुंहकर "ओ नमः सिद्धेभ्यः" कहते हुए वस्त्राभूषण उतार कर फेंक दिये और पञ्च मुष्ठियोंसे केश उखाड़ डाले। इन्द्रने केशोंको उठा कर रत्नोंके पिटारेमें रख लिया और उत्सव समाप्त होनेके बाद क्षीर सागरमें क्षेप आया। दीक्षा लेते समय उन्होंने षष्ठोपवास धारण किया था। जिस दिन भगवान् अजितनाथने दीक्षा धारण की थी उस दिन माघ मासके शुक्ल पक्षकी नवमी थी और रोहिणी नक्षत्रका उदय था। दीक्षा सायंकालके समय ली थी। उनके साथमें एक हजार राजाओंने दीक्षा धारण की थी। उस समय भगवान् अजितकी विशुद्धता इतनी अधिक बढ़ गई थी कि उन्हें दीक्षा लेते समय ही मनःपर्यय ज्ञान प्राप्त हो गया था।

जब प्रथमयोग समाप्त हुआ तब वे आहारके लिये अयोध्यापुरीमें आये वहां ब्रह्मानामक श्रेष्ठीने उन्हें उत्तम आहार दिया जिससे उसके घरपर देवोंने पञ्चाश्चर्य प्रकट किये। अजितनाथजी आहार लेकर चुपचाप वनको चले गये और वहां आत्म ध्यानमें लीन हो गये। योग पूरा होनेपर वे आहारके लिये नगरोंमें जाते और आहार लेकर पुनः वनमें लौट आते थे। इस तरह बारह वर्षतक उन्होंने कठिन तपस्याएं की जिनके फलस्वरूप उन्हें पौषमासके शुक्ल पक्षकी एकादशीके दिन सायंकालके समय रोहिणी नक्षत्रके उदयमें केवल ज्ञान प्राप्त हो गया। अब भगवान् अजित अपने दिव्य ज्ञान-केवल ज्ञानसे तीनों लोकोंके सब चराचर पदार्थोंको एक साथ जानने लगे। देवोंने आकर ज्ञान कल्याणक उत्सव मनाया। इन्द्रकी आज्ञा पाकर धनपति कुबेरने विशाल समवसरणकी रचना की। उसमें गन्धकुटीके मध्य भागमें अजित भगवान् विराजमान हुए। जब वह सभा देव मनुष्य तिर्यंच आदिसे खचाखच भर गई

तब उन्होंने अपनी दिव्य ध्वनिके द्वारा सबको धर्मोपदेश दिया, जिससे प्रभावित होकर लोग आत्म धर्ममें पुनः दृढ़ हो गये। अजित केवलीने देश विदेश में घूमकर धर्मका खूब प्रचार किया था।

उनके सिंहसेन आदि नब्बे गणधर थे, तीन हजार सात सौ पचास पूर्वधारी, इक्कीस हजार छह सौ शिक्षक, नौ हजार चार सौ अवधि ज्ञानी, बीस हजार केवलज्ञानी, बीस हजार चार सौ विक्रिया ऋद्धिवाले, बारह हजार चार सौ पचास मनः पर्यय ज्ञानी और बारह हजार चार सौ अनुत्तर वादी थे। इस तरह सब मिलाकर एक लाख तपस्वी थे। प्रकुब्जा आदि तीन लाख बीस हजार आर्यिकाएं तीन लाख श्रावक, पांच लाख श्राविकाएं और असंख्य देव देवियां थीं और संख्यात तिर्यंच थे।

समवसरण भूमिमें वे हमेशा आठ प्राति हार्योंसे युक्त रहते थे। अन्तमें जब उनकी आयु एक माहकी शेष रह गयी तब वे श्रीसम्मेदशिखर पर पहुंचे और वहां एक माहका योग धारण कर मौन पूर्वक खड़े हो गये। उस समय उन्होंने प्रति समय शुक्ल ध्यानके प्रतापसे कर्मोंकी असंख्यात गुणी निर्जरा की, दण्ड, प्रतर आदि समुद्घातसे अन्य कर्मोंकी स्थिति बराबर की और फिर अन्तिम व्युपरत क्रिया निवर्ति शुक्ल ध्यानसे समस्त अघातिया कर्मोंका क्षय कर चैत्र शुक्ल पंचमीके दिन रोहिणी नक्षत्रके उदयमें प्रातःकालके समय मुक्ति धामको प्राप्त किया। वे हमेशाके लिये सुखी स्वतंत्र हो गये।

भगवान अजितनाथकी कुल आयु ७२ बहत्तर लाख पूर्वकी थी और शरीर की ऊंचाई चार सौ पचास धनुषकी थी। इनके समयमें सगर नामका द्वितीय चक्रवर्ती हुआ था। उसने भी आदि चक्रधर भरतकी तरह भरतक्षेत्रके छह खण्डोंका विजय किया था। अप्रासंगिक होनेसे यहां उसका विशेष चरित्र नहीं लिखा गया है। भगवान अजितनाथके हाथीके चिन्ह था।



भगवान शंभवनाथ

त्वं शंभवः संभवतर्षरोगैः
सतप्यमानस्य जनस्य लोके ।
आसी रिहा कास्मिक एव वैद्यो
वैद्यो यथा नाथ ! रुजा प्रशान्त्यै ॥ —स्वामि समन्तभद्र

हे नाथ ! जिस तरह रोगोंकी शान्तिके लिये 'कोई वैद्य होता है उसी तरह आप शंभवनाथ भी उत्पन्न हुए तृष्णा रोगसे दुखी होने वाले मनुष्यको रोग शान्तिके लिये अकस्मात प्राप्त हुए वैद्य थे ।

[१]

पूर्वभव परिचय

जम्बू द्वीपके पूर्व विदेह क्षेत्रमें सीता नदीके उत्तरतटपर एक कच्छ नामका देश है उसमें एक क्षेमपुर नामका नगर है। क्षेमपुरका जैसा नाम था उसमें वैसे ही गुण थे अर्थात उसमें हमेशा क्षेम-मंगलोंका ही निवास रहता था। वहांके राजाका नाम विमल वाहन था। विमल वाहनने अपने बाहुबलसे समस्त विरोधी राजाओंको वशमें कर लिया था। शरद ऋतुके इन्दुकी तरह उसकी निर्मल कीर्ति सब ओर फैली हुई थी। वह जो भी कार्य करता था वह मन्त्रियों की सलाहसे ही करता था इसलिये उसके समस्त कार्य सुदृढ़ हुआ करते थे।

एक दिन राजा विमल वाहन किसी कारण वश संसारसे विरक्त हो गये जिससे उसे पांचों इन्द्रियोंके विषय-भोग काले भुजङ्गोंकी तरह दुखदायी मालूम होने लगे। वह सोचने लगा कि 'यमराज किसी भी छोटे बड़ेका लिहाज् नहीं करता। अच्छेसे अच्छे और दीनसे दीन मनुष्य इसकी कराल दंष्ट्रातलके नीचे दले जाते हैं। जब ऐसा है तब क्या मुझे छोड़ देगा? इसलिये जबतक मृत्यु निकट नहीं आती तबतक तपस्या आदिसे आत्म हितकी ओर प्रवृत्ति करनी चाहिये। ऐसा विचारकर वह विमलकीर्ति नामक औरस-पुत्रके लिये

राज्य देकर स्वयंप्रभ जिनेन्द्रके पास दीक्षित हो गया। उनके समीपमें रह-कर उसने कठिन कठिन तपस्याओंसे आत्म शुद्धि की और निरन्तर शास्त्रोंका अध्ययन करते करते ग्यारह अङ्ग तकका ज्ञान प्राप्त कर लिया। मुनिराज विमल वाहन यही सोचा करते थे कि इन दुखी प्राणियोंका संसार सागरसे कैसे उद्धार हो सकेगा? यदि मैं इनके हित साधनमें कृतकार्य हो सका तो अपनेको धन्य समझूंगा। इसी समय उन्होंने दर्शन विशुद्धि आदि सोलह भावनाओंका चिन्तवन किया जिससे उन्हें तीर्थंकर नामक पुण्य प्रकृतिका बन्ध हो गया अन्तमें समाधि पूर्वक शरीर त्यागकर पहले ग्रैवेयकके सुदर्शन नामक विमानमें अहमिन्द्र हुए। वहां उनकी आयु तेईस सागर प्रमाण थी, शरीरकी ऊंचाई साठ अंगुल थी, और रंग धवल था। वे वहां तेईस पक्षमें श्वांस लेते थे और तेईस हजार वर्ष बाद मानसिक आहार करते थे। वे स्त्री संसर्गसे सदा रहित थे। उनके जन्मसे ही अवधि ज्ञान था, और शरीरमें अनेक तरहकी ऋद्धियां थीं। इस तरह वे वहां आनन्दसे समय बिताने लगे। यही अहमिन्द्र आगे चलकर भगवान शंभवनाथ होंगे।

(२)

वर्तमान परिचय

जम्बू द्वीपके भरत क्षेत्रमें एक श्रावस्ती नामकी नगरी है। उस नगरीकी रचना बहुत ही मनोहर थी, वहां गगनचुम्बी भगवान हुए थे, जिनपर अनेक रङ्गोंकी पताकाएं फहरा रही थीं। जगह जगहपर अनेक सुन्दर वापिकाएं थीं। उन वापिकाओंके तटोंपर मराल वाल क्रीडा किया करते थे। उसके चारों ओर अगाध जलसे भरी हुई परिखा थी और उसके बाद ऊंची शिखरोंसे मेघोंको छूने वाला प्राकार कोट था। जिस समयकी यह कथा है उस समय वहाँ दृढ़-राज्य नामके राजा राज्य करते थे। वे अत्यन्त प्रतापी, धर्मात्मा, सौम्य और साधु स्वभाव वाले व्यक्ति थे। उनका जन्म इक्ष्वाकु वंश और काश्यप गोत्रमें हुआ था। उनकी महाराणीका नाम सुषेणा था। उस समय वहां महारानी सुषेणाके समान सुन्दरी स्त्री दूसरी नहीं थी। वह अपने रूपसे देवाङ्गनाओंको

भी तिरस्कृत करती थी तब नर देवियोंकी बात ही क्या थी? दोनों दम्पति सुख पूर्वक अपना समय बिताते थे उन्हें किसी प्रकारकी चिन्ता नहीं थी।

ऊपर जिस अहमिन्द्रका कथन कर आये हैं उसकी वहांकी आयु जब सिर्फ छह माहकी बाकी रह गई तबसे राजा दृढ़ राजाके घरपर प्रतिदिन असंख्य रत्नोंकी वर्षा होने लगी। रत्न वर्षाके सिवाय और भी अनेक शुभ शकुन प्रकट होने लगे थे जिनसे राज दम्पति आनन्दसे फूले न समाते थे। एक दिन रात्रिके पिछले पहरमें महारानी सुषेणाने सोते समय ऐरावत हाथीको आदि लेकर सोलह स्वप्न देखे और स्वप्न देखनेके बाद मुंहमें प्रवेश करते हुए एक गन्ध सिन्दुर-मत्त हाथीको देखा। सबेरा होते ही उसने पति देवसे उसका फल पूछा राजा दृढ़ राज्यने अवधि ज्ञानसे विचारकर कहा कि आज तुम्हारे गर्भमें तीर्थंकर पुत्रने अवतार लिया है। पृथिवी तलमें तीर्थकरका जैसा पुण्य किसीका नहीं होता है। देखो न? वह तुम्हारे गर्भमें आया भी नहीं था कि छह माह पहलेसे प्रतिदिन असंख्य रत्न राशि बरस रही है। कुबेरने इस नगरीको कितना सुन्दर बना दिया है। यहांकी प्रत्येक वस्तु कितनी मोहक हो गई है कि उसे देखते जी नहीं अघाता। यहां राजा, रानीको स्वप्नोंका फल बतला रहे थे वहां भावि पुत्रके पुण्य प्रतापसे देवोंकी अचल आसन भी हिल गये जिससे समस्त देव तीर्थकरका गर्भावतार समझकर उत्सव मनानेके लिये श्रावस्ती आये और क्रम-क्रमसे राज मन्दिरमें पहुंचकर उन्होंने राजा रानीकी खूब स्तुति की तथा उन्हें स्वर्गीय वस्त्राभूषणोंसे खूब सत्कृत किया। गर्भावतारका उत्सव मनाकर देव अपने अपने स्थानोंपर वापिस चले गये और कुछ देवियोंको जिन माताकी सेवाके लिये वहींपर छोड़ गये। देवियोंने गर्भ शुद्धिको आदि लेकर अनेक तरहसे महारानी सुषेणाकी शुश्रुसा करनी प्रारम्भ कर दी। राज दम्पति भावि पुत्रके उत्कर्षका ख्याल कर मन ही मन हर्षित होते थे। जिस दिन अहमिन्द्र (भगवान संभवनाथके जीव) ने सुषेणाके गर्भमें अवतार लिया था उस दिन फाल्गुन कृष्ण अष्टमीका दिन था, मृगशिर नक्षत्रका उदय था और प्राची दिशामें बाल सूर्य कुमकुम रङ्ग बरषा रहा था। देव कुमारियोंकी शुश्रूषा और विनोद भरी वार्ताओंसे जब रानीके गर्भके दिन सुखसे बीत गये उन्हें गर्भ

सम्बन्धी कोई कष्ट नहीं हुआ तब कार्तिक शुक्ला पौर्णमासीके दिन मृगगिर नक्षत्रमें पुत्र रत्न उत्पन्न हुआ। पुत्र उत्पन्न होते ही आकाशसे असंख्य देव सेनाएं श्रावस्ती नगरीके महाराज दृढ़राज्यके घर आई। इन्द्रने इन्द्राणीको भेजकर प्रसूति गृहसे जिन बालकको मंगवाया। पुत्र रत्नकी स्वाभाविक सुन्दरता देखकर इन्द्र आनन्दसे फूला न समाता था। आई हुई देव सेनाओंने पहलेके दो तीर्थंकरोंकी तरह मेरु पर्वतपर ले जाकर इनका भी जन्माभिषेक किया। और वहांसे वापिस आकर पुत्रको माता पिताके लिये सौंप दिया। बालकको देखने मात्रसे ही शम् अर्थात सुख शान्ति प्राप्त होती थी इसलिये इन्द्रने उसका शंभवनाथ नाम रक्खा था। शंभवनाथ अपने दिव्य गुणोंसे संसारमें भगवान कहलाने लगे। देव और देवेन्द्र जन्म समयके समस्त उत्सव मनाकर अपने अपने स्थानोंपर चले गये।

भगवान शंभवनाथ दोयजकी चन्द्रमाकी तरह धीरे-धीरे बढ़ने लगे। वे अपनी बालसुलभ अनर्गल लीलाओंसे माता, पिता, बन्धु, बान्धवोंको हमेशा हर्षित किया करते थे। उनके शरीरका रंग सुवर्णके समान पीला था। भगवान अजितनाथसे तीस करोड़ वर्ष बाद उनका जन्म हुआ था। इस अन्तरालके समय धर्मके विषयमें जो कुछ शिथिलता आ गई थी वह इनके उत्पन्न होते ही धीरे-धीरे विनष्ट हो गई।

इनकी पूर्ण आयु साठ लाख पूर्वकी थी और शरीरकी ऊंचाई चार सौ धनुष प्रमाण थी। जन्मसे पन्द्रह लाख पूर्व बीत जानेपर इन्हें राज्य विभूति प्राप्त हुई थी। इन्होंने राज्य पाकर अनेक सामयिक सुधार किये थे। समयकी प्रगति देखते हुए आपने राजनीतिको पहलेसे बहुत कुछ परिवर्तित और परिवर्धित किया था। पिता दृढ़राज्यने योग्य कुलीन कन्याओंके साथ इनका विवाह किया था इसलिये वे अनुरूप भार्याओंके साथ संसारिक सुख भोगते हुए चवालीस लाख पूर्व और चार पूर्वाङ्गतक राज्य करते रहे।

एक दिन वे महलकी छतपर बैठे हुए प्रकृतिकी सुन्दर शोभा देख रहे थे कि उनकी दृष्टि एक सफेद मेघपर पड़ी। क्षण एकमें हवाके वेगसे वह मेघ विलीन हो गया कहींका कहीं चला गया। उसी समय भगवान शंभवनाथके

चारित्र मोहनीयके बन्धन ढीले हो गये थे जिससे वे संसारके विषय सहसा विरक्त हो गये। वे सोचने लगे कि 'संसारकी सभी वस्तुएं इन्द्र खण्डकी नांई क्षणभङ्गुर हैं, एक दिन मेरा यह दिव्य शरीर भी नष्ट हो जाये मैं जिस स्त्री पुत्रोंके मोहमें उलझा हुआ आत्म हितकी ओर प्रवृत्त नहीं कर रहा हूँ वे एक भी मेरे साथ न जावेंगे। इस तरह भगवान शंभवनाथ उदासीन होकर वस्तुका स्वरूप विचार ही रहे थे कि इतनेमें लौकान्तिक देवोंने आकर उनके विचारोंका खूब समर्थन किया। बारह भावनाओंके द्वारा उनकी बैराग्य धाराको खूब बढ़ा दिया। अपना कार्य समाप्त कर लौकान्तिक देव ब्रह्म लोकको वापिस चले गये। इधर भगवान जिन पुत्रको राज्य देकर बनमें जाने के लिये तैयार हो गये। देव और देवेन्द्रोंने आकर इनके तपः कल्याणकका उत्सव मनाया। तदनन्तर वे सिद्धार्थ नामकी पालकीपर सवार होकर श्रावस्ती के समीपवर्ती सहेतुक बनमें गये। वहाँ उन्होंने माता पिता आदि इष्ट जनोंसे सम्मति लेकर मार्गशीर्ष शुक्ला पौर्णमासीके दिन शाल वृक्षके नीचे एक हजार राजाओंके साथ जिन दीक्षा ले ली, वस्त्राभूषण उतार फेंक दिये, पञ्च मुष्ठियोंसे केश उखाड़ डाले और उपवासकी प्रतिज्ञा ले पूर्वकी ओर मुंहकर ध्यान धारण कर लिया। उस समयका दृश्य बड़ा ही प्रभावक था। देखनेवाले प्रत्येक प्राणीके हृदयपर वैराग्यकी गहरी छाप लगती जाती थी। उन्हें जो दीक्षाके समय ही मनः पर्यय ज्ञान हो गया था वही उनकी आत्म विशुद्धि को प्रत्यक्ष करानेके लिये प्रबल प्रमाण था।

दूसरे दिन उन्होंने आहारके लिये श्रावस्ती नगरीमें प्रवेश किया। उन्हें देखते ही राजा सुरेन्द्र दत्तने पड़गाह कर बिधि पूर्वक आहार दिया। आहार दानसे प्रभावित होकर देवोंने सुरेन्द्रदत्तके घर पंचाश्चर्य प्रकट किये थे। भगवान शंभवनाथ आहार लेकर ईर्या समितिसे विहार करते हुए पुनः बनको वापिस चले गये और जब तक छद्मस्थ रहे तब तक मौन धारण कर तपस्या करते रहे। यद्यपि वे मौनी होकर ही उस समय सब जगह विहार करते थे तथापि उनकी सौम्य मूर्तिके देखने मात्रसे ही अनेक भव्य जीव प्रतिबुद्ध हो जाते थे। इस तरह चौदह वर्ष तक तपस्या करनेके बाद उन्हें कार्तिक कृष्ण

चतुर्दशीके दिन मृग-शिर नक्षत्रके उदयमें संध्याके समय केवल ज्ञान प्राप्त हो गया था भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी और कल्पवासी इन चारों प्रकारके देवोंने आकर उनके ज्ञान कल्याणका उत्सव किया। इन्द्रकी आज्ञासे कुवेरने समवसरणकी रचना की। जिसके मध्यमें देव सिंहासन पर अन्तरीक्ष विराजमान होकर उन्होंने अपनी सुललित दिव्य भाषामें सबको धर्मोपदेश दिया वस्तुका वास्तविक रूप समझाया, संसारका स्वरूप बतलाया, चारों गतियोंके दुःख प्रकट किये और उनसे छुटकारा पानेके उपाय बतलाए। उनके उपदेशसे प्रभावित होकर असंख्य नर नारियोंने व्रत-अनुष्ठान धारण किये थे। क्रम क्रमसे उन्होंने समस्त आर्यक्षेत्रोंमें विहार कर सार्व धर्म-जैन धर्म का प्रचार किया था।

उनके समवसरणमें चारुषेण आदि एक सौ पांच गणधर थे, दोहजार एक सौ पचास द्वादशांगके वेत्ता थे एक लाख उन्तीस हजार तीन सौ शिक्षक थे। नौ हजार छह सौ अवधि ज्ञानी थे, पन्द्रह हजार केवली थे, बारह हजार एक सौ पचास मनः पर्यय ज्ञानी थे, उन्नीस हजार आठ सौ विक्रिया ऋद्धिके धारी थे और बारह हजार वादी थे जिनसे भरा हुआ समवसरण बहुत ही भला मालूम होता था। धर्मार्या आदि तीन लाख बीस हजार आर्यिकाएं थीं, तीन लाख श्रावक, पांच लाख श्राविकाएं, असंख्य देव देवियां और संख्यात तिर्यञ्च उनके समवसरणकी शोभा बढ़ाती थीं। भगवान् शंभवनाथ अपने दिव्य उपदेशसे इन समस्त प्राणियोंको हितका मार्ग बतलाते थे।

अन्तमें जब आयुका एक महीना बाकी रह गया तब वे विहार बन्द कर सम्मेद शैलकी किसी शिखर पर जा विराजमान हुए और हजार मनुष्योंके साथ प्रतिमा योग धारण कर आत्म ध्यानमें लीन हो गये। अन्तमें शुक्ल ध्यानके प्रतापसे बाकी बचे हुए चार अघातिया कर्मोंका नाश कर चैत्र शुक्ला षष्ठीके दिन सायंकालके समय मृगशिर नक्षत्रके उदयमें सिद्धि सदन—मोक्ष को प्राप्त हुए देवोंने आकर उनका निर्वाण महोत्सव मनाया।



भगवान अभिनन्दननाथ

गुणाभिनन्दा दभि नन्दनो भवान
दयावधूं शान्ति सखी मशिश्रियत।
समाधि तन्त्रस्तदुपोपपत्तये
द्वयेन नैर्ग्रन्थ्य गुणेन चायुजत ॥ — स्वामि समन्तभद्र

"जिनेन्द्र ! सम्यग्दर्शन आदि गुणोंका अभिनन्दन करनेसे 'अभिनन्दन' कहलाने वाले आपने शान्ति-सखीसे युक्त दया रूपी स्त्रीका आश्रय किया था और फिर उसकी सत्कृतिके लिये ध्यानैकमान होते हुए आप द्विविध अन्तरङ्ग वहिरंग रूप निष्परिग्रहतासे युक्त हुए थे।'

[१]

पूर्वभव परिचय

जम्बू द्वीपके पूर्व विदेह क्षेत्रमें सीता नदीके दक्षिण तटपर एक मंगलावती नामका देश है। उसमें रत्नसंचय नामका एक महा मनोहर नगर है। उसमें किसी समय महाबल नामका राजा राज्य करता था। वह बहुत ही सम्पत्ति-शाली था। उसके राज्यमें सब प्रजा सुखी थी, चारों वर्णोंके मनुष्य अपने अपने कर्तव्योंका पालन करते थे। महाबल दरअसलमें महाबल ही था। उस-ने अपने बाहुबलसे समस्त विरोधी राजाओंके दांत खट्टे कर दिये थे। वह सन्धि विग्रह, यान, संस्थान, आसन और द्वैधीभाव इन छह गुणोंसे विभूषित था। उसके साम, दाम, दण्ड और भेद ये चार उपाय कभी निष्फल नहीं होते थे। वह उत्साह, मन्त्र और प्रभाव इन तीन शक्तियोंसे युक्त था, जिससे वह हरएक सिद्धियोंका पात्र बना हुआ था। कहनेका मतलब यह है कि उस समय वहां राजा महाबलकी बराबरी करने वाला कोई दूसरा राजा नहीं था। अपनी कान्तिसे देवांगनाओंको भी पराजित करने वाली अनेक नर देवियोंके साथ तरह तरहके सुख भोगते हुए महाबलका बहुतसा समय व्यतीत हो गया।

एक दिन कारण पाकर उसका चित्त विषय वासनाओंसे हट गया जिससे वह अपने धनपाल नामक पुत्रको राज्य देकर विमल वाहन गुरुके पास दीक्षित हो गया। अब मुनिराज महाबलके पास रञ्च मात्र भी परिग्रह नहीं रहा था। वे शरदी, गर्मी, वर्षा, क्षुधा, तृषा आदिके दुःख समता भावोंसे सहने लगे। संसार और शरीरके स्वरूपका विचार कर निरन्तर सवेग और वैराग्य गुणकी वृद्धि करने लगे। आचार्य विमल वाहनके पास रहकर उन्होंने ग्यारह अङ्गोंका अध्ययन किया तथा दर्शन विशुद्धि आदि सोलह भावनाओंका विशुद्ध हृदय-से चिन्तवन किया जिससे उन्हें तीर्थकर नामक महापुण्य प्रकृतिका बन्ध हो गया। आयुके अन्तमें वे समाधि पूर्वक शरीर छोड़कर विजय नामके पहले अनुत्तरमें महा ऋद्धिधारी अहमिन्द्र हुए। वहाँ उनकी तेतीस सागर प्रमाण आयु थी, एक हाथ बराबर सफेद शरीर था, वे तेतीस हजार वर्ष बाद मान-सिक आहार लेते और तेतीस पक्षमें एक बार श्वासोच्छास लेते थे। वहां वे इच्छा मात्रसे प्राप्त हुई उत्तम द्रव्योंसे जिनेन्द्र देवकी अर्चा करते और स्वेच्छा से मिले हुए देवोंके साथ तत्व चर्चा करके मन बहलाते थे। यही अहमिन्द्र आगे चल कर भगवान अभिनन्दननाथ होंगे।

[२]

वर्तमान परिचय

जम्बू द्वीपके भरतक्षेत्रमें अयोध्या नामकी नगरी है जो विश्ववन्धु तीर्थ-करोंके जन्मसे महापवित्र है। जिस समयकी यह वार्ता है उस समय वहां स्वयम्बर राजा राज्य करते हैं उनकी महारानीका नाम सिद्धार्था था। स्वयंवर महाराज वीर लक्ष्मीके स्वयंवर पति थे। वे बहुत ही विद्वान और पराक्रमी राजा थे। कठिनसे कठिन कार्योंको वे अपनी बुद्धि बलसे अनायास ही कर डालते थे, जिससे देखने वालोंको दांतों तले अंगुली दबानी पड़ती थी। राज दम्पति तरह तरहके सुख भोगते हुए दिन विताते थे।

ऊपर जिस अहमिन्द्रका कथन कर आये हैं उसकी आयु जब विजय विमानमें छह माहकी बाकी रह गई तबसे राजा स्वयंवरके घरके आँगनमें

प्रतिदिन रत्नोंकी बर्षा होने लगी। साथमें और भी अनेक शुभ शकुन प्रकट हुए जिन्हें देखकर भावी शुभकी प्रतीक्षा करते हुए राज दम्पती बहुत ही हर्षित होते थे। इसके अनन्तर महारानी सिद्धार्थाने वैशाख शुक्ल षष्टीके दिन पुनर्वसु नामक नक्षत्रमें रात्रिके पिछले पहरमें सुर कुंजर आदि सोलह स्वप्न देखे और अन्तमें अपने मुखमें एक श्वेत वर्ण वाले हाथीको प्रवेश करते हुए देखा। सवेरे स्वयम्बर महाराजने उनका फल कहा, प्रिये! आज तुम्हारे गर्भमें स्वर्गसे चय कर किसी पुण्यात्माने अवतार लिया है—नौ माह बाद तुम्हारे तीर्थंकर पुत्र होगा। जिसके बल, विद्या, बैभव, आदिके सामने देव देवेन्द्र अपना माथा धुनेंगे। पतिके मुंहसे भावी पुत्रका माहात्म्य सुनकर सिद्धार्थके हर्षका पारावार नहीं रहा। उस समय उसने अपने आपको समस्त स्त्रियोंमें सारभूत समझा था। गर्भमें स्थित तीर्थंकर बालकके पुण्य प्रतापसे देव कुमारियां आ आकर महाराणीकी शुश्रूआ करने लगीं और चतुर्णिकायके देवों ने आकर स्वर्गीय वस्त्रा भूषणोंसे खूब सत्कार किया, खूब उत्सव मनाया, खूब भक्ति प्रदर्शित की। धीरे धीरे जब गर्भके दिन पूर्ण हो गये तब रानी सिद्धार्थाने माघ शुक्ला द्वादशीके दिन आदित्य योग और पुनर्वसु नक्षत्रमें उत्तम पुत्र उत्पन्न किया। देवों ने मेरु पर्वत पर ले जाकर रमणीय सलिलसे उनका अभिषेक किया। इन्द्राणीने तरह तरहके आभूषण पहिनाये। फिर मेरु पर्वतसे वापिस आकर अयोध्यापुरीमें अनेक उत्सव मनाये। राजाने याचकों के लिये मन चाहा दान दिया। इन्द्रने राज-बन्धुओ की सलाह से बालकका अभिनन्दन नाम रक्खा। बालक अभिनन्दन अपनी बाल चेष्टाओं से सबके मनको आनन्दित करता था इसलिये उसका अभिनन्दन नाम सार्थक ही था। जन्म कल्याणका महोत्सव मनाकर इन्द्र वगैरह अपने अपने स्थानों पर वापिस चले गये। पर इन्द्रकी आज्ञास बहुतसे देव बालक अभिनन्दन कुमारके मनो विनोदके लिये वहीं पर रह गये। शंभवनाथके बाद दश लाख करोड़ सागर बीत चुकने पर भगवान अभिनन्दन नाथ हुए थे। उनकी आयु पचास लाख पूर्व की थी, शरीरकी ऊंचाई तीन सौ पचास धनुष की थी और रंग सुवर्णकी तरह पीला था, उनके शरीरमें सूर्यके समान तेज़ निकलता

था। वे मूर्तिधारी पुण्यके समान मालूम होते थे।

जब इनकी आयुके साढ़े बारह लाख वर्ष बीत गये तब महाराज स्वयंवरने इन्हें राज्य देकर दीक्षा धारण कर ली। अभिनन्दन स्वामीने भी राज्यसिंहासन पर विराजमान होकर साढ़े छत्तीस लाख पूर्व और आठ पूर्वांग तक राज्य किया।

एक दिन वे मकानकी छत पर बैठकर आकाशकी शोभा देख रहे थे। देखते देखते उनकी दृष्टि एक बादलोंके समूह पर पड़ी। उस समय वह बादलोंकी समूह आकाशके मध्य भागमें स्थित था। उसका आकार किसी मनोहर नगरके समान था। भगवान अनिमेष दृष्टिसे उसके सौन्दर्यको देख रहे थे। पर इतनेमें वायुके प्रबल वेगसे वह बादलोंका समूह नष्ट हो गया—कहींका कहीं चला गया। बस, इसी घटनासे उन्हें आत्मज्ञान प्रकट हो गया, जिससे उन्होंने राज्यकार्यसे मोह छोड़कर दीक्षा लेनेका दृढ़ विचार कर लिया। उसी समय लौकान्तिक देवोंने भी आकर उनके विचारोंका समर्थन किया, चारों निकायोंके देवोंने आकर दीक्षाकल्याणकका उत्सव किया। अभिनन्दन स्वामी राज्यका भार पुत्रके लिये सौंपकर देव निर्मित 'हस्त चित्रा' पालकी पर सवार हुए। देव उस पालकीको उठाकर उग्र नामक उद्यानमें ले गये। वहां उन्होंने माघ शुक्ला द्वादशीके दिन पुनर्वसु नक्षत्रके उदयमें शामके समय जगद्वन्द्य सिद्ध परमेष्ठीको नमस्कार कर दीक्षा धारण कर ली—बाह्य-आभ्यन्तर परिग्रहको छोड़ दिये और केश उखाड़ कर फेंक दिये। उनके साथमें और भी हजार राजाओंने दीक्षा धारण की थी। उन सबसे घिरे हुए भगवान अभिनन्दन बहुत ही शोभायमान होते थे। उन्होने दीक्षा लेते समय वेला अर्थात् दो दिनका उपवास धारण किया था।

जब तीसरा दिन आया तब वे मध्याहसे कुछ समय पहले आहार लेनेके लिये अयोध्यापुरीमें गये। उस समय वे आगेकी चार हाथ जमीन देखकर चलते थे, किसीसे कुछ नहीं कहते, उनकी आकृति सौम्य थी, दर्शनीय थी। वे उस समय ऐसे मालूम होते थे मानों 'चचाल चित्रं किलकाञ्चनाद्रि'—मेरु पर्वत ही चल रहा हो। महाराज इन्द्रदत्तने पड़गाह कर उन्हें विधिपूर्वक भोजन दिये जिससे उनके घर देवोंने पंचाश्चर्य प्रकट किये। वहांसे लौट कर

अभिनन्दन स्वामी बनमें जा विराजे और कठिन तपस्या करने लगे। इस तरह अठारह वर्ष तक छद्मस्थ अवस्थामें रहकर विहार किया।

एक दिन वेला-उपवास धारण कर वे शाल वृक्षके नीचे विराजमान थे। उसी समय उन्होंने शुक्ल ध्यानके अवलम्बनसे क्षपक श्रेणी मांढ क्रम क्रमसे आगे बढ़कर दशवें गुण स्थानके अन्तमें मोहनीय कर्मका सर्वथा क्षय कर दिया फिर बढ़ती हुई विशुद्धिसे बारहवें गुण स्थान में पहुंचे। वहां अन्त-र्मुहुर्त ठहर कर शुक्ल ध्यानके प्रतापसे अवशिष्ट तीन घातिया कर्मोंका नाश और किया जिससे उन्हें पौष शुक्ल चतुर्दशीके शामके समय पुनर्वसु नक्षत्रमें अनन्त चतुष्टय, अनन्त ज्ञान, दर्श, सुख, और वीर्य प्राप्त हो गये। उस समय सब इन्द्रोंने आकर उनकी पूजा की ज्ञान कल्याणका उत्सव किया। धनपतिने समवसरणकी रचना की जिसके मध्यमें सिंहासन पर अधर विराजमान होकर पूर्ण ज्ञानी भगवान् अभिनन्दननाथने दिव्य ध्वनिके द्वारा सबको हितका उप-देश दिया। जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध संवर, निर्जरा, और मोक्ष इन सात तत्वोंका विशद व्याख्यान किया। संसारके दुःखोंका वर्णन कर उससे छूटनेके उपाय बतलाये। उनके उपदेशसे प्रभावित होकर अनेक प्राणी धर्ममें दीक्षित हो गये थे। वे जो कुछ कहते थे वह विशुद्ध हृदयसे कहते थे इसलिये लोगोंके हृदयों पर उसका अच्छा असर पड़ता था। आर्यक्षेत्रमें जगह जगह घूम कर उन्होंने सार्व-धर्मका प्रचार किया और संसार सिन्धुमें पड़े हुए प्राणियोंको हस्तावलम्बन दिया।

उनके समवसरणमें वज्रनाभिको आदि लेकर १०३ एक सौ तीन गणधर थे, दो हजार पांच सौ द्वादशांगके पाठी थे, दो लाख तीस हजार पचास शिक्षक थे, नौ हजार आठ सौ अवधि ज्ञानी थे, सोलह हजार केवल ज्ञानी थे, ग्यारह हजार छह सौ मनःपर्यय ज्ञानके धारक थे, उन्नीस हजार विक्रिया ऋद्धिके धारण करने वाले थे, और ग्यारह हजार वाद-विवाद करने वाले थे, इस तरह सब मिलाकर तीन लाख मुनि-राज थे। इनके सिवाय मेरुषेणाको आदि लेकर तीन लाख तीस हजार छह सौ आर्यिकाएं थीं तीन लाख श्रावक थे, पांच लाख श्राविकाएं थी, असंख्यात देव देवियां थीं और थे संख्यात तिर्यञ्च।

अनेक जगह विहार करनेके बाद वे आयुके अन्तिम समयमें सम्मेद शिखर पर पहुंचे। वहांसे प्रतिमा योग धारण कर अचल हो बैठ गये। उस समय उनका दिव्य ध्वनि वगैरह वाह्य वैभव लुप्त हो गया था। वे हर एक तरहके आत्म ध्यानमें लीन हो गये थे। धीरे धीरे उन्होंने योगोंकी प्रवृत्तिको भी रोक लिया था जिससे उनके नवीन कर्मोंका आस्रव बिल्कुल बन्द हो गया और शुक्ल ध्यानके प्रतापसे सत्तामें स्थित अघाति चतुष्क की पचासी प्रकृतियां धीरे धीरे नष्ट हो गईं। जिससे वे वैसाख शुक्ल षष्ठीके दिन पुनर्वसु नक्षत्रमें प्रातःकालके समय मुक्ति-मन्दिरमें जा पधारे। देवोंने आकर उनके निर्वाण कल्याणक का महोत्सव किया। आचार्य गुणभद्र लिखते हैं कि जो पहले विदेहक्षेत्रके रत्नसंचय नगरमें महाबल नामके राजा हुए फिर विजय अनुत्तरमें अहमिन्द्र हुए और अन्तमें साकेत-पति अभिनन्दन नामक राजा हुए वे अभिनन्दन स्वामी तुम सबकी रक्षा करें।



भगवान सुमतिनाथ

रिपुनृप यम दण्डः पुण्डरीकिण्यधीशो-
हरिरिव रतिषेणो वैजयन्तेऽहमिन्द्रः।
सुमति रमित लक्ष्मीस्तीर्थकृद्यः कृतार्थः
सकलगुणसमृद्धो वः स सिद्धिं विदध्यात्॥ आचार्य गुणभद्र

'जो शत्रुरूप राजाओंके लिये यमराजके दण्डके समान अथवा हरि-इन्द्र के समान पुण्डरीकिणी नगरीके राजा रतिषेण हुए, फिर वैजयन्त विमानमें अहमिन्द्र हुए वे अपार लक्ष्मीके धारक, कृतकृत्य, सब गुणोंसे सम्पन्न भगवान् सुमतिनाथ तीर्थंकर तुम सबकी सिद्धि करें—तुम्हारे मनोरथ पूर्ण करें।

[१]

पूर्वभव परिचय

दूसरे धातकी खण्ड द्वीपमें पूर्वमेरुसे पूर्वकी ओर विदेह क्षेत्रमें सीतानदी के उत्तर तटपर पुष्कलावती नामक देश है। उसमें पुण्डरीकिणी नगरी है जो अपनी शोभासे पुरन्दरपुरी अमरावतीको भी जीतती है। किसी समय उसमें रतिषेण नामक राजा राज्य करते थे। महाराज रतिषेणने अपने अतुलकाय बलसे जिस तरह बड़े बड़े शत्रुओंको जीत लिया था उसी तरह अनुपम मनोबलसे काम, क्रोध, लोभ, मद, मात्सर्य्य और मोह इन छह अन्तरङ्ग शत्रुओंको भी जीत लिया था। वे बड़े ही यशस्वी थे, दयालु थे, धर्मात्मा थे, और थे सच्चे नीतिज्ञ। अनेक तरहके विषय भोगते हुए जब उनकी आयुका बहुभाग व्यतीत हो गया तब उन्हें एक दिन किसी कारणवश संसारसे उदासीनता हो गई। ज्योंही उन्होंने विवेकरूपी नेत्रसे अपनी ओर देखा त्यों ही उन्हें अपने बीते हुए जीवनपर बहुत ही सन्ताप हुआ। वे सोचने लगे—'हाय मैंने अपनी विशाल आयु इन विषय सुखोंके भोगनेमें ही विता दी पर विषय सुख भोगनेसे क्या सुख मिला है ? इसका कोई उत्तर नहीं है। मैं आजतक भ्रमवश दुःखके कारणोंको ही सुखका कारण मानता रहता हूँ। ओह !' इत्यादि विचार कर वे अतिरथ पुत्रके लिये राज्य दे वनमें जाकर कठिन तपस्याएं करने लगे। उन्होंने अर्हन्ननन्दन गुरुके पास रहकर ग्यारह अङ्गोंका विधिपूर्वक अध्ययन किया तथा दर्शन विशुद्धि आदि सोलह भावनाओंका शुद्ध हृदयसे चिन्तवन किया जिससे उन्हें तीर्थंकर नामक महापुण्य प्रकृति का वन्ध हो गया। मुनिराज रतिषेण आयुके अन्तमें सन्यास पूर्वक मरकर वैजन्त विमानमें अहमिन्द्र हुए। वहां उनकी आयु तेतीस सागर वर्ष की थी शरीर एक हाथ ऊंचा और रंग सफेद था। वे तेतीस हजार वर्ष बाद एक वार मानसिक आहार लेते और तेतीस पक्षमें सुरभित श्वास लेते थे। इस तरह वहां जिन अर्चा और तत्वचर्चाओंसे अहमिन्द्र रतिषेणके दिन सुखसे बीतने लगे। यही अहमिन्द्र आगेके भवमें कथानायक भगवान् सुमति होंगे।

अब कुछ वहांका वर्णन सुनिये जहां आगे चलकर उक्त अहमिन्द्र जन्म धारण करेंगे।

[२]
वर्तमान परिचय

पाठकगण जम्बूद्वीप भरत क्षेत्रकी जिस अयोध्यासे परिचित होते आ रहें हैं उसीमें किसी समय मेघरथ नामके राजा राज्य करते थे उनकी महारानीका नाम मंगला था। मंगला सचमुचमें मंगला ही थी। महाराज मेघरथके सर्व मंगल मंगलाके ही आधीन थे। ऊपर जिस अहमिन्द्रका कथन कर आये हैं उसकी वहांकी आयु जब छह माहकी बाकी रह गई थी तभीसे महाराज मेघ-रथके घरपर देवोंने रत्नोंकी वर्षा करनी शुरू कर दी थी। श्रावण शुक्ला द्वितीयाके दिन मघा नक्षत्रमें मंगला देवीने रात्रिके पिछले भागमें ऐरावत आदि सोलह स्वप्न देखे और फिर मुंहमें प्रवेश करता हुआ एक हाथी देखा। सवेरा होते ही उसने प्राणनाथसे स्वप्नोंका फल पूछा तब उन्होंने अवधि ज्ञानसे जानकर कहा कि 'आज तुम्हारे गर्भमें तीर्थंकर बालकने अवतार लिया है—सोलह स्वप्न उसीकी विभूतिके परिचायक हैं' पतिके मुखसे स्वप्नोंका फल सुनकर और भावी पुत्रके सुविशाल वैभवका स्मरण विचार करके वह बहुत ही सुखी होती थी। उसी दिन देवोंने आकर राजा रानीका खूब यश गाया, खूब उत्सव मनाये। इन्द्रकी आज्ञासे सुरकुमारियां महादेवी मंगलाकी तरह तरहकी शुश्रूषा करती थीं और प्रमोदमयी वचनोंसे उसका मन बहलाये रहती थीं।

नौ महीना बाद चैत्र शुक्ल एकादशीके दिन मघा नक्षत्रमें महारानीने पुत्र उत्पन्न किया। पुत्र उत्पन्न होते ही तीनों लोकोंमें आनन्द छा गया। सबके हृदय आनन्दसे उल्लसित हो उठे, क्षण एक के लिये नारकी भी मार काट का दुःख भूल गये, भवनवासी देवोंके भवनोंमें अपने आप शंख बज उठे, व्यन्तरोंके मन्दिरोंमें भेरीकी आवाज गूंजने लगी, ज्योतिषियोंके विमानोंमें सिंहनाद हुआ तथा कल्पवासी देवोंके विमानोंमें घन्टेकी आवाज फैल गई।

मनुष्य लोकमें भी दिशाएं निर्मल हो गईं, आकाश निर्मेघ हो गया, दक्षिण की शीतल और सुगन्धित वायु धीरे धीरे बहने लगी, नदी तालाबों आदि का पानी स्वच्छ हो गया।

अथानन्तर तीर्थंकरके पुण्यसे प्रेरे हुए देव लोग बालक तीर्थंकरको सुमेरु पर्वत पर ले गये। वहां उन्होंने क्षीर सागरके जलसे उनका अभिषेक किया। अभिषेकके बाद इन्द्राणीने शरीर पोंछकर उन्हें बालोचित उत्तम उत्तम आभूषण पहिनाये और इन्द्रने स्तुति की। फिर जय जय शब्दसे समस्त आकाश को व्याप्त करते हुए अयोध्या आये और बालक को माता पिताके लिये सौंप कर उन्होंने बड़े ठाट बाटसे जन्मोत्सव मनाया। उसी समय इन्द्रने आनन्द नामका नाटक किया था।

पुत्रका अनुपम महात्म्य देख कर माता पिता हर्षसे फूले अंग न समाते थे। इन्द्रने महाराज मेघरथकी सम्मतिसे बालकका नाम सुमति रक्खा। उत्सव समाप्त कर देव लोग अपने अपने घर चले गये।

बालक सुमति नाथ दोयजके चन्द्रमाकी तरह धीरे धीरे बढ़ता गया। वह बाल-चन्द्र ज्यों ज्यों बढ़ता जाता था त्यों त्यों अपनी कलाओंसे माता पिताके हर्ष सागरको बढ़ाता जाता था। भगवान् सुमतिनाथ, अभिनन्दन स्वामीके बाद नौ लाख करोड़ सागर बीत जाने पर हुए थे। उनकी आयु चालीस लाख पूर्व की थी जो उसी अन्तरालमें शामिल है। शरीर की ऊंचाई तीन सौ धनुष और कान्ति तपे तपाये हुए स्वर्णकी तरह थी। उनका शरीर बहुत ही सुन्दर था—उनके अङ्ग प्रत्यङ्गसे लावण्य फूट फूट कर निकल रहा था। धीरे धीरे जब उनके कुमार कालके दश लाख पूर्व व्यतीत हो गये तब महाराज मेघरथ उन्हें राज्य भार सौंप कर दीक्षित हो गये।

भगवान् सुमतिनाथने राज्य पाकर उसे इतना व्यवस्थित बनाया था कि जिससे उनका कोई भी शत्रु नहीं रहा था। समस्त राजा लोग उनकी आज्ञाओं को मालाओंकी तरह मस्तक पर धारण करते थे। उनके राज्यमें हिंसा, झूठ, चोरी व्यभिचार आदि पाप देखनेको न मिलते थे। उन्हें हमेशा प्रजाके हितो का ख्याल रहता था इसलिये वे कभी ऐसे नियम नहीं बनाते थे जिनसे कि

प्रजा दुखी हो। महाराज मेघरथ दीक्षित होनेके पहले ही उनका योग्य कुलीन कन्याओंके साथ पाणिग्रहण-विवाह कर गये थे। सुमतिनाथ उन नर देवियोंके साथ अनेक सुख भोगते हुए अपना समय व्यतीत करते थे। इस तरह राज्य करते हुए जब उनके उन्नीस लाख पूर्व और बारह पूर्वाङ्ग बीत चुके तब किसी दिन कारण पाकर उनका चित्त विषय वासनाओंसे विरक्त हो गया जिससे उन्हे संसारके भोग विरस और दुःखप्रद मालूम होने लगे। ज्यों हो उन्होंने अपने अतीत जीवन पर दृष्टि डाली त्योंही उनके शरीरमें रोमाञ्च खड़े हो गये। उन्होंने सोचा "हाय, मैंने एक मूर्खकी तरह इतनी विशाल आयु व्यर्थ ही गंवा दी 'दूसरोंके हितका मार्ग बतलाऊं, उनका भला करूं' यह जो मैं बचपनमें सोचा करता था वह सब इस योवन और राज्य सुखके प्रवाहमें प्रवाहित हो गया। जैसे सैकड़ों नदियों का पान करते हुए भी समुद्रको तृप्ति नहीं होती वैसे इन विषय सुखों को भोगते हुए भी प्राणियों को तृप्ति नहीं होती। ये विषयाभिलाषाएं मनुष्यको स्वार्थकी ओर—आत्म हितकी ओर कदम नहीं बढ़ाने देतीं। इसलिये अब मैं इन विषय वासनाओं को जलाञ्जलि कर आत्म हितकी ओर प्रवृत्ति करता हूँ"।

इधर भगवान् सुमति नाथ विरक्त हृदयसे ऐसा विचार कर रहे थे उधर आसन कंपनेसे लौकान्तिक देवोंको इनके वैराग्यका ज्ञान हो गया था जिससे वे शीघ्र ही इनके पास आये और अपनी विरक्त वाणीसे इनके वैराग्यको बढ़ाने लगे। जब लौकान्तिक देवोंने देखा कि अब इनका हृदय पूर्ण रूपसे विरक्त हो चुका है तब वे अपनी अपनी जगह पर वापिस चले गये और उनके स्थान पर असंख्य देव लोग आ गये। उन्होंने आकर वैराग्य महोत्सव मनाना प्रारम्भ कर दिया। पहिले जिन देवोंकी संगीत, नृत्य तथा अन्य चेष्टाएं राग बढ़ाने वाली होती थीं आज उन्हीं देवोंकी समस्त चेष्टाएं वैराग्य बढ़ा रहीं थीं।

भगवान् सुमति नाथ पुत्रके लिये राज्य देकर देव निर्मित 'अभया' पालकी पर बैठ गये। देव लोग 'अभया' को अयोध्याके समीप वर्ती सहेतुक नामक वनमें ले गये वहां उन्होने नर सुरकी साक्षीमें जगद्वन्द्य सिद्ध परमेष्ठी को नमस्कार कर वैसाख शुक्ला नवमीके दिन मध्यान्हके समय मघा नक्षत्रमें

एक हजार राजाओंके साथ दैगम्बरी दीक्षा धारण कर ली। दीक्षा धारण करते समय ही वे तेला—तीन दिनके उपवासकी प्रतिज्ञा कर चुके थे इसलिये लगातार तीन दिन तक एक आसनसे ध्यान मग्न होकर बैठे रहे। ध्यानके प्रतापसे उनकी विशुद्धता उत्तरोत्तर बढ़ती जाती थी इसलिये उन्हें दीक्षा लेने के बाद ही चौथा मनः पर्यय ज्ञान प्राप्त हो गया था। जब तीन दिन समाप्त हुए तब वे मध्याह्नसे पहले आहारके लिये सौमनस नगरमें गये। वहां उन्हें 'द्युम्न द्युति' राजाने पडगाहकर योग्य-समयानुकूल आहार दिया। पात्रदानके प्रभावसे राजा द्युम्नद्यु तिके घर देवोंने पंचाश्चर्य प्रकट किये। भगवान् सुमति नाथ आहार लेकर बनको वापिस लौट आये और फिर आत्म ध्यानमें लीन हो गये।

इस तरह कुछ कुछ दिनोंके अन्तरालसे आहार ले कठिन तपश्चर्या करते हुए जब बीस वर्ष बीत गये तब उन्हें प्रियंगु वृक्षके नीचे शुक्ल ध्यानके प्रतापसे घातिया कर्मोंका नाश हो जाने पर चैत्र सुदी एकादशीके दिन मघा नक्षत्रमें सायंकालके समय लोक-आलोकको प्रकाशित करने वाला केवल ज्ञान प्राप्त हुआ। देव, देवेन्द्रोंने आकर भगवान्के ज्ञान-कल्याणक का उत्सव मनाया। अलकाधिपति-कुवेरने इन्द्रकी आज्ञा पाते ही समवसरणकी रचना की। उसके मध्यमें सिंहासन पर अचल स्पर्श रूपसे विराजमान हो करके बली सुमति नाथने दिव्य ध्वनिके द्वारा उपस्थित जन समूहको धर्म, अधर्मका स्वरूप बतलाया। जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन छह द्रव्योंके स्वरूपका व्याख्यान किया। भगवानके मुखार विन्दसे वस्तुका स्वरूप समझकर वहां बैठी हुई जनताके मुंह उस तरह हर्षित हो रहे थे जिस तरह कि सूर्यकी किरणोंके स्पर्शसे कमल हर्षित हो जाते हैं। व्याख्यान समाप्त होते ही इन्द्रने मधुर शब्दोंमें उनकी स्तुति की और आर्यक्षेत्रोंमें विहार करनेकी प्रार्थना की। उन्होंने आवश्यकतानुसार आर्य क्षेत्रोंमें विहार कर समीचीन धर्मका खूब प्रचार किया।

भगवान्का विहार उनकी इच्छा पूर्वक नहीं होता था। क्योंकि मोहनीय कर्मका अभाव होनेसे उनकी हर एक प्रकारकी इच्छाओंका अभाव हो गया

था। जिस तरफके भव्य जीवोंके विशेष पुण्यका उदय होता था उसी तरफ मेघोंकी नांई उनका स्वाभाविक विहार हो जाता था। उनके उपदेशसे प्रभावित होकर अनेक नर नारी उनकी शिष्य दीक्षामें दीक्षित हो जाते थे।

आचार्य गुणभद्रजीने लिखा है कि उनके समवसरणमें अमर आदि एक सौ सोलह गणधर थे, दोलाख चौअन हजार तीन सौ पचास शिक्षक थे, ग्यारह हजार अवधि ज्ञानी थे, तेरह हजार केवल ज्ञानी थे, दश हजार चार सौ मनः पर्यय ज्ञानी थे, अठारह हजार चार सौ विक्रिया ऋद्धिके धारक थे, और दश हजार चार सौ पचास वादी थे। इस तरह सब मिलाकर तीन लाख बीस हजार मुनि थे। अनन्तमती आदि तीन लाख तीस हजार आर्यिकाएं थीं, तीन लाख श्रावक और पांच लाख श्राविकाएं थीं। इनके सिवाय असंख्यात देव देवियां और संख्याय तिर्यञ्च थे।

जब उनकी आयु एक माहकी बाकी रह गई तब वे सम्मेद शैल पर आये और वहीं योग निरोध कर विराजमान हो गये। वहां उन्होंने शुक्ल ध्यानके द्वारा अघाति चतुष्ठयका क्षय कर चैत्र सुदी एकादशीके दिन मघा नक्षत्रमें शामके समय मुक्ति मन्दिरमें प्रवेश किया। देवोंने सिद्धिक्षेत्र सम्मेदशिखर पर आकर उनकी पूजा की और मोक्ष कल्याणक का उत्सव किया।



भगवान पद्मप्रभ

किं सेव्यं क्रम युग्म मब्जविजया दस्यैव लक्ष्म्यास्पदं
किं श्रव्यं सकल प्रतीति जनना दस्यैव सत्यं वचः ।
किं ध्येयं गुणसंतति श्च्युत मलस्यास्यैव काष्ठाश्रया
दित्युक्त स्तुति गोचरः स भगवान्पद्मप्रभः पातुवः ॥ आचार्य गुणभद्र

"सेवा किसकी करनी चाहिये ? कमलको जीत लेनेसे लक्ष्मीके स्थानभूत भगवान्के चरण युगलकी। सुनना क्या चाहिये ? सबको विश्वास उत्पन्न करनेसे इन्हीं पद्मप्रभ भगवान्के सत्य वचन। ध्यान किसका करना चाहिये ? अन्तरहित होनेके कारण, निर्दोष इन्हीं पद्मप्रभ महाराजके गुण समूह। इस प्रकारकी स्तुतिके विषयभूत भगवान् पद्मप्रभ तुम सबकी रक्षा करें।"

[१]

पूर्वभव परिचय

दूसरे धातकी खण्डद्वीपके पूर्व विदेह क्षेत्रमें सीता नदीके दाहिने किनारेपर एक वत्स नामका देश है। उसके सुसीमा नगरमें किसी समय अपराजित नामका राजा राज्य करता था। सचमुचमें राजाका जैसा नाम था वैसा ही उसका बल था। वह कभी शत्रुओंसे पराजित नहीं हुआ। उसकी भुजाओंमें अप्रतिम बल था जिससे उसके सामने रणक्षेत्रमें कोई खड़ा भी न हो पाता था। उसके पास जो असंख्य सेना थी वह सिर्फ प्रदर्शनके लिये ही थी क्योंकि शत्रु लोग उसका प्रताप न सहकर दूरसे ही भाग जाते थे। वह हमेशा अपनी प्रजाकी भलाईमें संलग्न रहता था। राजा अपराजितने दान दे देकर दरिद्रोंको लखपति बना दिया था उसकी स्त्रियां अपने अनुपम रूपसे सुर सुन्दरियोंको भी पराजित करनेवालीं थीं। उन सबके साथ सांसारिक सुख भोगता हुआ वह चिरकालतक पृथिवीका पालन करता रहा।

एक दिन किसी कारणसे उसका चित्त विषयवासनाओंसे हट गया था इसलिये वह सुमित्र नामक पुत्रके लिये राज्य दे वनमें जाकर विहितास्रव

आचार्यके पास दीक्षित हो गया। उसने आचार्यके पास रहकर खूब अध्ययन किया और कठिन तपस्याओंसे अपनी आत्माको बहुत कुछ निर्मल बना लिया। उन्हींके पासमें रहते हुए उसने दर्शन विशुद्धि, विनय सम्पन्नता आदि सोलह भावनाओंका चिन्तवन कर तीर्थंकर नामक पुण्य प्रकृतिका वन्ध कर लिया था। जब उसकी आयु समाप्त होनेको आई तब वह समस्त वाह्य पदार्थोंसे मोह हटाकर शुद्ध आत्माके ध्यानमें लीन हो गया जिससे मरकर नवमें ग्रैवेयक के 'प्रीतिकर' विमानमें ऋद्धिधारी अहमिन्द्र हुआ। वहांपर उसकी आयु इकतिस सागरकी थी, शरीर दो हांथ ऊंचा था, लेश्या-शरीरका रङ्ग सफेद था। वह इकतीस हजार वर्ष बाद मानसिक आहार लेता था और इकतीस पक्षमें एक बाह सुगन्धित श्वास ग्रहण था। उसे जन्मसे ही अवधि ज्ञान प्राप्त था जिससे वह ऊपर, विमानके ध्वजा दण्ड तक, और नीचे सातवें नरक तककी बात स्पष्ट जान लेता था। प्रवीचार-मैथुनक्रियासे रहित था। वह वहां हमेशा जिन अर्चा और तत्व चर्चा आदिमें ही समय बिताया करता था। यही अह-मिन्द्र ग्रैवेयकके सुख भोगकर भरतक्षेत्रमें पद्मप्रभ नामका तीर्थंकर होगा। ग्रैवेयकसे चयकर वह जहां उत्पन्न होगा अब वहांका हाल सुनिये।

[२]

वर्तमान परिचय

इस जम्बूद्वीपके भरत क्षेत्रकी कौशाम्बी नगरीमें बहुत समयसे इक्ष्वाकु-वंशीय राजाओंका राज्य चला आ रहा था। कालक्रमसे उस समय वहां धरण-राजा राज्य करते थे। उनकी स्त्रीका नाम सुसीमा था सुसीमा सव गुणोंकी अन्तिम सीमा-अवधि थी। उसमें सभी गुण प्रकर्षताको प्राप्त थे।

जब उक्त अहमिन्द्रकी आयु वहांपर सिर्फ छह माहकी बाकी रह गई थी तभीसे महाराज धरणके घरपर प्रति दिन आकाशसे करोड़ों रत्न वरसने लगे। रत्नोंकी वर्षा देखकर 'कुछ भला होनेवाला है' यह सोचकर राजा अपने मनमें अत्यन्त हर्षित होते थे। महारानी सुसीमाने माघ कृष्णा षष्ठीके दिन चित्रा नक्षत्रमें सोलह स्वप्न देखनेके बाद अपने मुंहमें प्रवेश करते हुए एक हाथीको

देखा। पूछनेपर राजाने रानीके लिये स्वप्नोंका फल बतलाते हुए कहा कि 'आज रात्रिके पिछले पहरमें तुम्हारे गर्भमें तीर्थंकर बालकने प्रवेश किया है ये स्वप्न उसीके अभ्युदयके सूचक हैं।' पतिके मुखसे भावी पुत्रका प्रभाव सुनकर महारानी बहुत ही प्रसन्न हुई। उसी दिन सवेरा होते ही देवोंने आकर महाराज और महारानीका खुब सत्कार किया तथा भगवान् पद्मप्रभके गर्भ कल्याणकका उत्सव किया।

नौ माह बाद कार्तिक कृष्णा त्रयोदशीके दिन मघा नक्षत्रमें माता सुसीमा ने बालक उत्पन्न किया। उसी समय देवोंने बालकको मेरु पर्वतपर ले जाकर क्षीर सागरके जलसे उसका महाभिषेक किया और अनेक तरहसे स्तुति कर माता पिताको सौंप गये। इन्द्रने महाराजके घर पर 'आनन्द' नाटक किया तथा अनेक कौतुहलोंको उत्पन्न करनेवाले ताण्डव नृत्यसे सब दर्शकोंके मन को हर्षित किया।

बालकके शरीरकी प्रभा-कान्ति पद्म कमलके समान थी, इसलिये इन्द्रने उसका नाम पद्मप्रभ रक्खा था। भगवान् पद्मप्रभ बाल इन्दुके समान प्रतिदिन बढ़ने लगे। उनकी बाल लीलाएं देख देख कर माता सुसीमाका हृदय मारे आनन्दसे फूल उठता था। उन्हें मति, श्रुत और अवधि, ये तीन ज्ञान तो जन्मसे ही थे, पर वे जैसे जैसे बढ़ते जाते थे, वैसे वैसे उनमें अनेक गुण अपना निवास करते जाते थे।

सुमति नाथके मोक्ष जानेके बाद नब्बे हजार करोड़ सागर बीत जाने पर इनका जन्म हुआ था। इनकी आयुभी इसी अन्तरालमें शामिल है। इनकी कुल आयु तीस लाख पूर्व की थी, दो सौ पचास धनुष ऊंचा शरीर था। जब आयुका चौथाई भाग अर्थात् साढ़े सात लाख पूर्व वर्ष बीत गये, तब महाराज धरण इन्हें राज्य देकर आत्म कल्याणकी ओर प्रवृत्त हो गये। भगवान् पद्मप्रभ भी राज्य पाकर नीतिपूर्वक उसका पालन करने लगे। उनके राज्यमें प्रजाको ईति-भीतिका भय नहीं था। ब्राह्मण आदि वर्ण अपने अपने कार्यों में संलग्न रहते थे, इसलिये उस समय लोगोंमें परस्पर झगड़ा नहीं होता था। उन्होंने अपने गुणोंसे प्रजाको इतना प्रसन्न कर दिया था, जिससे वह धीरे

धीरे महाराज धरणको भी भूल गई थी। सुन्दर सुशील कन्याओंके साथ उनकी शादी हुई थी सो उनके साथ मनोरम स्थानोंमें तरह तरह की क्रियाएं करते हुए वे यौवनके रसीले समयको आनन्दसे विताते थे। वे धर्म, अर्थ और कामका समान रूपसे ही पालन करते थे। इस तरह इन्द्रकी तरह विशाल राज्यका उपभोग करते हुए जब उनकी आयुका बहु भाग व्यतीत हो गया और सोलह पूर्वाङ्ग कम एक लाख पूर्व की बाकी रह गई, तब वे एक दिन दरवाजे पर बंधे हुए हाथीके पूर्व भव सुनकर प्रतिबुद्ध हो गये। उसी समय उन्हें अपने पूर्व भवोंका ज्ञान हो गया, जिससे उनके अन्तरङ्ग नेत्र खुल गये उन्होंने सोचा कि 'मैं जिन पदार्थोंको अपना समझ उनमें अनुराग कर रहा हूँ वे किसी भी तरह मेरे नहीं हो सकते, क्योंकि मैं सचेतन जीव द्रव्य हूँ और ये पर पदार्थ अचेतन-जड़ पुद्गल रूप हैं। एक द्रव्यका दूसरा द्रव्य रूप परिणमन त्रिकालमें भी नहीं हो सकता। खेद है कि मैंने इतनी विशाल आयु इन्हीं भोग विलासोंमें विता दी, आत्म कल्याणकी कुछ भी चिन्ता नहीं की। इसी तरह ये संसारके समस्त प्राणी विषयाभिलाषा रूप दावानलमें झुलस रहे हैं। उनकी इच्छाएं निरन्तर विषयोंकी ओर बढ़ रहीं हैं और इच्छानुसार विषयों की प्राप्ति नहीं होनेसे व्याकुल होते हैं। ओह रे! सब चाहते तो सुख हैं पर दुःखके कारणोंका संचय करते हैं। अब जैसे भी बने वैसे आत्महित कर इनको भी हितका मार्ग बतलाना चाहिये — इधर भगवान् पद्मप्रभ हृदयमें ऐसा चिन्तवन कर रहे थे उधर लौकान्तिक देव आकाशसे उतर कर उनके पास आये और बारह भावनाओंका वर्णन तथा अन्य समयोपयोगी सुभाषितोंसे उनका वैराग्य बढ़ाने लगे। जब भगवानका वैराग्य परकाष्ठा पर पहुंच गया तब लौकान्तिक देव अपना कर्तव्य पूर्ण हुआ समझकर अपने अपने स्थानों पर चले गये। उसी समय दूसरे देवोंने आकर तपः कल्याणक का उत्सव मनाना शुरू करदिया।

भगवान् पद्मप्रभ पुत्रके लिये राज्य सौंपकर देवनिर्मित निर्वृति नामक पालकीपर चढ़ मनोहर नामके वनमें गये। वहां उन्होंने देव, मनुष्य और आत्मा की साक्षी पूर्वक कार्तिक कृष्ण त्रयोदशीके दिन शामके समय चित्रा नक्षत्रमें

एक हजार राजाओंके साथ जैनेश्वरी दीक्षा धारण कर ली। उन्हें दीक्षाके समय ही मनः पर्यय ज्ञान हो गया था। दो दिनोंके बाद वे आहार लेनेके लिये वर्द्धमानपुर नामके नगरमें गये सो वहां महाराज सोमदत्तने पड़गाहकर उन्हें भक्ति पूर्वक आहार दिया। पात्रदानके प्रभावसे देवोंने सोमदत्तके घर पर पञ्चाश्चर्य प्रकट किये थे। सो ठीक ही है—जो पात्रदान स्वर्ग-मोक्षका कारण है उससे पंचाश्चर्योंके प्रकट होनेमें क्या आश्चर्य है।

भगवान् पद्मप्रभ आहार लेकर पुनः बनमें लौट आये और आत्मध्यानमें लीन हो गये। इस तरह दिन, दो दिन, चार दिनके अन्तरसे भोजन लेकर तपस्याएं करते हुए उन्होंने छद्मस्थ अवस्थाके छः माह मौनपूर्वक बिताये। फिर क्षपक श्रेणी चढ़कर शुक्ल ध्यानसे घातिया कर्मों का नाश किया, जिससे उन्हें चैत्र शुक्ला पौर्णमासीके दिन दोपहरके समय चित्रा नक्षत्रमें केवल ज्ञान प्राप्त हुआ। इन्होंने आकर ज्ञान कल्याणकका उत्सव मनाया। कुबेरने पूर्वकी तरह समवसरण धर्म सभाकी रचना की। उसके मध्यमें विराजमान होकर उन्होंने अपने दिव्य उपदेशसे सबको सन्तुष्ट किया। जब वे बोलते थे, तब ऐसा मालूम होता था मानो कानोंमें अमृतकी वर्षा हो रही है। जीव अजीव आदि तत्वोंका वर्णन करते हुए जब उन्होंने संसारके दुःखोंका वर्णन किया, तब प्रत्येक श्रोताके शरीरमें रोंगटे खड़े हो गये। उस समय कितने ही मनुष्य गृह परित्याग कर मुनि हो गये थे और कितने ही श्रावकोंके व्रतोंमें दीक्षित हुए थे।

इन्द्रकी प्रार्थना सुनकर उन्होंने प्रायः समस्त आर्य क्षेत्रोंमें विहार किया जिससे सब जगह जैन धर्मका प्रचार खूब बढ़ गया था। वे जहां भी जाते थे वहींपर अनेक मनुष्य दीक्षित होकर उनके संघमें मिलते जाते थे, इसलिए अन्तमें उसके समवसरणमें धर्मात्माओंकी संख्या बहुत बढ़ गई थी। आचार्य गुणभद्रने लिखा है कि उनके समवसरणमें वज्र, चामर आदि एक सौ दश गणधर थे, दो हजार तीन सौ द्वादशांगके वेत्ता थे, दो लाख उनहत्तर उपाध्याय शिक्षित थे, दश हजार अवधिज्ञानी थे, बारह हजार केवल ज्ञानी थे, दश हजार तीन सौ मनःपर्यय ज्ञानी थे, सोहल हजार आठ सौ विक्रिया ऋद्धिके

धारी थे और नौ हजार छः सौ उत्तरवादी थे। इस तरह सब मिलाकर तीन लाख तीस हजार मुनिराज थे। रतिषेणको आदि लेकर चार लाख बीस हजार आर्यिकाएं थीं, तीन हजार श्रावक थे, पांच लाख श्राविकाएं थीं, असंख्य देव देवियां और संख्यात तिर्यंच थे।

भगवान पद्मप्रभ अन्तमें सम्मेद शिखरपर पहुंचे। वहां उन्होंने एक हजार मुनियोंके साथ प्रतिमा योग धारण किया और समस्त योगोंकी प्रवृत्तिको रोककर शुद्ध आत्माके स्वरूपका ध्यान किया। उस समय दिव्य ध्वनि विहार वगैरह सब बन्द हो गया था। इस तरह एक महीनेतक प्रतिमा योग धारण करनेके बाद वे फाल्गुन कृष्ण चतुर्थीके दिन चित्रा नक्षत्रमें शामके समय शुक्ल ध्यानके प्रतापसे अघातिया कर्मोंका क्षय कर मोक्ष स्थानको प्राप्त हुए। देवोंने आकर उनके निर्वाण स्थानकी पूजा की। भगवान पद्मप्रभके कमलका चिन्ह था।



भगवान सुपार्श्वनाथ

स्वास्थ्यं यदात्यन्तिक मेषपुंसां
स्वार्थो न भोगः परिभंगुरात्मा।
तृषोऽनुषंगान्नच ताप शान्ति
रितीदमाख्यद्भगवान सुपार्श्वः॥ —स्वामि समन्तभद्र

आत्माका स्वास्थ्य वही है जिसका फिर अन्त न हो, विनाश न हो। पंचेन्द्रियोंका भोग आत्माका स्वार्थ नहीं है, क्योंकि वह भंगुर है नश्वर है। और तृष्णाका अनुषंग संसर्ग होनेके कारण उससे सन्तापकी शान्ति नहीं होती, ऐसा भगवान सुपार्श्वनाथने कहा है:—

[१]

पूर्वभव परिचय

धातकी खण्ड द्वीपके पूर्व विदेह क्षेत्रमें सीता नदीके उत्तर किनारे पर सुकच्छ देश है। उसके क्षेमपुर नगरमें किसी समय नन्दिषेण राजा राज्य करता था। वह राजा बहुत ही विद्वान एवं चतुर था। उसने अपनी चतुराई से अजेय शत्रुओंको भी वशमें कर लिया था। उसका बाहुबल भी अपार था। वह रणक्षेत्रमें निःशङ्क होकर गरजता था कि देव, दानव, विद्याधर नर-वीर जिसमें शक्ति हो वह मेरे सामने आवे। उसकी स्त्रियां अपनी रूप राशि से स्वर्गीय सुन्दरियोंको भी लज्जित करती थीं। वह उनके साथ अनेक तरहके शृङ्गार सुख भोगता हुआ अपने योवनको सफल बनाया करता था। यह सब होते हुए भी वह धर्म कार्योंमें हमेशा सुदृढ़ चित्त रहता था, इसलिये उसके कोई भी कार्य ऐसे नहीं होते थे जो धार्मिक नियमोंके विरुद्ध हों। कहनेका मतलब यह है कि वह राजा धर्म अर्थ और कामका समान रूपसे पालन करता था।

राज्य करते करते जब बहुत समय निकल गया तब एक दिन उसे सहसा वैराग्य उत्पन्न हो गया जिससे उसे समस्त भोग काले भुजङ्गकी तरह मालूम होने लगे। उसने अपने विशाल राज्यको विस्तृत कारागार समझा। उसी समय उसका स्त्री-पुत्र आदिसे ममत्व छूट गया। उसने सोचा कि 'यह जीव अरहटकी घड़ीके समान हमेशा ही चारों गतियोंमें घूमता रहता है। जो आज देव है वह कल तिर्यञ्च हो सकता है। जो आज राज्य सिंहासन पर बैठकर मनुष्योंपर शासन कर रहा है वही कल मुट्ठी भर अन्नके लिये घर घर भटक सकता है। ओह! यह सब होते हुए भी मैंने अभी तक इस संसारसे छुट-कारा पानेके लिये कोई सुदृढ़ कार्य नहीं किया। अब मैं शीघ्र ही मोक्ष प्राप्ति के लिये प्रयत्न करूंगा" इत्यादि विचार कर उसने धनपति नामक पुत्रको राज्य सिंहासन पर बैठा दिया और स्वयं बनमें जाकर अर्हन्नन्दन मुनिराजके पास जिन दीक्षा ले ली। दीक्षित होनेके बाद उसके पास कुछ भी परिग्रह नहीं

रह गया था। दिशाएं ही उसके वस्त्र थे आकाश मकान था, पथरीली पृथ्वी शय्या थी, जंगलके हरिण आदि जन्तु उसके बन्धु थे, रातमें असंख्य तारे और चन्द्रमा ही उसके दीपक थे। वह सरदी. गरमी, और वर्षाके दुःख बड़ी शान्तिसे सह लेता था। क्षुधा, तृषा आदि परीषहोंका सहना अब उसके लिये कोई बड़ी बात नहीं थी। उसने आचार्य अर्हन्नन्दनके पास रहकर ग्यारह अंगों का अध्ययन किया तथा दर्शन विशुद्धि आदि सोलह कारण भावनाओंका चिन्तवन किया, जिससे उसके जगत्‌में धार्मिक क्रान्ति मचा देनेवाली तीर्थंकर नामक महापुण्य प्रकृतिका बन्ध हो गया। इस तरह उसने बहुत दिनों तक तपस्या कर खोटे कर्मोंका आना—आस्रव बन्द कर दिया और शुभ कर्मों का आना प्रारम्भ कराया। आयुके अन्तमें समाधि पूर्वक शरीर छोड़कर वह मध्यम ग्रैवेयाकके सुभद्र विमानमें जाकर अहमिन्द्र हुआ। वहां उसकी आयु सत्ताइस सागर प्रमाण थी, शरीरकी ऊंचाई दो हाथकी थी, लेश्या शुक्ल थी। वह सत्ताईस हजार वर्ष बीत जाने पर एक बार मानसिक आहार ग्रहण करता था। और सत्ताईस पक्ष बाद एक बार सुगन्धित श्वास लेता था। वहां वह इच्छा मात्रसे प्राप्त हुई उत्तम द्रव्योंसे जिनेन्द्र देवकी प्रतिमाओंकी पूजा करता और स्वयं मिले हुए देवोंके साथ तरह तरहकी तत्वचर्चाएं करता था।

जो कहा जाता है कि 'सुखमें जाता हुआ काल मालूम नहीं होता' वह बिल्कुल सत्य है। अहमिन्द्रको अपनी बीतती हुई आयुका पता नहीं चला। जब सिर्फ छह माहकी आयु बाकी रह गई तब उसे मणिमाला आदि वस्तुओं पर कुछ फीकापन दिखा। जिससे उसने निश्चय कर लिया कि अब मुझे यहां से बहुत जल्दी कूच कर नरलोकमें जाना होगा। उसे उतनी विशाल आयु बीत जाने पर आश्चर्य हुआ। उसने सोचा कि 'मैंने अपना समस्त जीवन यों ही बिता दिता दिया, आत्म कल्याणकी ओर कुछ भी प्रयत्न नहीं किया, इत्यादि विचार कर उसने अधिक रूपसे जिन अर्चा आदि कार्य करना शुरू कर दिये। यह अहमिन्द्र ही अग्रिम भवमें भगवान् सुपार्श्वनाथ होगा। अब जहां उत्पन्न होगा वहांका कुछ हाल सुनिये।

---

[२]

वर्तमान परिचय

जम्बू द्वीपके भरत क्षेत्रमें एक काशी देश है। उसमें गंगाके तटपर एक वाराणसी—बनारस नामको नगरी है। उस समय उसमें सुप्रतिष्ठित नामक महाराज राज्य करते थे। उनकी महारानीका नाम पृथ्वीसेना था। दोनों दम्पति सुखसे रहते थे। उनके शरीरमें न कोई रोग था, न किसी प्रतिद्वन्द्वीकी चिन्ता ही थी। पाठक ऊपर जिस अहमिन्द्रसे परिचित हो आये हैं, उसकी आयु जब वहां सिर्फ छः माहकी बाकी रह गई थी तभीसे यहां महाराज सुप्रतिष्ठके घरपर देवोंने रत्नोंकी वर्षा करनी शुरू कर दी थी। कुछ समय बाद भादों सुदी छठके दिन विशाखा नक्षत्रमें महारानी पृथ्वीषेणने रात्रिके पिछले भागमें हाथी वृषभ आदि सोलह स्वप्न देखे तथा अन्तमें मुंहमें प्रवेश करता हुआ एक सुरम्य हाथी देखा। अर्थात् उसी समय वह अहमिन्द्र देव पर्याय छोड़कर माता पृथवीषेणके गर्भमें आया। सुबह होते ही जब महारानीने पतिदेवसे स्वप्नोंका फल पूछा, तब उन्होंने हर्षसे पुलकित बदन होते हुए कहा कि 'प्रिये आज तुम्हारा स्त्री जीवन सफल हुआ और मेरा भी गृहस्थ जीवन निष्फल नहीं गया। आज तुम्हारे गर्भमें तीर्थकर पुत्रने अवतार लिया है। यह कहकर उन्होंने रानोके लिये तीर्थकरके अगण्य पुण्यकी महिमा बतलाई। पतिदेवके मुंहसे अपने भावी पुत्रकी महिमा सुनकर महारानीके हर्षका पार नहीं रहा। उसी समय देव देवियोंने आकर सुप्रतिष्ठ महाराज और पृथ्वीषेण महारानीका खूब सत्कार किया। स्वर्गसे साथमें लाये हुए वस्त्राभूषणोसे उन्हें अलंकृत किया तथा अनेक प्रकारसे गर्भारोहणका उत्सव मनाया।

इन्द्रकी आज्ञासे अनेक देव कुमारियांको माताकी सेवा करती थीं। जब क्रम क्रमसे गर्भ कालके दिन पूर्ण हो गये तब पृथ्वीषेणने ज्येष्ठशुक्ला द्वादशी के दिन अहमिन्द्र नामके शुभ योगमें पुत्र रत्न उत्पन्न किया। पुत्रकी कांतिसे समस्त प्रसूति गृह प्रकाशित हो गया था इसलिए देवियोंने जो दीपमाला जला रखी थी, उसका सिर्फ मंगल शुभाचार मात्र ही प्रयोजन रह गया था। जन्म होते ही समस्त देव असख्य देव परिवारके साथ बनारस आये और वहां

से बाल तीर्थंकरको लेकर मेरु पर्वत पर गये। वहां उन्होंने पाण्डुक वनमें पाण्डुक शिला पर विराजमान कर जिन बालकका क्षीर सागरके जलसे महाभिषेक किया। वहीं गद्य पद्यमयी भाषासे उनकी स्तुति की। अनन्तर वहांसे वापिस आकर उन्होंने जिन बालकको माताकी गोदमें दे दिया। बालकका मुखचन्द्र देखकर माता पृथ्वीषेणाका आनन्द सागर लहराने लगा। महाराज सुप्रतिष्ठकी सलाहसे इन्द्रने बालकका नाम सुपार्श्व रक्खा। उसी समय इन्द्रने अपने ताण्डव नृत्यसे उपस्थित जनताको अत्यन्त आनन्दित किया था। जन्मोत्सवके उपलक्ष्यमें वाराणसी पुरीको जो सजावटकी गई थी उसके सामने पुरन्दर पुरी—अमरावती बहुत फीकी मालूम होती थी। उत्सव मनाकर देव लोग अपने अपने स्थानों पर वापिस चले गये। पर इन्द्रकी आज्ञासे कुछ देव बालक का रूप धारणकर हमेशा भगवान् सुपार्श्वनाथके पास रहते थे जो कि उन्हें तरह तरहकी चेष्टाओंसे आनन्दित करते रहते थे। महाराज सुप्रतिष्ठके घर बालक सुपार्श्वनाथके लालन पालनमें कोई कमी नहीं थी, फिर भी इन्द्र स्वर्ग से मनो-विनोदके लिये कल्पवृक्षके फूलोंकी मालाएं, मनोहर आभूषण और अनोखे खिलौने आदि भेजा करता था।

बालक सुपार्श्वनाथ भी दोयजके चन्द्रमाकी तरह बढ़ने लगे। उनके मुंह पर हमेशा मन्द मुसकान रहती थी। धीरे धीरे समय बीतता गया। भगवान् सुपार्श्वनाथ बाल्य अवस्था पार कर कुमार अवस्थामें पहुंचे और फिर कुमार अवस्था भी पार कर यौवन अवस्थामें पहुंचे।

छठवें तीर्थंकर भगवान पद्मप्रभके मोक्ष जानेके बाद नौ हजार करोड़ सागर बीत जाने पर श्री सुपार्श्वनाथ हुए थे। उनकी आयु बीस लाख पूर्व की थी और शरीरकी ऊंचाई दो सौ धनुष की थी। वे अपनी कान्तिसे चन्द्रमाको भी लज्जित करते थे। जन्मसे पांच लाख पूर्व बीत जाने पर उन्हें राज्य मिला। राज्य पाकर उन्होंने प्रजाका पालन किया। वे हमेशा सज्जनोंके अनुग्रह और दुर्जनोंके निग्रहका ख्याल रखते थे। उनका शासन अत्यन्त लोकप्रिय था इसलिये उन्हें जीवनमें किसी शत्रुका सामना नहीं करना पड़ा था। सुप्रतिष्ठ महाराजने अनेक-कन्याओंके साथ इनका विवाह किया

था। भगवान् सुपार्श्वनाथ अपनी मनोरम चेष्टाओंसे उन आर्य महिलाओंको हमेशा हर्षित रखते थे। बीच बीचमें इन्द्र, नृत्य गोष्ठी, वाद्य गोष्ठी, संगीत गोष्ठी आदिसे विनोद कराकर भगवान्‌को प्रसन्न करता रहता था। उस समय सुपार्श्वनाथ जो सुख भोगते थे, शतांश भी किसी दूसरेको प्राप्त नहीं था। भोग भोगते हुए भी वे उनमें तन्मय नहीं होते थे, इसलिये उनके भोगीय भोग नूतन कर्म बन्धके कारण नहीं होते थे। इस तरह सुख पूर्वक राज्य करते हुए जब उनको आयु बीस पूर्वाङ्ग कम एक लाख पूर्वकी रह गई तब उन्हें किसी कारणवश संसारके बढ़ानेवाले विषय भोगोंसे विरक्ति हो गई। उन्होंने अपनी पिछली आयुके व्यर्थ बीत जाने पर घोर पश्चात्ताप किया और राज्य कार्य, गृहस्थी पुत्र मित्र आदि सबसे मोह छोड़कर बनमें जा तप करनेका दृढ़ निश्चय कर लिया। लौकान्तिक देवोंने भी आकर उनके विचारों का समर्थन किया। देव देवियोंने वैराग्य वर्द्धक चेष्टाओंसे तपः कल्याणकका उत्सव मनाना प्रारम्भ किया। भगवान् सुपार्श्वनाथ राज्यका भार पुत्रको सौंपकर देवनिर्मित 'मनोगति' नामकी पालकीपर सवार हुए। देव उस पालकी को बनारसके समीपवर्ती सहेतुक बनमें ले गये। पालकीसे उतरकर उन्होंने गुरुजनोंकी सम्मति पूर्वक ज्येष्ठ शुक्ला द्वादशीके दिन विशाखा नक्षत्रमें शामके समय "ओनमःसिद्धेभ्यः" कहते हुए दिगम्बर दीक्षा धारण कर ली। उनके साथमें एक हजार राजा और भी दीक्षित थे।

मुनिराज सुपार्श्वनाथने दीक्षित होते ही इतना एकाग्र ध्यान किया था जिससे उन्हें उसी समय अनेक ऋद्धियां और मनःपर्यय ज्ञान प्राप्त हो गया था। दो दिनोंके उपवासके बाद वे आहार लेनेके लिये सोमखेट नामके नगरमें गये। वहां राजा महेन्द्रदत्तने पड़गाह कर नवधा भक्तिपूर्वक आहार दिया। पात्रदानके प्रभावसे राजा महेन्द्रदत्तके घरपर देवोंने पंचाश्चर्य प्रकट किये। भगवान सुपार्श्वनाथ आहार लेकर बनमें लौट आये। तदनन्तर नौ वर्षोंतक उन्होंने छद्मस्थ अवस्थामें मौनपूर्वक रहकर तपश्चरण किया।

एक दिन वे उसी सहेतुक बनमें दो दिनोंके उपवासका नियम लेकर शिरीष वृक्षके नीचे विराजमान हुए। वहीं पर उन्होंने क्षपक श्रेणी चढ़कर

क्रमसे अधःकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण रूप भावोंसे मोहनीय कर्मका क्षयकर बारवां क्षीणमोह गुणस्थान प्राप्त किया। और उसके अन्तमें ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी और अन्तराय इन तीन घातिया कर्मोंका क्षय कर केवल ज्ञान प्राप्त कर लिया। अब तीनों लोक और तीनों कालके अनन्त पदार्थ उनके सामने हस्तामलकवत् झलकने लगे। देवोंने आकर कैवल्य प्राप्ति का उत्सव किया। इन्द्रकी आज्ञा पाकर कुबेरने विस्तृत समवसरण बनाया। उसके बीचमें स्थित होकर पूर्णज्ञानी योगी भगवान् सुपार्श्वनाथने अपनी मौन मुद्रा भंगकी—दिव्य उपदेश दिया। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, उत्तम क्षमा आदि आत्म धर्मोंका स्वरूप समझाया। चतुर्गति रूप संसारके दुःखोंका वर्णन किया, जिसके भयसे श्रोताओंके शरीरमें रोमांच हो आये। कितने ही आसन्न भव नर नारियोंने मुनि आर्यिकाओंके व्रत ग्रहण किये। और कितने ही पुरुष स्त्रियोंने श्रावक-श्राविकाओंके व्रत धारण किये। उपदेश के बाद इन्द्रने उनसे अन्य क्षेत्रोंमें विहार करनेके लिये प्रार्थना की थी अवश्य, पर वह प्रार्थना नियोगकी पूर्तिमात्र ही थी, क्योंकि उनका विहार स्वयं होता है। अनेक देशोंमें घूम कर उन्होंने धर्मका खूब प्रचार किया। असंख्य जीव राशिको संसारके दुःखोंसे छुटाकर मोक्षके अनन्त सुख प्राप्त कराये। अनेक जगह विहार करनेसे उनकी शिष्य परम्परा भी बहुत अधिक हो गई थी। कितनी ? सुनिये—

उनके समवसरणमें बल आदि पंचानवे गणधर थे, दो हजार तीस ग्यारह अङ्ग और चौदह पूर्वोंके ज्ञाता थे, दो लाख चवालीस हजार नौ सौ बीस शिक्षक थे, नौ हजार अवधि ज्ञानी थे, ग्यारह हजार केवल ज्ञानी थे, पन्द्रह हजार तीन सौ विक्रिया ऋद्धिके धारक थे, नौ हजार एक सौ पचास मनःपर्यय ज्ञानी थे और आठ हजार छह सौ वादी थे। इस तरह सब मिलकर तीन लाख मुनिराज थे। इनके सिवाय मीनार्याको आदि लेकर तीन लाख तीस हजार आर्यिकाएं थीं। तीन लाख श्रावक, पांच लाख श्राविकाएं असंख्यात देव देवियां और संख्यात तिर्यंच थे।

विहार करते करते जब उनकी आयु सिर्फ एक माह बाकी रह गई, तब

वे सम्मेद शिखरपर पहुंचे और वहां योग निरोध कर प्रतिमायोगसे विराजमान हो गये। वहींसे उन्होंने शुक्ल ध्यानके अन्तिम भेद सूक्ष्मा क्रिया। प्रतिपाती और व्युपरत क्रिया निवर्तीके द्वारा अघातिया चतुष्कका नाशकर फाल्गुन शुक्ला सप्तमीके दिन विशाखा नक्षत्रमें सूर्योदयके समय एक हजार मुनियोंके साथ साथ मोक्ष प्राप्त कर लिया। देवोंने आकर उनके निर्वाण क्षेत्रकी पूजा की।



भगवान चन्द्रप्रभ

सम्पूर्णः किमयं शरच्छशधरः किं वार्पितो दर्पणः
सर्वार्थावगतेः किमेष विलसत्पीयूषपिण्डः पृथुः।
किं पुण्याणुमयश्चयोऽय मिति यद्वक्त्राम्बुजं शंक्यतेः
सोऽयंचन्द्र जिनस्तमो व्यपहरन्नं हो भयाद्रक्षतात्॥ आचार्य गुणभद्र

"क्या यह शरदृऋतुका पूर्ण चन्द्रमा है? अथवा सब पदार्थोंको जाननेके लिये रक्खा हुआ दर्पण है? क्या यह शोभायमान अमृतका विशालपिण्ड है? या पुण्य परमाणुओंका बना हुआ पिण्ड है। इस तरह जिनके मुख कमलको देखकर शंका होती है, वे श्रीचन्द्रप्रभ महाराज तम-अज्ञानको नष्ट करते हुए पापरूपी भयसे हम सबकी रक्षा करें।

[१]

पूर्वभव वर्णन

असंख्यात द्वीप समुद्रोंसे घिरे हुए मध्य लोकमें एक पुष्कर द्वीप है। उसके बीचमें चूड़ीके आकारवाला मानुषोत्तर पर्वत पड़ा हुआ है, जिससे उसके दो भेद हो गये हैं। उनमेंसे पूर्वार्ध भागतक ही मनुष्योंका सद्भाव पाया जाता है। पुष्करार्ध द्वीपमें क्षेत्र वगैरहकी रचना धातकी खण्डकी तरह है अर्थात्

जम्बूद्वीपसे दूनी है। उनमें पूर्व और पश्चिम दिशामें दो मंदर-मेरु पर्वत हैं। पूर्व दिशाके मेरुसे पश्चिमकी ओर एक बड़ा भारी विदेह क्षेत्र है। उसमें सीता नदीके उत्तर तटपर एक सुगन्ध नामका देश है जो हरएक तरहसे सम्पन्न है। उसमें श्रीपुर नामका नगर था, जिसमें किसी समय श्रीषेण नामका राजा राज्य करता था। वह राजा बहुत ही बलवान था, दयालु था, धर्मात्मा था, नीतिज्ञ था। वह हमेशा सोच-विचार कर कार्य करता जिससे उसे कभी कार्य कर चुकनेपर पश्चात्ताप नहीं करना पड़ता था। उसकी महारानीका नाम श्री-कान्ता था। श्रीकान्ताने अपने दिव्य सौन्दर्यसे काम कामिनी-रतिको भी पराजित कर दिया था। दोनों दम्पतियोंका परस्पर अटूट प्रेम था। शरीर स्वस्थ और सुन्दर था धन सम्पत्तिकी कमी नहीं थी और किसी शत्रुका खटका नहीं था, इसलिये वे अपनेको सबसे सुखी समझते हुए समय बिताते थे। धीरे धीरे श्रीकान्ताका यौवन समय व्यतीत होनेको आया, पर उसके कोई सन्तान नहीं हुई। इसलिये वह हमेशा दुखी रहती थी। एक दिन रानी श्री-कांता कुछ सहेलियोंके साथ मकानकी छतपर बैठकर नगरकी शोभा निहार रही थी कि उसकी दृष्टि गेंद खेलते हुए सेठके लड़कोंपर पड़ी। लड़कोंको देखते ही उसे पुत्र न होनेकी चिन्ताने धर दबाया। उसका प्रसन्न मुख फूल-सा मुरझा गया, मुखसे दीर्घ और गर्म गर्म श्वासें निकलने लगीं, आंखोंसे आंसुओंकी धारा बह निकली। उसने भग्न-हृदयसे सोचा—जिसके ये पुत्र हैं उसी स्त्रीका जन्म सफल है। सचमुच, फलरहित लताके समान वन्ध्या—फल रहित स्त्रीकी कोई शोभा नहीं होती है। सच कहा है कि पुत्रके बिना सारा संसार शून्य दिखता है, इत्यादि विचार कर वह छतसे नीचे उतर आई और और खिन्न चित्त होकर शयनागारमें पड़ रही। जब सहेलियों द्वारा राजाको उसके खिन्न होनेका समाचार मिला तब वह शीघ्र ही उसके पास पहुंचा और कोमल शब्दोंमें दुःखका कारण पूछने लगा। बहुत बार पूछनेपर भी जब श्रीकान्ताने कोई जवाब नहीं दिया तब उसकी एक सहेलीने, जोकि हृदयकी बात जानती थी, राजाको छतपरका समस्त वृत्तान्त कह सुनाया। सुनकर उसे भी दुःख हुआ पर कर ही क्या सकता था? आखिर धैर्य धारण कर रानीको

मीठे शब्दोंमें समझाने लगा कि 'जो वस्तु मनुष्यके पुरुषार्थसे सिद्ध नहीं हो सकती, उसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये। कर्मों के ऊपर किसका वश है ? तुम्हीं कहो, किसी तीव्र पापका उदय ही पुत्र-प्राप्ति होनेका बाधक कारण है इसलिये पात्र दान, जिनपूजन व्रत उपवास आदि शुभ कार्य करो जिससे अशुभ कर्मोंका बल नष्ट होकर शुभ कर्मोंका बल बढ़े।'

प्राणनाथका उपदेश सुनकर श्रीकान्ताने बहुत कुछ अंशोंमें पुत्र न होनेका शोक छोड़ दिया और पहलेकी अपेक्षा बहुत अधिक पात्रदान आदि शुभ-क्रियाएं करने लगी।

एक दिन राजा श्रीषेण महारानी श्रीकान्ताके साथ वनमें घूम रहा था कि वहांपर उसकी दृष्टि एक मुनिराजके ऊपर पड़ी, उसने रानीके साथ साथ उन्हें नमस्कार किया और धर्म श्रवण करनेकी इच्छासे उनके पास बैठ गया। मुनिराजने सारगर्भित शब्दोंमें धर्मका व्याख्यान किया, जिससे राजाका मन बहुत ही हर्षित हुआ। धर्मश्रवण करनेके बाद उसने मुनिराजसे पूछा—'नाथ! मैं इस तरह कबतक गृह जंजालमें फंसा रहूँगा ? क्या कभी मुझे दिगम्बर मुद्रा धारण करनेका सौभाग्य प्राप्त होगा ?" उत्तरमें मुनिराजने कहा राजन! तुम्हारे हृदयमें हमेशा पुत्रकी इच्छा बनी रहती है सो जबतक तुम्हारे पुत्र न होगा तबतक वह इच्छा तुम्हारा पिंड न छोड़ेगी। बस, पुत्रकी इच्छा ही तुम्हारे मुनि बननेमें बाधककरण है। आपकी इस हृदयवल्लभा श्रीकांताने पूर्वभवमें गर्भभारसे पीड़ित एक नूतनयुवतिको देखकर निदान किया था कि 'मेरे कभी यौवन अवस्थामें सन्तान न हो'। इस निदानके कारण ही अबतक इसके पुत्र नहीं हुआ है। पर अब निदान बन्धके कारण बंधे हुए दुष्कर्मोंका फल दूर होनेवाला है, इसलिये शीघ्र ही इसके पुत्र होगा। पुत्रको राज्य देकर आप भी दीक्षित हो जावेंगे' यह कहकर उन्होंने माहात्म्य बतलाकर राजा रानीके लिये आष्टान्हिका व्रत दिया। राज दम्पती मुनिराजके द्वारा दिये हुए व्रतको हृदयसे स्वीकार कर घरको वापिस लौट आये। जब आष्टान्हिक पर्व आया तब दोनोंने अभिषेक पूर्वक सिद्ध यन्त्रकी पूजाकी और आठ दिनतक यथाशक्ति उपवास किये जिनसे उन्हें असीम पुण्य कर्मका बन्ध हुआ।

कुछ दिनों बाद रानी श्रीकान्ताने रात्रिके पिछले भागमें हाथी, सिंह, चन्द्रमा और लक्ष्मीका अभिषेक ये चार स्वप्न देखे। उसी समय उसके गर्भाधान हो गया। धीरे धीरे उसके शरीरमें गर्भके चिन्ह प्रकट हो गये, शरीर पाण्डु वर्ण हो गया, आंखोंमें कुछ हरापन दीखने लगा, स्तन स्तूप और कृष्ण मुख हो गये। उदर भारी हो गया और जिम्हाई आने लगी। प्रियतमाके शरीरमें गर्भके चिन्ह प्रकट हुए देखकर राजा श्रीषेण बहुत ही हर्षित होता था नव माह बाद उसके पुत्र उत्पन्न हुआ। राजाने पुत्रकी उत्पत्तिका खूब उत्सव किया —याचकोंको मनचाहा दान दिया, जिन पूजन आदि पुण्य कर्म कराये। ढलती अवस्थामें पुत्र पाकर श्रीकान्ताको कितना आनन्द हुआ होगा यह तुच्छ लेखनीसे नहीं लिखा जा सकता। राजाने बन्धु बान्धवोंकी सलाहसे पुत्रका नाम श्रीवर्मा रक्खा। श्रीवर्मा धीरे धीरे बढ़ने लगा। जैसे जैसे उसकी अवस्था बढ़ती जाती थी वैसे वैसे ही उसके गुणोंका विकाश होता जाता था

ज बकुमार राज्य कार्य संभालनेके योग्य हो गया तब राजा उसपर राज्य का भार छोड़कर अभिलाषित भोग भोगने लगा। एक दिन वहांके शिवंकर नामक उपवनमें श्रीप्रभ नामक मुनिराज आये। बनमालीने राजाके लिये मुनि आगमनका समाचार सुनाया। राजा श्रीषेण भी हर्षित चित्त होकर मुनि वन्दनाके लिये गया। वहां मुनिराजके मुंहसे धर्मका स्वरूप और संसारका दुःख सुनकर उसके हृदयमें वैराग्य उत्पन्न हो गया जिससे उसने श्रीवर्माको राज्य देकर शीघ्र ही जिन दीक्षा धारण कर ली। श्रीवर्मा राज्य पाकर बहुत प्रसन्न नहीं हुआ क्योंकि वह हमेशा उदासीन रहता था। उसकी यही इच्छा बनी रहती थी कि मैं कब साधुवृत्ति धारण करूं। पर परिस्थिति देखकर उसे राज्य स्वीकार करना पड़ा था। श्रीवर्मा बहुत ही चतुर पुरुष था। उसने जिस तरह बाह्य शत्रुओंको जीता था उसी तरह काम, क्रोध आदि अन्तरङ्ग शत्रुओं को भी जीत लिया था।

एक दिन श्रीवर्मा परिवारके कुछ लोगोंके साथ मकानकी छतपर बैठकर प्रकृतिकी अनूठी शोभा देख रहा था कि इतनेमें आकाशसे उल्कापात हुआ। उसे देखकर उसका चित्त सहसा विरक्त हो गया। उसने उल्काकी तरह

संसारके सब पदार्थोंकी अस्थिरताका विचारकर दीक्षा धारण करनेका दृढ़निश्चय कर लिया और दूसरे दिन श्रीकान्त नामक बड़े पुत्रके लिये राज्य देकर श्री-प्रभ आचार्यके पास दिगम्बर दीक्षा ले ली। अन्तमें वह श्रीप्रभ नामक पर्वत पर सन्यास पूर्वक शरीर छोड़कर पहले स्वर्गके श्रीप्रभ विमानमें श्रीधर नाम-का देव हुआ। वहां उसकी दो सागरकी आयु थी, सात हाथका दिव्य वैक्रि-यिक शरीर था, पीत लेश्या थी। वह दो हजार वर्ष बाद मानसिक आहार लेता और दो पक्ष बाद श्वासोच्छ्वास करता। उसे जन्मसे ही अवधि ज्ञान था अणिमा महिमा आदि ऋद्धियां प्राप्त थीं। वहां वह अनेक देवाङ्गनाओंके साथ इच्छानुसार क्रीड़ा करता हुआ सुखसे समय बिताने लगा।

धातकी खण्ड द्वीपमें दक्षिणकी ओर एक इष्वाकार पर्वत है। उसके पूर्व भरत क्षेत्रके अलका नामक देशमें एक अयोध्या नामकी नगरी है। उसमें किसी समय अजितंजय नामका राजा राज्य करता था। उसकी स्त्रीका नाम अजितसेना था। एक दिन रातमें अजितसेनाने हाथी. बैल, सिंह, चन्द्रमा सूर्य, पद्म, सरोवर, शङ्ख और जलसे भरा हुआ घट ये आठ स्वप्न देखे। सबेरा होते ही उसने पतिदेव महाराज अजितंजयसे स्वप्नोंका फल पूछा। तब उन्होंने कहा—कि 'आज तुम्हारे गर्भमें किसी पुण्यात्मा जीवने अवतरण किया है। ये स्वप्न उसीके गुणोंका सुयश वर्णन करते हैं। वह हाथीके देखनेसे गम्भीर, बैल और सिंहके देखनेसे अत्यन्त बलवान, चन्द्रमाको देखनेसे सब-को प्रसन्न करने वाला, सूर्यके देखनेसे तेजस्वी, पद्म-सरोवरके देखनेसे शंख, चक्र आदि बत्तीस लक्षणोंसे शोभित, शंखके देखनेसे चक्रवर्ती और पूर्ण घटके देखनेसे निधियोंका स्वामी होगा। स्वप्नोंका फल सुनकर रानी अजित-सेनाको अपार हर्ष हुआ।

पाठक यह जाननेके लिये उत्सुक होंगे कि अजितसेनाके गर्भमें किस पुण्यात्माने अवतरण लिया है। उसका उत्तर यह है कि ऊपर पहले स्वर्गके श्रीप्रभ विमान में जिस श्रीधर देवका कथन कर आये हैं, वही वहांकी आयु पूर्ण कर महारानी अजितसेनाके गर्भमें आया है। गर्भ काल व्यतीत होनेपर रानीने शुभ मुहुर्तमें पुत्र रत्न पैदा किया, जो बड़ा ही पुण्यशाली था। राजा

ने उसका नाम अजित सेना रखा। अजितसेन बड़े प्यारसे पाला गया। जब उसकी अवस्था योग्य हो गई तब राजा अजितंजयने उसे युवराज बना दिया और तरह तरहकी राजनीतिका उपदेश दिया।

एक दिन महारानी अजितंजय युवराज अजितसेनके साथ राज सभामें बैठे हुए थे कि इतनेमें वहांसे एक चन्द्र रुचि नामका असुर निकला। ज्योंही उसकी दृष्टि युवराजपर पड़ी त्योंही उसे अपने पूर्व भवके वैरका स्मरण हो आया। वह क्रोधसे कांपने लगा, उसकी आंखें लाल हो गई और भौंहे टेढ़ी। 'बदला चुकानेके लिये यही समय योग्य है' ऐसा सोचकर उसने समस्त सभा के लोगोंको मायासे मूर्छित कर दिया और युवराजको उठाकर आकाशमें ले गया। इधर जब माया मूर्छा दूर हुई तब राजा अजितंजय पासमें पुत्रको न पाकर बहुत दुखी हुए। उन्होंने उस समय हृदयको पानी पानी कर देनेवाले शब्दोंमें विलाप किया पर कोई कर ही क्या सकता था। चारों ओर वेगशाली घुड़सवार छोड़े गये, गुप्तचर छोड़े गये पर कहीं उसका पता न चला। उसी दिन जब राजा पुत्रके विरहमें रुदन कर रहा था तब आकाशसे कोई तपोभूषण नामके मुनिराज राजसभामें आये। राजाने उनका योग्य सत्कार किया। मुनिराजके आगमनसे उसे इतना अधिक हर्ष हुआ था कि वह उस समय पुत्रके हरे जानेका भी दुख भूल गया था। उसने नम्र वाणीमें मुनिराजकी स्तुति की। 'धर्मवृद्धिरस्तु' कहते हुए मुनिराजने कहा – राजन्! मैं अवधिज्ञान रूपी लोचनसे तुम्हें व्याकुल देखकर संसारका स्वरूप बतलानेके लिये आया हूँ। संसार वही है जहांपर इष्ट वियोग और अनिष्ट संयोग हुआ करते हैं। अशुभ कर्मके उदयसे प्रायः समस्त प्राणियोंको इष्टका वियोग और अनिष्ट का संयोग हुआ करता है। आप विद्वान हैं इसलिये आपको पुत्र वियोगका दुःख नहीं करना चाहिये। विश्वास रखिये, आपका पुत्र कुछ दिनोंमें बड़े वैभवके साथ आपके पास आ जायेगा। इतना कहकर मुनिराज तपोभूषण आकाश मार्गसे विहार कर गये और राजा भी शोक-आश्चर्य पूर्वक समय विताने लगे। अब सुनिए युवराजका हाल—

चन्द्ररुचि असुर युवराजको सभा क्षेत्रसे उठाकर आकाशमें ले गया और

वहां उसके मारनेके लिये उपयुक्त स्थानकी तलाश करने लगा। अन्तमें उसने बहुत जगह तलाश करनेके बाद युवराजको मगरमच्छ आदिसे भरे हुए एक मनोरम नामके तालाबमें आकाशसे पटक दिया और आप निश्चिन्त हो कर अपने घर चला गया। युवराजको उसने बहुत ऊंचेसे पटका अवश्य था पर पुण्यके उदयसे उसे कोई चोट नहीं लगी। वह अपनी भुजाओंसे तैरकर शीघ्र ही तटपर आ गया। तालाबसे निकलते ही उसे चारों ओर भयानक जङ्गल दिखलाई पड़ा। उसमें वृक्ष इतने घने थे कि दिनमें भी वहां सूर्यका प्रकाश नहीं फैल पाता था। जगह जगह पर सिंह, व्याघ्र, आदि दुष्ट जीव गरज रहे थे। इतना सब होनेपर भी अल्पवयस्क युवराजने धैर्य नहीं छोड़ा। वह एक संकीर्ण मार्गसे उस भयानक अटवीमें घुसा। कुछ दूर जानेपर उसे एक पर्वत मिला। अटवीका अन्त जाननेके लिये ज्योंही वह पर्वतपर चढ़ा त्यों ही वहां वर्षातके मेघके समान काला एक पुरुष उसके सामने आया और क्रोधसे गरज कर कहने लगा—कि कौन है तू? जो मरनेकी इच्छासे मेरे स्थानपर आया है। जहां सूर्य और चन्द्रमा भी पादचार किरणोंका फैलाव नहीं कर सकते वहां तेरा आगमन कैसा? मैं दैत्य हूँ, इसी समय तुझे यमलोक पहुंचाये देता हूँ। उसके वचन सुनकर कुमारने हंसते हुए कहा कि आप बड़े योद्धा मालूम होते हैं। इस भीषण अटवीपर आपका क्या अधिकार है? यहांका राजा तो कोई मृगराज होना चाहिये पर कुमारके शान्तिमय वार्तालाप का उसपर कुछ भी असर नहीं पड़ा। वह पहलेकी तरह ही यद्वा तद्वा बोलता रहा। तब कुमारको भी क्रोध आ गया। दोनोंमें डटकर मल्लयुद्ध हुआ। वन देवियां झाड़ियोंसे छिपकर दोनोंको युद्ध लीलाएं देख रही थीं। कुछ समय बाद कुमारने उसे भूपर पछाड़नेके लिए उठाया और आकाशमें घुमाकर पछाड़ना ही चाहते थे कि उसने अपना मायावी वेष छोड़ दिया और असली रूप में प्रकट होकर कहने लगा—बस, कुमार! मैं समझ गया कि आप बहुत ही बलवान पुरुष हैं। उस मांको धन्य है जिसने आप जैसा पुत्र उत्पन्न किया। मैं हिरण नामका देव हूँ, अकृतिम चैत्यालयोंकी वन्दनाके लिए गया था। वहां से लौटकर यहां आया था और कृतिम वेषसे यहां मैंने आपकी परीक्षा की।

आप परीक्षामें पास हो गये। आप धीर हों, वीर हों, गम्भीर हों। मैं आपके गुणोंसे अत्यन्त प्रसन्न हूँ। अब आप कुछ भी चिन्ता न कीजिए, आप विशाल वैभवके साथ कुछ दिनोंमें ही अपने पिताके पास पहुंच जायेंगे। अब सुनिये, मैं आपके जन्मान्तरकी कथा कहता हूं:—

इस भवसे पूर्व तीसरे भवमें आप सुगन्धि देशके राजा थे, आपकी राजधानी 'श्रीपुर' थी। वहां आप श्रीवर्मा नामसे प्रसिद्ध थे। उसी नगरमें शशी और सूर्यनामके दो किसान रहते थे। एक दिन शशीने घरमें सन्धि कर सूर्यका धन हरण कर लिया। जब सूर्यने आपसे निवेदन किया तब आपने पता चलाकर शशीको खूब पिटवाया और सूर्यका धन वापिस दिलवा दिया। पिटते पिटते शशी मर गया जिससे वह चन्द्ररुचि नामका असुर हुआ है और सूर्य मर कर मैं हिरण्य नामका देव हुआ हूं। पूर्वभवके वैरसे ही चन्द्ररुचि ने हरणकर आपके लिये कष्ट दिया है और मैं उपकारसे कृतज्ञ होकर आपका मित्र हुआ हूँ" इतना कहकर वह देव अन्तर्हित हो गया। वहांसे कुमार थोड़ा ही चला था कि वह विशाल अटवी जिसके कि अन्तका पता नहीं चलता था समाप्त हो गई। युवराजने यह सब उस देवका ही प्रभाव समझा। अटवीसे निकल कर वह पासके किसी देशमें पहुंचा। वहां उसने देखा कि समीपवर्ती नगरसे बहुतसे पौरजन घबड़ाये हुए भागे जा रहे हैं। जाननेकी इच्छासे उसने किसी मनुष्यसे भागनेका कारण पूछा। उत्तरमें मनुष्यने कहा—'क्या आकाशसे पड़ रहे हो, जो अपरिचितसे बनकर पूछते हो।' तब युवराजने कहा—'भाई! मैं परदेशी आदमी हूं, मुझे यहांका कुछ भी हाल मालूम नहीं है। अनुचित न हो तो बतलानेका कष्ट कीजिये।' युवराजकी नम्र और मधुर वाणीसे प्रसन्न होकर मनुष्यने कहा—'तो, सुनिये—'यह अरिंजय नामका देश है, यह सामनेका नगर इसकी राजधानी है, इसका नाम विपुल है। यहां जयवर्मा नामके राजा राज्य करते हैं उनकी स्त्रीका नाम जयश्री है। इन दोनों के एक शशिप्रभा नामकी लड़की है जो सौन्दर्य सागरमें तैरती हुई सी जान पड़ती है। किसी देशके महेन्द्र नामके राजाने महाराज जयवर्मासे शशिप्रभा की याचना की। जयवर्मा उसके साथ शशिप्रभाकी शादी करनेके लिये तैयार

हो गये पर एक निमित्त ज्ञानीने 'महेन्द्र अल्पायु है' कहकर उन्हें वैसा करनेसे रोक दिया। राजा महेन्द्रको यह बात सह्य नहीं हुई इसलिये वह बड़ी भारी सेनाको लेकर महाराज जयवर्मासे लड़कर जबरदस्ती शशिप्रभाको हरनेके लिये आया है। उसकी सेनाने विपुलपुरको चारों ओरसे घेर लिया है। जय-वर्माके पास उतनी सेना नहीं है जिससे वह महेन्द्रका मुकाबिला कर सके। उसके सैनिक नगरमें ऊधम मचा रहे हैं इसलिये समस्त पुरवासी डर कर बाहिर भागे जा रहे हैं। अब बश, मुझे बहुत दूर जाना है" इतना कह कर वह मनुष्य भाग गया। युवराज जब कुतूहल पूर्वक विशाल पुरकी सीमा पर पहुंचे और उसके भीतर जाने लगे तब राजा महेन्द्रके सैनिकोंने उन्हें भीतर जानेसे रोका जिससे उन्हें क्रोध आ गया। युवराजने वहीं पर किसी एकके हाथसे धनुषवाण छीनकर राजा महेन्द्रसिंहसे युद्ध करना प्रारम्भ कर दिया और थोड़ी देरमें उसे धराशायी बना दिया। शत्रुकी मृत्यु सुनकर जय वर्मा बहुत ही प्रसन्न हुए। वे कुमारको बड़े आदर सत्कारसे अपने घर लिवा ले गये। वहां शशि प्रभा युवराज पर आसक्त हो गई। राजा जय वर्माको जब इस बातका पता चला तब उसने हर्षपूर्वक युवराजके साथ शशिप्रभाका विवाह करना स्वीकार कर लिया। युवराज कुछ दिनों तक वहीं रहे आये। विजयार्द्ध गिरिकी दक्षिण श्रेणीमें एक आदित्य नामका नगर है जो अपनी शोभासे आदित्य-विमान सूर्य-विमानको भी जीतता है। उसमें धरणी-ध्वज नामका विद्याधर राज्य करता था। धरणीध्वजने अपने पौरुषसे समस्त विद्या-धरोंको अपने आधीन बना लिया था। एक दिन वह राजसभामें बैठा हुआ था कि वहां पर एक क्षुल्लकजी आये राजाने उनका खड़े होकर स्वागत किया और उन्हें ऊंचे आसन पर बैठाया। बातचीत होते होते क्षुल्लकजीने कहा कि 'अरिंजय देशके विपुल नगरके राजा जयवर्माके एक शशि प्रभा नामकी कन्या है। जिसके साथ उसका विवाह होगा वह तुम्हें मारकर भरत-क्षेत्रका पालन करेगा'। क्षुल्लकके वचन सुनकर राजा धरणीध्वजको बहुत दुःख हुआ। जब क्षुल्लकजी चले गये तब उसने कुछ मन्त्रियोंकी सलाहसे विद्याधरोंकी बड़ी भारी सेनाके साथ जाकर विपुल नगरको घेर लिया और वहांके राजा जय

वर्मांके पास दूत भेजकर संदेशा कहलाया कि तुमने जो एक विदेशी लड़केके साथ शशिप्रभाकी शादी करना स्वीकार कर लिया है वह ठीक नहीं है क्योंकि जिसके कुल, बल, पौरुष वगैरहका कुछ भी पता नहीं है उसके साथ लड़की की शादी कर देने से सिवाय अपयशके कुछ भी हाथ नहीं लगता इसलिये तुम शीघ्र ही शशिप्रभाका विवाह मेरे साथ कर दो" जयवर्माने 'चाहे कुलीन हो या अकुलीन' दी हुई कन्या फिर किसी दूसरेको नहीं दी जा सकती' कह कर इनको वापिस कर दिया और लड़ाईकी तैयारी करनी शुरू कर दी।

जयवर्माको युद्धके लिये चिन्तित देख कर युवराज अजितसेनने कहा कि 'आप मेरे रहते हुए जरा भी चिन्ता न कीजियेगा मैं इन गीदड़ोंको अभी मार कर भगाये देता हूँ. ऐसा कहकर युवराजने हिरण्यक देवका जिसका कि पहले अटवीमें वर्णन कर चुके हैं स्मरण किया। स्मरण करते ही वह दिव्य अस्त्र शस्त्रोंसे भरा हुआ एक रथ लेकर युवराजके पास आ गया। समस्त नगर वासियोंको आश्चर्यसे चकित करते हुए युवराज अजितसेन उस रथ पर सवार हुए। हिरण्यक देव चतुराई पूर्वक रथको चलाने लगा। विद्याधरेन्द्र धरणी-ध्वज और कुमार अजित सेनकी जमकर लड़ाई हुई। अन्तमें कुमारने उसे मार दिया जिससे उसकी समस्त सेना भाग खड़ी हुई। कार्य हो चुकने पर युवराजने सम्मान पूर्वक हिरण्यक देवको विदा किया और धूम धामसे नगरमें प्रवेश किया। कुमारकी अनुपम वीरता देखकर समस्त पुरवासी हर्षसे फूले न समाते थे। राजा जयवर्माने किसी दिन शुभ मुहूर्तमें युवराजके साथ शशि-प्रभाका विवाह कर दिया। विवाहके बाद युवराज कुछ दिन तक वहीं रहे आये और शशिप्रभाके साथ अनेक काम कौतूहल करते रहे। फिर कुछ दिनों बाद अयोध्या पुरी वापिस आ गये। पिता अजितंजयने बधू सहित आये हुये पुत्रका बड़े उत्सवके साथ नगरमें प्रवेश कराया। पुत्रकी वीर चेष्टाएं सुन सुन-कर माता पिता बहुत ही हर्षित होते थे।

किसी एक दिन अशोक नामके बनमें स्वयं प्रभ तीर्थङ्करका समवसरण आया। वनमालीसे जब राजाको इस बातका पता चला तब वे शीघ्र ही तीर्थं-करकी वन्दनाके लिये गये। वहां जाकर उन्होंने आठ प्रातिहार्योंसे शोभित

स्वयंप्रभ जिनेन्द्रको नमस्कार किया और नमस्कार कर मनुष्योंके कोठेमें बैठ गये। जिनेद्रके मुखसे संसारका स्वरूप सुनकर वे इतने प्रभावित हुए कि वहीं पर गणधर महाराजसे दीक्षा लेकर तप करने लगे।

युवराज अजितसेनको पिताके वियोगसे बहुत दुःख हुआ पर संसारकी रीतिका विचार कर वे कुछ दिनों बाद शान्त हो गये। मन्त्रिमण्डलने युवराज का राज्याभिषेक किया। उधर महाराज अजितजय.को केवल ज्ञान प्राप्त हुआ और इधर अजित सेनकी आयुधशालामें चक्ररत्न प्रकट हुआ। 'पहले धर्म कार्य ही करना चाहिये' ऐसा सोचकर अजितसेन पहले अजितंजय महाराजके कैवल्य महोत्सवमें शामिल हुए। फिर वहांसे आकर दिग्विजयके लिये गये। उस समय उनकी विशाल सेना एक लहराते हुए समुद्रकी तरह मालूम होती थी। सब सेनाके आगे चक्र रत्न चल रहा था। क्रम क्रमसे उन्होंने समस्त भरतक्षेत्रकी यात्रा कर उसे अपने आधीन बना लिया। जब चक्रधर अजितसेन दिग्विजयी होकर वापिस लौटे तब हजारों मुकुट बद्ध राजाओंने उनका स्वागत किया। राजधानी अयोध्यामें आकर अजितसेन महाराज न्याय पूर्वक प्रजाका पालन करने लगे।

इनके राज्यमें कभी कोई खाने पीनेके लिये दुःखी नहीं होता था। एक दिन इन्होंने मासोपवासी अरिंदम महाराजके लिये आहार दान दिया 'जिससे देवोंने इनके घर पञ्चाश्चर्य प्रकट किये थे। सच है—पात्र दानसे क्या नहीं होता?

किसी दिन राजा अजितसेन वहांके मनोहर नामक उद्यानमें गुणप्रभ तीर्थङ्करकी बन्दना करनेके लिये गये थे। वहां पर उन्होंने तीर्थङ्करके मुखसे धर्मका स्वरूप सुना, अपने भवान्तर पूछे, और चारों गतियोंके दुःख सुने जिससे उनका हृदय बहुत ही विरक्त हो गया। निदान उन्होंने जितशत्रु पुत्रको राज्य देकर अनेक राजाओंके साथ जिन दीक्षा धारण कर ली। उन्होंने अतिचार रहित तपश्चरण किया और आयुके अन्तमें नभस्तिलक नामक पर्वत पर समाधि-पूर्वक शरीर छोड़कर सोलहवें अच्युत स्वर्गके शान्तिकार विमानमें इन्द्र पद प्राप्त किया। वहां उनकी आयु बाईस सागर की थी, तीन हाथका शरीर था, शुक्ल लेश्या थी, वे बाईस हजार वर्ष बीत जाने पर एक बार मानसिक आहार

ग्रहण करते और बाईस पक्ष बाद एक बार श्वास लेते थे। उन्हें जन्मसे ही अवधि ज्ञान था, वे तीनों लोकोंमें इच्छानुसार घूम सकते थे। इस तरह वहां चिरकाल तक स्वर्गीय सुख भोगते रहे।

धीरे धीरे उनकी बाईस सागर प्रमाण आयु समाप्त हो गई पर उन्हे कुछ पता नहीं चला। ठीक कहा है—'साता उदै न लख परै कैता बीता काल'। वहां से चयकर वह पूर्व धातकी खण्डमें सीता नदीके दक्षिण तट पर स्थित मङ्गलावती देशके रत्न-सञ्चयपुर नगरमें राजा कनकप्रभ और रानी कनकमालाके पद्मनाभ नामका पुत्र हुआ। पद्मनाभ बड़ा ही तार्किक-न्याय शास्त्रका वेत्ता था। उसके बल-पौरुषकी सब ओर प्रशंसा छाई हुई थी।

एक दिन कनकप्रभ महाराज मकानकी छतपर बैठकर नगरकी शोभा देख रहे थे कि उनकी दृष्टि सहसा एक पल्वल-स्वल्प-जलाशय पर पड़ी। नगरके बहुतसे बैल उसमें पानी पी पी कर बाहर निकलते जाते थे। उसीमें एक बूढ़ा बैल भी पानी पीनेके लिये गया पर वह पानीके पास पहुंचनेके पहले ही कीचड़ में फंस गया। असमर्थ होनेके कारण वह कीचड़से बाहर नहीं निकल सका जिससे वह प्यासा बैल वहीं तड़फड़ाने लगा। उसकी बेचैनी देखकर कनकप्रभ महाराजका हृदय विषय भोगोंमें अत्यन्त विरक्त हो गया जिससे वे पद्मप्रभको राज्य देकर श्रीधर मुनिराजके पास दीक्षा ले तपस्या करने लगे।

इधर पद्म नाभने नीति पूर्वक राज्य करना प्रारम्भ कर दिया। उसकी अनेक राजकुमारियोंके साथ शादी हुई थी जिनमें सोमप्रभा मुख्य थी। कालक्रमसे सोमप्रभाके सुवर्णनाभि नामका पुत्र उत्पन्न हुआ। उन सबसे पद्मप्रभ नामका गार्हस्थ्य जीवन बहुत ही सुखमय हो गया था।

एक दिन राजा पद्मनाभ सभामें बैठे हुए थे कि वनमालीने आकर उन्हें मनोहर नामक उद्यानमें श्रीधर मुनिराजके आगमनका शुभ समाचार सुनाया। राजाने प्रसन्न होकर बनमालीको बहुत कुछ पारितोषिक दिया और सिंहासन से उतर कर जिस ओर मुनिराज विराजमान थे उस ओर सात कदम आगे जाकर उन्हें परोक्ष नमस्कार किया। उसी समय मुनि वन्दनाको चलनेके लिये नगरमें भेरी बजवाई गई। जब समस्त पुरवासी उत्तम उत्तम वस्त्र आभूषण

पहिनकर हाथोंमे पूजाकी सामग्री लिये हुए, राजद्वार पर जमा हो गये तब सब को साथ लेकर वे उस उद्यानमें गये जहां मुनिराज श्रीधर विराजमान थे। राजाने दूर से ही राज्य चिन्ह छोड़कर विनीत भावसे बनमें प्रवेश किया और मुनिराजके पास पहुंचकर उन्हें अष्टाङ्ग नमस्कार किया। मुनिराजने 'धर्म वृद्धि-रस्तु, कहकर सबके नमस्कार ग्रहण किये।

जब जय जयका कोलाहल शान्त हो गया तब राजा पद्मनाभने मुनिराज से अनेक दर्शन विषयक प्रश्न किये। मुनिराजके मुखसे समुचित उत्तर पाकर वे बहुत ही हर्षित हुए। बादमें उनने मुनिराजसे अपने पूर्वभव पूछे सो मुनि-राजने उनके अनेक पूर्वभवोंका वर्णन किया। बनसे लौटकर पद्मनाभ राज-भवनमें वापिस आ गये और वहां कुछ दिनोंतक राज्य शासन करते रहे।

अन्तमें उनका चित्त किसी कारण वश विषय वासनाओंसे विरक्त हो गया जिससे उन्होंने सुवर्ण नाभि पुत्रको राज्य देकर किन्हीं महामुनिके पास जिन दीक्षा ले ली। उनके साथमें और भी अनेक राजाओंने दीक्षा ली थी। मुनिराज पद्मनाभने गुरुके पास रहकर खूब अध्ययन किया जिससे उन्हें ग्यारह अङ्गों तकका ज्ञान हो गया। उसी समय उन्होंने दर्शन विशुद्धि आदि सोलह कारण भावनाओंका चिन्तवन कर तीर्थङ्कर नामक पुण्य प्रकृतिका बन्ध कर लिया और आयुके अन्तमें सन्यास पूर्वक शरीर छोड़कर जयन्त नामक अनुत्तर विमानमें अहमिन्द्र पद प्राप्त किया।

वहां उनकी आयु तेतीस सागरकी थी, एक हाथ ऊंचा सफेद रङ्गका शरीर था वे तेतीस हजार वर्ष बाद आहार और तेतीस पक्ष बाद श्वासोच्छ्वास ग्रहण करते थे। उन्हें जन्मसे ही अवधि ज्ञान था। यह अहमिन्द्र ही आगेके भवमें अष्टम तीर्थंश्वर भगवान् चन्द्रप्रभ होगा।

गीता छन्द—श्रीवर्म भूपति पाल पुहमी, स्वर्ग पहले सुर भयो।
पुनि अजितसेन छ खण्ड नायक, इन्द्र अच्युत में थयो॥
वर पदमनाभि नरेश निर्जर, वैजयन्त विमानमें।
चन्द्राभ स्वामी सातवें भव, भये पुरुष पुराणमें। —भूधरदास

(२)

वर्तमान परिचय

जम्बूद्वीपके भरत क्षेत्रमें एक चन्द्रपुर नामका नगर है उसमें किसी समय इक्ष्वाकुवंशीय राजा महासेन राज्य करते थे उनकी स्त्रीका नाम लक्ष्मणा था। दोनों दम्पती सुखसे समय विताते थे। ऊपर जिस अहमिन्द्रका कथन कर आये हैं उसकी जब वहांकी आयु छह माहकी बाकी रह गई थी तभीसे राजा महासेनके घरपर प्रति दिन अनेक रत्नोंकी वर्षा होने लगी और देवियां आ आकर महारानी लक्ष्मणाकी सेवा करने लगीं। वह सब देखकर राजाको निश्चय हो गया था कि सुलक्ष्मणाकी कुक्षिसे तीर्थंकर पुत्र होने वाला है।

चैत्र कृष्ण पंचमीके दिन ज्येष्ठा नक्षत्रमें सुलक्ष्मणाने रातके पिछले भाग में हाथी, बैल आदि सोलह स्वप्न देखे। उसी समय वह अहमिन्द्र जयन्त विमानसे सम्बन्ध छोड़कर उसके गर्भमें आया। सवेरा होते ही देवोंने आकर भगवान चन्द्रप्रमके गर्भ कल्याणकका उत्सव किया और माता पिताकी स्वर्गीय वस्त्राभूषणोंसे पूजा की।

गर्भका समय बीत जानेपर लक्ष्मणा देवीने पौष कृष्ण एकादशीके दिन अनुराधा नक्षत्रमें मति, श्रुत, अवधि इन तीन ज्ञानोंसे विराजित पुत्ररत्न उत्पन्न किया। भगवान् चन्द्रप्रभके जन्मसे समस्त लोकमें आनन्द छा गया। क्षण एकके लिये नारकियोंने भी सुखका अनुभव किया। उसी समय देवोंने मेरु पर्वतपर ले जाकर उनका जन्माभिषेक किया और चन्द्रप्रभ नाम रक्खा। बालक चन्द्रप्रभ अपनी सरल चेष्टाओंसे माता पिता आदिको हर्षित करते हुए बढ़ने लगे।

श्री सुपार्श्वनाथ स्वामीके मोक्ष जानेके बाद नौ सौ करोड़ सागर बीत जानेपर अष्टम तीर्थंकर भगवान चन्द्रप्रभ हुए थे। इनकी आयु भी इसीमें शामिल है। आयु दश लाख पूर्वकी थी, शरीर एक सौ पचास धनुष ऊंचा था, और रंग चन्द्रमाके समान धवल था। दो लाख पचास हजार वर्ष बीत जानेपर उन्हें राज्य विभूति प्राप्त हुई थी। उनका विवाह भी कई कुलीन

कन्याओंके साथ हुआ था जिससे उनका गार्हस्थ्य जीवन बहुत ही सुखमय हो गया था।

जब राज्य करते करते उनकी आयुके छह लाख पचास हजार पूर्व और चौबीस पूर्वाङ्ग क्षण एकके समान निकल गये तब वे किसी एक दिन वस्त्रा-भूषण पहिननेके लिये अलङ्कार गृहमें गये। वहां ज्योंही उन्होंने दर्पणमें मुंह देखा त्योंही उन्हें मुंहपर कुछ विकार सा मालूम हुआ जिससे उनका हृदय विरक्त हो गया। वे सोचने लगे—"यह शरीर प्रतिदिन कितना ही क्यों न सजाया जाय पर काल पाकर विकृत हुए विना नहीं रह सकता। विकृत होने की क्या बात ? नष्ट ही हो जाता है। इस शरीरमें राग रहनेसे इससे संबंध रखने वाले और भी अनेक पदार्थोंसे राग करना पड़ता है। अब मैं ऐसा काम करूंगा जिससे आगेके भवमें यह शरीर प्राप्त ही न हो।" उसी समय देवर्षि लौकान्तिक देवोंने भी आकर उनके विचारोंका समर्थन किया।

भगवान चन्द्रप्रभ अपने वर चन्द्रपुत्रके लिये राज्य देकर देवनिर्मित विमला पालकीपर सवार हो सर्वर्तुक नामके वनमें पहुंचे और वहां सिद्ध परमेष्ठीको नमस्कार कर पौष कृष्ण एकादशीके दिन अनुराधा नक्षत्रमें एक हजार राजाओंके साथ निर्ग्रन्थ मुनि हो गये। उन्हें दीक्षाके समय ही मनः पर्यय ज्ञान प्राप्त हो गया था। वे दो दिन बाद आहार लेनेको इच्छासे नलिन-पुर नगरमें गये वहां महाराज सोमदत्तने पड़गाह कर उन्हें नवधा भक्ति पूर्वक आहार दिया। पात्र दानके प्रभावसे देवों ने सोमदत्तके घर पंचाश्चर्य प्रकट किये। मुनिराज चन्द्रप्रभ नलिनपुरसे लौटकर वनमें फिर ध्यानारूढ़ हो गये। इस तरह छद्मस्थ अवस्थामें तप करते हुए उन्हें तीन माह बीत गये। फिर उसी सर्वर्तुक वनमें नाग वृक्षके नीचे दो दिनके उपवासकी प्रतिज्ञा कर विराजमान हुए वहीं उन्होंने क्षपक श्रेणी माढ़कर मोहनीय कर्मका नाश किया और शुक्ल ध्यानके प्रतापसे शेष तीन घातिया कर्मोंका भी नाश कर दिया। जिससे उन्हें फाल्गुन कृष्ण सप्तमी-अनुराधा नक्षत्रमें शामके समय दिव्य ज्योति-लोकालोक प्रकाशक केवल ज्ञान प्राप्त हो गया था। देवोंने आकर ज्ञान कल्याणकका उत्सव किया। इन्द्रकी आज्ञा पाकर कुवेरने वहींपर समवसरण

को रचना की थी जिसमें समस्त प्राणी सुखसे बैठे थे। समवसरणके मध्यमें स्थित होकर भगवान चन्द्रप्रभने अपना मौन भङ्ग किया अर्थात दिव्य ध्वनिके द्वारा कल्याणकारी उपदेश दिया। उनके उपदेशसे प्रभावित होकर अनेक नर नारियोंने मुनि, आर्यिका, श्रावक और श्राविकाओंके व्रत धारण किये। दिव्य ध्वनि समाप्त होनेके बाद इन्द्रने विहार करनेकी प्रार्थना की जिससे उन्होंने अनेक देशोंमें विहार किया और अनेक भव्य प्राणियोंको संसार सागरसे निकाल कर मोक्ष प्राप्त कराया।

उनके समवसरणमें दत्त आदि तेरानवे गणधर थे, दो हजार द्वादशाङ्ग के जानकार थे, दो लाख चार सौ शिक्षक थे, दश हजार केवली थे, चौदह हजार विक्रिया ऋद्धि वाले थे, आठ हजार मनः पर्यय ज्ञानी थे, और सात हजार छह सौ वादी थे इस तरह सब मिलाकर ढाई लाख मुनिराज थे। वरुण आदि तीन लाख अस्सी हजार आर्यिकाएं थीं। तीन लाख श्रावक और पांच लाख श्राविकाएं थीं। असंख्यात देव देवियां और संख्यात तिर्यञ्च थे। उन्हों ने अनेक जगह घूम घूमकर धर्म तीर्थकी प्रवृत्तिकी और अन्तमें सम्मेद शिखर पर आ विराजमान हुए। वहां उन्होंने हजार मुनियोंके साथ प्रतिमा योग धारण किया जिससे उन्हें एक माह बाद फाल्गुन शुक्ला सप्तमीके दिन ज्येष्ठा नक्षत्रमें शामके समय मोक्षकी प्राप्ति हो गई। देवोंने आकर उनके निर्वाण क्षेत्रकी पूजा की।



भगवान पुष्पदन्त

शान्तं वपुः श्रवणहारि वचश्चरित्रं,
सर्वोपकारी तव देव! ततो भवन्तम्।
संसार मारव महास्थल रुद्रसान्द्र
च्छाया महीरुह मिमे सुविधिं श्रयामः॥ —आचार्य गुणभद्र

हे देव ! आपका शरीर शान्त है, वचन कानोंको सुख देने वाले हैं और चरित्र सबका उपकार करने वाला है इसलिये हम सब, संसार रूपी विशाल मरुस्थलमें सघन छाया वाले बृक्ष स्वरूप आप सुविधिनाथ-पुष्प दन्तका आश्रय लेते हैं।

[१] पूर्वभव वर्णन

पुष्करार्ध द्वीपके पूर्व मेरुसे पूर्व दिशाकी ओर अत्यन्त प्रसिद्ध विदेह क्षेत्र है उसमें सीता नदीके उत्तर तटपर पुष्कलावती देश है जो अनेक समृद्धि-शाली ग्राम नगर आदिसे भरा हुआ है। उसमें एक पुण्डरीकिणी नामकी नगरी है। उसमें किसी समय महापद्म नामका राजा राज्य करता था। वह बहुत ही बलवान था, बुद्धिमान था। उस बाहु बलके साम्हने अनेक अजेय राजाओंको भी आश्चर्य सागरमें गोते लगाने पड़ते थे। उसके राज्यमें खोजने पर भी दरिद्र पुरुष नहीं मिलता था। वह हमेशा विद्वानोंका समुचित आदर करता था और योग्य बृत्तियां दे देकर उन्हें नई बातोंके खोजनेके लिये प्रोत्सा हित किया करता था। उसने काम, क्रोध, मद, मात्सर्य, लोभ और मोह इन छह अन्तरङ्ग शत्रुओंको जीत लिया था। समस्त प्रजा उसकी आज्ञाको माला की भांति अपने मस्तकपर धारण करती थी। प्रजा उसकी भलाईके लिये सब कुछ न्यौछावर कर देती थी और वह भी प्रजाकी भलाईके लिये कोई बात उठा नहीं रखता था।

एक दिन वहांके मनोहर नामके वनमें महामुनि भूतहित पधारे। नगरके समस्त लोग उनकी बन्दनाके लिये गये। राजा महापद्म भी अपने समस्त परिवारके साथ मुनिराजके दर्शनोंके लिये गया। वह वहांपर मुनिराजकी भव्य मूर्ति और प्रभावक उपदेशसे इतना प्रभावित हुआ कि उसने उसी समय राज्य सुख, स्त्री सुख आदिसे मोह छोड़ दिया और धनद नामक पुत्रके लिये राज्य देकर दीक्षा ले ली। महामुनि भूतहितके पास रहकर उसने कठिन तप-स्याएं कीं और अध्ययन कर ग्यारह अंगोंका ज्ञान प्राप्त कर लिया। किसी समय उसने निर्मल हृदयसे दर्शन विशुद्धि आदि सोलह कारण भावनाओं-

का चिन्तवन किया जिससे उसे तीर्थंकर नामक पुण्य प्रकृतिका बन्ध हो गया अन्तमें वह समाधि पूर्वक शरीर छोड़कर चौदहवें अनन्त स्वर्गमें इन्द्र हुआ। वहां उनकी आयु बीस सागरकी थी, तीन हाथका शरीर था, शुक्ल लेश्या थी। वह बीस पक्ष दश माह बाद श्वांस लेता था, बीस हजार वर्ष बाद मानसिक आहार लेता था, उसके मानसिक प्रवीचार था और पांचवें नरक तककी बात बतलाने वाला अवधिज्ञान था। उसके वैक्रियिक शरीर था और उस पर भी अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशत्व और वशित्व ये आठ ऋद्धियां थीं। वह अनेक क्षेत्रोंमें घूम-घूमकर प्रकृतिकी सुन्दरताका निरीक्षण करता था। वह कभी उदयाचलकी शिखरपर बैठकर सूर्योदयकी सुन्दर शोभा देखता, कभी अस्ताचलकी चोटियोंपर बैठकर सूर्यास्तकी सुषमा देखता कभी मेरु पर्वतपर पहुंचकर नन्दन बनमें क्रीड़ा करता, कभी समुद्रोंके तटपर बैठकर उसकी लहरोंका उत्तालनर्तन देखता और कभी हरी भरी अटवियोंमें घूमकर हर्षसे नाचते हुए मयूरोंका ताण्डव देखकर खुसी होता था। यह इन्द्र ही आगे चलकर पुष्पदन्त तीर्थंकर होगा।

[२] वर्तमान परिचय

जम्बूद्वीपके भरत क्षेत्रमें एक काकन्दी नामकी महा मनोहर नगरी थी। उसमें इक्ष्वाकु वंशीय राजा सुग्रीव राज्य करते थे। उनकी स्त्रीका नाम जयरामा था। जब उस इन्द्रकी आयु वहांपर सिर्फ छह माहकी बाकी रह गई तभी से देवोंने सुग्रीव महाराजके घर रत्नोंकी वर्षा करनी शुरू कर दी। अनेक देव कुमारियां आ आकर महारानी जयरामाकी सेवा करने लगीं। फाल्गुन कृष्ण नवमीके दिन मूल नक्षत्रमें पिछली रातके समय रानी जयरामाने सोलह स्वप्न देखे। उसी समय इन्द्रने स्वर्ग वसुन्धरासे मोह छोड़कर उसके गर्भमें प्रवेश किया। सवेरा होते ही जब उसने पति देवसे स्वप्नोंका फल पूछा। तब उन्होंने कहा कि आज तुम्हारे गर्भमें तीर्थंकर पुत्रने अवतार लिया है। वह महा पुण्य शाली पुरुष है। देखो न ! उसके गर्भमें आनेके छह माह पहलेसे प्रति दिन करोड़ों रत्न बरस रहे हैं और देवकुमारियां तुम्हारी सेवा कर रही हैं। प्राण-

नाथके मुखसे स्वप्नोंका फल सुनकर रानी जयरामा हर्षसे फूली न समाती थी। जब धीरे-धीरे गर्भका समय पूरा हो गया तब उसने मार्गशीर्ष शुक्ला प्रतिपदाके दिन उत्तम पुत्र उत्पन्न किया। उसी समय इन्द्रादि देवोंने आकर मेरु पर्वतपर क्षीर सागरके जलसे उस सद्य-प्रसूत बालकका जन्माभिषेक किया और पुष्पदन्त नाम रखा। उधर महाराज सुग्रीवने भी खुले दिलसे पुत्रोत्पत्तिका उत्सव मनाया। बालक पुष्पदन्त बाल इन्द्रकी तरह क्रम-क्रमसे बढ़ने लगे।

भगवान् चन्द्रप्रभके मोक्ष जानेके बाद नब्बे करोड़ सागर बीत जानेपर भगवान् पुष्पदन्त हुए थे। इनकी आयु भी इसी अन्तरालमें शामिल है। पुष्पदन्तकी आयु दो लाख पूर्वकी थी, शरीरकी ऊंचाई सौ धनुषकी थी और लेश्या कुन्दके फूलके समान शुक्ल थी। जब उनकी कुमार अवस्थाके पचास हजार पूर्व बीत गये थे तब उन्हें राज्य प्राप्त हुआ था। राज्यकी बागडोर ज्यों ही भगवान् पुष्पदन्तके हाथमें आई त्योंही उसकी अवस्था बिलकुल बदल गई थी। उनका राज्य क्षेत्र प्रतिदिन बढ़ता जाता था। उनके मित्र राजाओंकी संख्या न थी, प्रजा हरएक प्रकारसे सुखी थी। भगवान पुष्पदन्तका जिन कुलीन कन्याओंके साथ विवाह हुआ था उनकी रूप राशि और गुणगरिमाको देखकर देव बालाएं भी लज्जित हो जाती थीं। राज्य करते हुए जब उनके पचास हजार पूर्व और अट्ठाईस पूर्वाङ्ग और भी व्यतीत हो गये तब किसी एक दिन उल्कापात देखनेसे उनका हृदय विरक्त हो गया। वे सोचने लगे—इस संसारमें कोई भी पदार्थ स्थिर नहीं है। सूर्योदयके समय जिस वस्तुको देखता हूँ उसे सूर्यास्तके समय नहीं पाता हूँ। जिस तरह इन्धनसे कभी अग्नि सन्तुष्ट नहीं होती उसी तरह पंचेन्द्रियोंके विषयोंसे मानव अभिलाषाएं कभी सन्तुष्ट नहीं होतीं—पूर्ण नहीं होतीं। खेद है कि मैंने अपनी विशाल आयु साधारण मनुष्योंकी तरह योंही विता दी। दुर्लभ मनुष्य पर्याय पाकर मैंने उनका अभीतक सदुपयोग नहीं किया। आज मेरे अन्तरंग नेत्र खुल गये हैं जिससे मुझे कल्याणका मार्ग स्पष्ट दिख रहा है। वह यह है कि समस्त परिवार एवं राज्य कार्यसे वियुक्त हो निर्जन वनमें बैठकर आत्म ध्यान करूं। लौकान्तिक देवोंने भी आकर उनके विचारोंका समर्थन किया जिससे उनका

वैराग्य और भी बढ़ गया। निदान सुमति नामक पुत्रके लिये राज्यका भार सौंपकर देव निर्मित 'सूर्यप्रभा' पालकीपर सवार हो पुष्पक बनमें गये। वहां उन्होंने मार्ग शीर्ष शुक्ला प्रतिपदाके दिन शामके समय एक हजार राजाओं-के साथ जिन दीक्षा ले ली। उसी समय उन्हें मनः पर्यय ज्ञान प्राप्त हो गया था। देव लोग तपः कल्याणकका उत्सव मनाकर अपने अपने स्थानोंपर वापिस चले गये। जब वे दो दिन बाद आहार लेनेके लिये शैलपुर नामके नगरमें गये तब उन्हें वहांके राजा पुष्पमित्रने विनय पूर्वक पड़गाह कर नवधा भक्तिसे सुन्दर सुस्वादु आहार दिया। पात्र दानसे प्रभावित होकर देवों ने राजा पुष्प-मित्रके घरपर पंचाश्चर्य प्रकट किये। भगवान पुष्पदन्त आहार लेकर बनमें लौट आये और वहां पहलेकी तरह फिरसे आत्म ध्यानमें लीन हो गये। वे ध्यान पूर्ण होनेपर कभी प्रतिदिन और कभी दो तीन चार या इससे भी अधिक दिनोंके अन्तरालसे पासके किसी नगरमें आहार लेनेके लिये जाते थे और वहांसे लौटकर पुनः बनमें ध्यानैकतान हो जाते थे। इस तरह तपश्च-रण करते हुए जब उनकी छद्मस्थ अवस्थाके चार वर्ष व्यतीत हो गये तब वे दो दिनके उपवासकी प्रतिज्ञा लेकर पुष्पक नामक दीक्षा बनमें नाग वृक्षके नीचे ध्यान लगाकर बैठ गये। वहींपर उन्हें कार्तिक शुक्ला द्वितियाके दिन मूल-नक्षत्रमें शामके समय घातिया कर्मोंका नाश होनेसे केवल ज्ञान आदि अनन्त चतुष्टय प्राप्त हो गये थे।

देवोंने आकर उनके ज्ञान कल्याणकका उत्सव मनाया। इन्द्रकी आज्ञासे राज-कुवेरने सुन्दर और सुविशाल समवसरणकी रचना की। उसके मध्य में स्थित होकर भगवान पुष्पदन्तने अपने दिव्य उपदेशसे समस्त जीवों को सन्तुष्ट किया। फिर इन्द्रकी प्रार्थनासे उन्हों ने देश-विदेशमें घूमकर सद्धर्म-का प्रचार किया। उनके समवसरणमें विदर्भ आदि अठासी गणधर थे, पन्द्रह सौ श्रुतकेवली द्वादशांगके जानकार थे, एक लाख पचपन हजार पांच सौ शिक्षक थे. आठ हजार चार सौ अवधिज्ञानी थे, तेरह हजार विक्रिया ऋद्धिके धारक थे, सात हजार पांच सौ मनः पर्यय ज्ञानी और छह हजार छह सौ वादी थे। इस तरह सब मिलाकर दो लाख मुनिराज थे। घोषार्याको आदि

लेकर तीन लाख अस्सी हजार आर्यिकाएं थीं। दो लाख श्रावक थे, पांच लाख श्राविकाएं थीं, असंख्यात देव देवियां और संख्यात तिर्यंच थे।

सब देशों में विहार कर चुकनेके बाद वे आयुके अन्त समयमें सम्मेद-शिखरपर जा पहुंचे। वहां उन्हों ने एक हजार मुनियों के साथ योग निरोध किया और अन्तमें शुक्ल ध्यानके द्वारा अघातिया कर्मोंका नाशकर भादों सुदी अष्टमीके दिन मूल नक्षत्रमें सन्ध्याके समय मोक्ष प्राप्त किया। उसी समय इन्द्रादि देवों ने आकर उनके निर्वाण कल्याणकी पूजा की। भगवान पुष्पदन्त-का ही दूसरा नाम सुविधिनाथ था।



भगवान शीतलनाथ

न शीतलाश्चन्दन चन्द्ररश्मयो
न गांगमम्भो नचहार यष्टयः।
यथामुनेस्तेऽनघ वाक्यरश्मयः
शमाम्बुगर्भाः शिशिरा विपश्चिताम्॥ आचार्य समंतभद्र

"हे अनघ! शान्तिरूप जलसे युक्त आपकी वचन रूपी किरणें विद्वानोंके लिये जितनी शीतल हैं उतनी शीतल न चन्द्रमाकी किरणें हैं, न चन्दन है, न गंगानदीका पानी है और न मणियोंका हार ही है।—आपके वचनोंकी शीतलतामें संसारका संताप क्षण एकमें दूर हो जाता है।"

[२] पूर्वभव परिचय

पुष्कर द्वीपके पूर्वार्ध भागमें जो मन्दरगिरि है उससे पूर्वकी ओर विदेह क्षेत्रमें सीतानदीके पश्चिम किनारेपर वत्स नामका देश है। उसके सुसीमा नगरमें राजा पद्मगुल्म राज्य करते थे। वे हमेशा साम, दाम, दण्ड और भेद इन चार उपायोंसे पृथ्वीका पालन करते थे। सन्धि, विग्रह आदि राजोचित

गुणोंसे परिचित थे। शरद् ऋतुके चन्द्रमाकी तरह उनका निर्मल यश समस्त देशमें फैला हुआ था। वे अत्यन्त प्रतापी होकर भी साधु स्वाभावी पुरुष थे।

एक दिन महाराज पद्मगुल्म राज सभामें बैठे हुए थे कि वनमालीने आम के बौर, कुन्दकुड्मल, और केशर आदिके फूल सामने रखकर कहा —"महाराज! ऋतुराज वसन्तके आगमनसे उद्यानकी शोभा बड़ी ही विचित्र हो गई है। आमोंमें बौर लग गये हैं, उनपर बैठी हुई कोयल मनोहर गीत गाती है, कुन्दके फूलोंसे सब दिशाएं सफेद सफेद हो रही है, मौलिश्रीके सुगन्धित फूलोंपर मधुप गुञ्जार कर रहे हैं तालावोंमें कमलके फूल फूल रहे और उनकी पीली केशरसे तालावोंका समस्त पानी पीला हो रहा है। उद्यानकी प्रत्येक वस्तुएं आपके शुभागमनकी आशंसामें लीन हो रही है।"

वनमालीके मुखसे वनमें वसन्तकी शोभाका वर्णन सुनकर महाराज पद्मगुल्म बहुत ही हर्षित हुए। उसी समय उन्होंने वनमें जाकर वसन्तोत्सव मनानेकी आज्ञा जारी कर दी जिससे नगरके समस्त पुरुष अपने अपने परिवार के साथ वसन्तका उत्सव मनानेके लिये वनमें जा पहुंचे। राजा पद्मगुल्म भी अपनी रानियों और मित्र वर्गके साथ वनमें पहुंचे और वहीं रहने लगे। उन दिनों में वहां नृत्य, संगीत आदि बड़े बड़े उत्सव मनाये जा रहे थे इसलिये क्रम क्रमसे वसन्तके दो माह व्यतीत हो गये पर राजाको उसका पता नहीं चला। जब धीरे धीरे वनसे वसन्तकी शोभा विदा हो गई और ग्रीष्मकी तप्त लू चलने लगी तब राजाका उस ओर ख्याल गया। वहां उन्हों ने वसन्त की खोजकी पर उसका एक भी चिन्ह उनकी नजरमें नहीं आया। यह देखकर महाराज पद्मगुल्मका हृदय विषयों से विरक्त हो गया। उन्हों ने सोचा कि 'संसारके सब पदार्थ इसी वसन्तके समान क्षण भङ्गुर है। मैं जिसे नित्य समझकर तरह २ की रंगरेलियां कर रहा था आज वही वसन्त यहां नजर नहीं आता। अब न आमों में बौर दिखाई पड़ रहा है और न कहीं उनपर कोयलकी मीठी आवाज सुनाई दे रही है। अब मलयानिलका पता नहीं है किन्तु उसकी जगहपर ग्रीष्मकी यह तप्त लू वह रही है। ओह! अचेतन चीजों में इतना परिवर्तन! पर मेरे हृदयमें, भोग विलासों में कुछ भी परिवर्तन नहीं

हुआ। खेद है—कि मैंने अपनी आयुका बहुत भाग यूं ही विता दिया। पर आज मेरे अन्तरङ्ग नेत्र खुल गये हैं, आज मेरे हृदयमें दिव्य ज्योति प्रकाश डाल रही है। उसके प्रकाशमें भी क्या अपना हित न खोज सकूंगा? बस, बस खोज लिया मैंने हितका मार्ग। वह यह है कि मैं बहुत जल्दी राज्य के जञ्जालसे छुटकारा पाकर मुनि दीक्षा धारण करूं और किसी निर्जन बनमें रहकर आत्म भाण्डारको शान्ति-सुधासे भर दूं।" ऐसा विचार कर महाराज पद्मगुल्म बनसे घर वापिस आये और वहां चन्दन नामके पुत्रके लिये राज्य देकर पुनः वनमें पहुंच गये। वहां उन्होंने किन्हीं आनन्द नामक आचार्यके पास जिन दीक्षा ले ली।

अब मुनिराज पद्मगुल्म निर्जन बनमें रहकर आत्म शुद्धि करने लगे। गुरुदेवके चरण कमलोंके पास रहकर उन्होंने ग्यारह अङ्गोंतकका ज्ञान प्राप्त किया और दर्शन विशुद्धि आदि सोलह भावनाओंका चिन्तवन कर तीर्थंकर नामक महापुण्य प्रकृतिका बन्ध किया। जब आयुका अन्तिम समय आया तब वे बाह्य पदार्थोंसे सर्वथा मोह छोड़कर समाधिमें स्थित हो गये जिससे मरकर पन्द्रहवें आरण स्वर्गमें इन्द्र हुए। वहां उनकी आयु बाईस सागरकी थी, तीन हाथका शरीर था, शुक्ल लेश्या थी, ग्यारह माह बाद सुगन्धित स्वासोच्छ्वास होता और बाईस मास बाद मानसिक आहार होता था हजारों देवियां थीं, मानसिक प्रविचार था, अणिमा आदि आठ ऋद्धियां थीं और जन्मसे ही अवधि ज्ञान था। वहां उनका समय सुखसे बीतने लगा। यही इन्द्र आगे भवमें भगवान शीतलनाथ होंगे।

(२) वर्तमान परिचय

जब वहां उनकी आयु सिर्फ छह माहकी बाकी रह गई और वे पृथिवीपर जन्म लेनेके लिये तत्पर हुए तब इसी जम्बू द्वीपके भरत क्षेत्रमें मलय देशके भद्रपुर नगरमें इक्ष्वाकुवंशीय दृढ़रथ नामके राजा राज्य करते थे। उनकी महारानीका नाम सुनन्दा था। भगवान शीतलनाथके गर्भमें आनेके छह माह पहलेसे ही देवोंने दृढ़रथ और सुनन्दाके घरपर रत्नोंकी वर्षा करनी शुरू कर दी। चैत्र कृष्ण अष्टमीके दिन पूर्वाषाढ़ा नक्षत्रमें महारानी सुनन्दाने रात्रिके

पिछले समय सोलह स्वप्न देखे। उसी समय उक्त इन्द्रने स्वर्ग भूमि छोड़कर उसके गर्भमें प्रवेश किया। पतिके मुखसे स्वप्नोंका फल सुनकर सुनन्दा रानीको जो हर्ष हुआ उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। उसी दिन देवोंने आकर स्वर्गीय वस्त्राभूषणोंसे राज दम्पतीकी पूजा की और गर्भ कल्याणकका उत्सव मनाया। माघ कृष्णा द्वादशीके दिन पूर्वाषाढ़ नक्षत्रमें सुनन्दाके उदरसे भगवान शीतलनाथका जन्म हुआ। देवोंने मेरु पर्वतपर ले जाकर उनका जन्माभिषेक किया और वहांसे आकर भद्रपुरमें धूमधामसे जन्मका उत्सव मनाया। इन्द्रने बन्धु बान्धवोंकी सलाहसे उनका शीतलनाथ नाम रखा जो वास्तवमें योग्य था क्योंकि उनकी पावन मूर्ति देखनेसे प्राणि मात्रके हृदय शीतल हो जाते थे। राज परिवारमें बड़े ही दुलारसे उनका पालन हुआ था। पुष्पदन्त स्वामीके मोक्ष जानेके बाद नौ करोड़ सागर बीत जानेपर भगवान शीतलनाथ हुए थे। इनके जन्म लेनेके पहिले पल्यके चौथाई भागतक धर्मका विच्छेद हो गया था। इनकी आयु एक लाख पूर्वकी थी और शरीर नब्बे धनुष ऊंचा था। इनका शरीर सुवर्णके समान स्निग्ध पीत वर्णका था जब आयुका चौथाई भाग कुमार अवस्थामें बीत गया तब इन्हें राज्यकी प्राप्ति हुई थी राज्य पाकर इन्होंने भलीभांति राज्यका पालन किया और धर्म, अर्थ कामका समान रूपसे सेवन किया था।

किसी एक दिन भगवान शीतलनाथ घूमनेके लिये एक वनमें गये थे। जब वे वनमें पहुंचे थे तब वनमें सब वृक्ष हिम'ओससे आच्छादित थे। पर थोड़ी देर बाद सूर्यका उदय होनेसे वह हिम-ओस अपने आप नष्ट हो गई थी। यह देखकर उनका हृदय विषयोंकी ओरसे सर्वथा हट गया। उन्होंने संसारके सब पदार्थोंको हिमके समान क्षण भंगुर समझकर उनसे राग भाव छोड़ दिया और वनमें जाकर तप करनेका दृढ़ निश्चय कर लिया। उसी समय लौकान्तिक देवोंने आकर इनके उक्त विचारोंका समर्थन किया जिससे उनकी वैराग्य धारा और भी अधिक वेगसे प्रवाहित हो उठी। निदान आप पुत्रके लिये राज्य सौंपकर देव निर्मित शुक्र प्रभा पालकीपर सवार हो सहेतुक वनमें पहुंचे और वहां माघ कृष्ण द्वादशीके दिन पूर्वाषाढ़ नक्षत्रमें शामके समय

एक हजार राजाओंके साथ दीक्षित हो गये। आपके दीक्षा लेते ही मनः पर्यय ज्ञान प्राप्त हो गया था।

भगवान शीतलनाथ दो दिनके उपवासके बाद आहार लेनेकी इच्छासे अरिष्ट नामक नगरमें गये। वहां राजा पुनर्वसुने बड़ी प्रसन्नतासे नवधा भक्ति पूर्वक उन्हें आहार दिया। पात्र दानके प्रभावसे राजा पुनर्वसुके घर पर देवोंने पञ्चाश्चर्य प्रकट किये। इस तरह तपश्चरण करते हुए उन्होंने अल्पज्ञ अवस्थामें तीन वर्ष बिताये। फिर पौष कृष्ण चतुर्दशीके दिन शामके समय पूर्वाषाढ़ नक्षत्रमें उन्हें दिव्य आलोक केवल ज्ञान प्राप्त हुआ। उसी समय देवोंने आकर ज्ञान कल्याणका उत्सव मनाया। इन्द्रकी आज्ञासे कुवेरने समवसरणकी रचना की उसके मध्यमें स्थित होकर आपने सार्व धर्मका उपदेश देकर उपस्थित जनताको सन्तुष्ट किया। इन्द्रको प्रार्थनासे उन्होंने अनेक देशोंमें विहार कर संसार और मोक्षका स्वरूप बतलाया, दार्शनिक गुत्थियां सुलझाईं और सबको हितका मार्ग बतलाया था। उनके उपदेशके प्रभावसे लोगोंके हृदयोंसे धर्म कर्मकी शिथिलता उस तरह दूर हो गई थी जिस तरहकी सूर्यके प्रकाशसे अन्धकार दूर हो जाता है।

उनके समवसरणमें ऋद्धियों और मनः पर्यय ज्ञानके धारक इक्यासी गणधर थे। चौदह सौ द्वादशाङ्कके जानकार थे। उनसठ हजार दो सौ शिक्षक थे, सात हजार दो सौ अवधिज्ञानी थे, सात हजार केवल ज्ञानी थे, बारह हजार विक्रिया ऋद्धिके धारक थे, सात हजार पांच सौ मनः पर्यय ज्ञानी थे, और पांच हजार सात सौ वादी मुनि थे। इस तरह सब मिलकर एक लाख मुनि थे धारणा आदि तीन लाख अस्सी हजार आर्यिकायें थीं, दो लाख श्रावक थे, चार लाख श्राविकायें थी, असंख्यात देव देवियां और संख्यात तिर्यञ्चथे।

जब भगवान् शीतलनाथकी दिव्यध्वनि खिरती थी तब समस्त सभा चित्र लिखित सी नीरव और स्तब्ध हो जाती थी। वे आयुके अन्त समय में सम्मेद शिखरपर पहुंचे वहां एक महीनेका योग निरोध कर हजार मुनियोंके साथ प्रतिमा योगसे बिराजमान हो गये और आश्विन शुक्ला अष्टमीके दिन पूर्वाषाढ़ा नक्षत्रमें शामके समय अघातिया कर्मोंका नाश कर स्वातन्त्र्य सदन-

मोक्ष महलको प्राप्त हुए। देवोंने आकर निर्वाण भूमिकी पूजा की और उनके शरीरकी भस्म अपने शरीरमें लगाकर आनन्दसे गाते, नाचते हुए अपने अपने स्थानोंपर चले गये।

इनके तीर्थके अन्त समयमें काल दोषसे वक्ता श्रोता और धर्मात्मा लोगों के अभाव होनेसे समीचीन धर्म लुप्तप्राय हो गया था।



भगवान श्रेयान्सनाथ

निर्धूय यस्य निज जन्मनि सत्यमस्त,
मान्ध्यं चराचर मशेष मवेक्षमाणम्।
ज्ञानंप्रतीप विरहान्निज रूप संस्थं
श्रेयान् जिनः सदिशता दशिवच्युतिंवः॥ —आचार्य गुणभद्र

'उत्पन्न होते ही समस्त अज्ञान अन्धकारको नष्ट करके सब चर अचर पदार्थोंको देखने वाला जिनका उत्तम ज्ञान बाधक कारणोंका अभाव होनेसे अपने स्वरूपमें स्थिर हो गया था वे श्रीश्रेयान्स जिनेन्द्र तुम सबके अमंगलकी हानि करें।"

[१] पूर्वभव वर्णन

पुष्कर द्वीपके पूर्वमेरुसे पूर्व दिशाकी ओर विदेह क्षेत्रमें एक सुकच्छ नामका देश है। उसमें सीता नदीके उत्तर तट पर एक क्षेमपुर नगर था। क्षेमपुर नगरमें रहने वाले मनुष्योंको हमेशा क्षेम मङ्गल प्राप्त होते रहते थे इसलिये उसका क्षेमपुर नाम बिलकुल सार्थक था। किसी समय उसमें नलिनप्रभ नामका राजा राज्य करता था। उसका शरीर बहुत ही सुन्दर था। उसने अनुपम बाहुबलसे समस्त क्षत्रियोंको जीत कर अपना राज्य निष्कण्टक बना लिया था। वह उत्साह, मन्त्र और प्रभाव इन तीन शक्तियोंसे तथा इनसे

प्राप्त हुई तीन सिद्धियोंसे संयुक्त था। उसकी बुद्धिका तो ठिकाना नहीं था। अच्छे अच्छे मन्त्री जिन कामोंका विचार भी नहीं कर सकते थे और जिन सामयिक समस्याओंको नहीं सुलझा पाते थे उन्हें वह अनायास ही सोच लेता और सुलझा देता था। उसका अन्तःपुर सुन्दरी और सुशीला स्त्रियों से भरा हुआ था। आज्ञाकारी पुत्र थे निष्कण्टक राज्य था, अटूट सम्पत्ति थी और स्वयं स्वस्थ निरोग था। इस तरह वह हर-एक तरहसे सुखी होकर प्रजाका पालन करता था। एक दिन राजा नलिनप्रभ राजसभामें बैठा हुआ था उसी समय बनमालीने आकर कहा कि सहसाम्र बनमें अनन्त नामक जिनेन्द्र आये हैं। उनके प्रतापसे बनकी शोभा बड़ी ही विचित्र हो गई है। वहां सब ऋतुएं एक साथ अपनी शोभा प्रकट कर रही हैं और सिंह हस्ती सर्प नेवला आदि जीव अपना जातीय बैर छोड़कर एक दूसरेसे हिल-मिल रहे हैं। जिनेन्द्रका आगमन सुनकर राजाको इतना हर्ष हुआ कि उसके सारे शरीरमें रोमांच निकल आये। वह बनमालीको उचित पारितोषिक देकर परिवार सहित अनन्त जिनेन्द्रकी वन्दनाके लिये सहसाम्र बनमें गया। वहां उनकी दिव्य मूर्ति देखते ही उसका हृदय भक्तिसे गद्‌गद्‌ हो गया। उसने उन्हें शिर झुकाकर प्रणाम किया। अनन्त जिनेन्द्रने प्रभावक शब्दोंमें तत्वोंका व्याख्यान किया और अन्तमें संसारके दुःखोंका निरूपण किया। जिसे सुनकर राजा नलिनप्रभ सहसा प्रतिबुद्ध हो गया वह एक दम संसारसे भयभीत हो उठा। उस समय उसकी अवस्था ठीक स्वप्न देखकर जागे हुए मनुष्यकी तरह हो रही थी। उसने उसी समय भर्राई हुई आवाजमें कहा—नाथ! इन दुःखोंसे बचनेका भी क्या कोई उपाय है? तब अनन्त जिनेन्द्रने संसारके दुःख दूर करनेके लिये सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रका वर्णन किया। देशव्रत और महाव्रतका महत्व समझाया। जिससे वह विषयोंसे अत्यन्त विरक्त हो गया उसने घर जाकर पहले तो अपने सुपुत्रके लिये राज्य दिया और फिर बनमें जाकर अनेक राजाओंके साथ जिन दीक्षा ले ली। वहां ग्यारह अङ्गोंका अभ्यास कर सोलह भावनाओंका चिन्तवन किया जिससे उसके तीर्थङ्कर नामक पुण्य प्रकृतिका बन्ध हो गया। आयुके अन्तमें सन्यास पूर्वक शरीर छोड़कर मुनिराज नलिन-

प्रभका जीव अच्युत स्वर्गके पुष्पोत्तर नामक विमानमें इन्द्र हुआ। वहां उसकी आयु बाईस सागरकी थी, शरीरकी ऊंचाई तीन हाथकी थी, लेश्या शुक्ल थी और जन्मसे ही अवधिज्ञान था। वहांपर अनेक सुन्दरी देवियोंके साथ बाईस सागर तक तरह तरहके सुख भोगता रहा। यही इन्द्र आगेके भवमें भगवान् श्रेयान्सनाथ होगा।

वर्त्तमान परिचय

जब वहांपर उसकी आयु सिर्फ छह माहकी शेष रह गई और वह पृथ्वी पर जन्म लेनेके लिये सम्मुख हुआ। उस समय इसी जम्बू द्वीपके भरत क्षेत्र के सिंहपुर नगरमें इक्ष्वाकु वंशीय विष्णु नामके राजा राज्य करते थे। उनकी महादेवीका नाम सुनन्दा था। ऊपर कहे हुए इन्द्रने ज्येष्ठ कृष्ण षष्टीके दिन श्रवण नक्षत्रमें रात्रिके अन्तिम भागमें स्वर्ग भूमिको छोड़कर सुनन्दा महारानीके गर्भमें प्रवेश किया। उस समय सुनन्दाने हाथी बैल आदि सोलह स्वप्न देखे थे। सवेरा होते ही उसने प्राणनाथ विष्णु महाराजसे स्वप्नोंका फल सुना जिससे वह बहुत ही प्रसन्न हुई। उसी समय देवोंने आकर राज दम्पतीका खूब सत्कार किया और गर्भ कल्याणकका उत्सव मनाया। वह गर्भस्थ बालकका ही प्रभाव था जो उसके गर्भमें आनेके छह माह पहलेसे लेकर पन्द्रह माहतक महाराज विष्णुके घरपर प्रति दिन रत्नोंकी वर्षा होती रही और देवकुमारियां महारानी सुनन्दाकी शुश्रूषा करती रहीं।

धीरे-धीरे गर्भका समय व्यतीत होनेपर फाल्गुन कृष्ण एकादशीके दिन श्रवण नक्षत्रमें सुनन्दा देवीने पुत्र रत्न उत्पन्न किया। उस समय अनेक शुभ शकुन हुए थे। देवोंने मेरु पर्वतपर ले जाकर बालकका कलशाभिषेक किया। फिर सिंहपुर वापिस आकर कई तरहसे जन्म महोत्सव मनाया। इन्द्रने महाराज विष्णुकी सलाहसे बालकका श्रेयान्स नाम रखा। जो ठीक था, क्योंकि वह आगे चलकर समस्त प्रजाको श्रेयोमार्ग—मोक्ष मार्गमें प्रवृत्त करेगा। उत्सव समाप्त कर देव लोग अपनी अपनी जगहपर वापिस चले गये। पर जाते समय इन्द्र ऐसे अनेक देव कुमारोंको वहींपर छोड़ गया था जो अपनी

लीलाओंसे बालक श्रेयान्सनाथको हमेशा प्रसन्न रखा करते थे। राज्य परिवारमें बड़े प्यारसे उनका पालन होने लगा।

इन्द्र स्वर्गसे उनके लिये अच्छे अच्छे वस्त्र आभूषण और खिलौना वगैरह भेजा करता था। शीतलनाथ स्वामीके मोक्ष जानेके बाद सौ सागर, छयासठ लाख, छब्बीस हजार वर्ष कम एक सागर बीत जानेपर भगवान श्रेयान्सनाथ हुए थे। इनकी आयु भी इसी अन्तरालमें शामिल है। इनका जन्म लेनेके पहिले भारतवर्षमें आधे पल्यतक धर्मका विच्छेद हो गया था। पर इनके उत्पन्न होते ही धर्मका उत्थान फिरसे होने लगा था। इनकी आयु चौरसी लाख की थी, शरीरकी ऊंचाई अस्सी धनुषकी थी और रंग सुवर्णके समान स्निग्ध पीला था।

जब उनके कुमार कालके इक्कीस लाख पूर्व बीत गये तब उन्हें राज्य प्राप्त हुआ। राज्य पाकर उन्होंने सुचारु रूपसे प्रजाका पालन किया। वे अपने बलसे हमेशा दुष्टोंका निग्रह करते और सज्जनोंपर अनुग्रह करते थे। योग्य कुलीन कन्याओंके साथ उनकी शादी हुई थी। जिससे उनका राज्य समय सुखसे बीतता था। देव लोग बीच बीचमें तरह तरहके विनोदोंसे उन्हें प्रसन्न करते रहते थे। इस तरह इन्होंने ब्यालीस लाख वर्षतक राज्य किया। इसके अनन्तर किसी एक दिन वसन्त ऋतुका परिवर्तन देखकर इन्हें वैराग्य उत्पन्न हो गया जिससे इन्होंने दीक्षा लेकर तप करनेका दृढ़ निश्चय कर लिया। उसी समय लौकान्तिक देवोंने आकर उनकी स्तुति की। चारो निकायके देवों ने दीक्षा कल्याणकका उत्सव किया। भगवान श्रेयान्सनाथ श्रेयस्कर नामक पुत्रके लिये राज्य देकर देवनिर्मित 'वमलप्रभा' पालकीपर सवार हो गये। देव लोग उस पालकीको मनोहर नामके उद्यानमें ले गये। वहां उन्होंने दो दिनके उपवासकी प्रतिज्ञा कर फाल्गुन कृष्णा एकादशीके दिन श्रवण नक्षत्रमें सवेरेके समय एक हजार राजाओंके साथ दिगम्बर दीक्षा ले ली। उन्हें दीक्षा लेते ही मनः पर्यय ज्ञान प्राप्त हो गया था। तीसरे दिन चार ज्ञानके धारण करने वाले भगवान श्रेयान्सनाथ आहार लेनेकी इच्छासे सिद्धार्थ नगरमें गये। वहां पर नन्द राजाने उन्हें भक्ति पूर्वक आहार दिया। दानके प्रभावसे राजा नन्द

के घरपर देवोंने पञ्चाश्चर्य प्रकट किये। भगवान आहार लेकर वनमें वापिस चले गये। इस तरह उन्हों ने छद्मस्थ अवस्थामें मौन पूर्वक दो वर्ष व्यतीत किये। इसके बाद दो दिनके उपवासकी प्रतिज्ञा लेकर उसी मनोहर वनमें तुम्बुर वृक्षके नीचे ध्यान लगाकर विराजमान हुये। और वहीं उन्हें माघ कृष्ण अमावास्याके दिन श्रवण नक्षत्रमें सायंकालके समय लोकालोकका प्रकाश करनेवाला पूर्णज्ञान प्राप्त हो गया। उसी समय देवोंने आकर उनका कैवल्य महोत्सव मनाया। कुवेरने समवसरणकी रचना की उसके मध्यमें सिंहासनपर अन्तरीक्ष विराजमान होकर उन्होंने अपना मौन भंग किया अर्थात् दिव्य ध्वनिके द्वारा सप्त तत्व नव पदार्थोंका वर्णन किया। जिससे प्रभावित होकर अनेक नर नारियोंने देश व्रत और महाव्रत ग्रहण किये। प्रथम उपदेश समाप्त होनेपर इन्द्रने मनोहर शब्दोंमें उनकी स्तुति की और फिर विहार करनेके लिये प्रार्थना की। आवश्यकता देखते हुए उन्होंने आर्य क्षेत्रोंमें सर्वत्र विहार कर जैन धर्मका प्रचार किया और शीतलनाथके अन्तिम तीर्थमें जो आधे पल्यतक धर्मका विच्छेद हो गया था उसे दूर किया।

आचार्य गुणभद्रने लिखा है कि उनके सतहत्तर गणधर थे, तेरहसौ ग्यारह श्रुतकेवली थे, अड़तालीस हजार दो सौ शिक्षक थे, छह हजार अवधिज्ञानी थे, छह हजार पांच सौ केवल ज्ञानी थे, ग्यारह हजार विक्रिया ऋद्धिके धारक थे, छह हजार मनः पर्यय ज्ञानी थे, और पाच हजार वादी थे।

वे आयुके अन्तमें सम्मेद शिखरपर पहुंचे और वहां एक महीने तक योग निरोध कर हजार राजाओंके साथ प्रतिमा योगसे विराजमान हो गये। वहींपर उन्होंने शुक्लध्यानके द्वारा अघातिया कर्मोंकी पचासी प्रकृतियोंका क्षय कर श्रावण शुक्ला पूर्णमासीके दिन धनिष्ठा नक्षत्रमें शामके समय मुक्तिमन्दिर-मोक्षमहलमें प्रवेश किया। देवोंने आकर उनके निर्वाण क्षेत्रकी पूजा की।



भगवान वासुपूज्य

शिवासु पूज्योऽभ्युदय क्रियासु
त्वं वासुपूज्य स्त्रिदशेन्द्र पूज्यः
मयापि पूज्योऽल्पधिया मुनीन्द्रः
दीपार्चिषा किं तपनो न पूज्यः —समन्तभद्र

'हे मुनिराज ! आप वासुपूज्य, मङ्गलामयी अभ्युदय क्रियाओंमें देवराजके द्वारा पूजनीय हैं—पूजा करनेके योग्य हैं। इसलिये मुझ अल्पबुद्धिके द्वारा भी पूजनीय हैं। क्या दीपककी ज्योतिसे सूर्य पूजनीय नहीं होता'।

पूर्व भव वर्णन

पुष्करार्ध द्वीपके पूर्व मेरुकी ओर सीता नदीने पूर्वीय तटपर एक वत्सकावती देश है। उसके रत्नपुर नामके नगरमें पद्मोत्तर नामका राजा राज्य करता था। वह धर्म अर्थ कामका पालन करते समय धर्मको कभी नहीं भूलता था। ऊषाकी लालीकी तरह उसका दिव्य प्रताप समस्त दिशाओंमें फैल रहा था। उसका यश क्षीरसागरकी तरङ्गोंके समान शुक्ल था पर उनकी तरह चञ्चल नहीं था। उसके एक धनमित्र नामका पुत्र था जिसे राज्य-भार सौंपकर वह सुखसे समय बिताता था।

किसी एक दिन मनोहर नामके पर्वतपर युगन्धर महाराजका शुभागमन हुआ। जब बनमालीने राजाके लिये उनके आगमनकी खबर दी तब वह हर्षसे पुलकित बदन हुआ परिवार सहित उनकी बन्दनाके लिये गया और भक्तिपूर्वक नमस्कार कर उचित स्थान पर बैठ गया। उस समय युगन्धर महाराज अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचि, आस्रव, संवर निर्जरा, बोधि दुर्लभ और धर्म इन बारह भावनाओंका वर्णन कर रहे थे। ज्यों ही पद्मोत्तर राजाने अनित्य आदि भावनाओंका स्वरूप सुना त्योंही उसके हृदय में वैराग्य रूपी सागर हिलोरे लेने लगा। उसे संसार और शरीरके प्रति

अत्यन्त घृणा पैदा हो गई। वह सोचने लगा कि मैंने अपना विशाल जीवन व्यर्थ ही खो दिया। जिन स्त्रियों, पुत्रों और राज्यके लिये मैं हमेशा व्याकुल रहता हूँ। जिनके लिये मैं बुरेसे बुरे कार्य करनेमें नहीं हिचकिचाता वे एक भी मेरे साथ नहीं जावेंगे। मैं अकेला ही दुर्गतियोंमें पड़कर दुःखकी चक्कियों में पीसा जाऊंगा। ओह! कितना था मेरा अज्ञान? अभीतक मैं जिन भोगों को सबसे अच्छा मानता था आज वे ही भोग काले सर्पोंकी तरह भयानक मालूम होते हैं। धन्य है महाराज युगंधरको। जिनके दिव्य उपदेशसे पथ भ्रान्त पथिक ठीक रास्तेपर पहुंच जाते हैं। इन्होंने मेरे हृदयमें दिव्य ज्योति का प्रकाश फैलाया है। जिससे मैं आज अच्छे और बुरेका विचार कर सकने के लिये समर्थ हुआ हूँ। अब जबतक मैं समस्त परिग्रह छोड़कर निर्ग्रन्थ न हो जाऊंगा, इस निर्जन वनके विशुद्ध वायुमण्डलमें निवास नहीं करूंगा तब तक मुझे चैन नहीं पड़ सकती, इत्यादि विचार कर वह घर गया और युवराज धनमित्रके लिये राज्य देकर निःशल्य हो अनेक राजाओंके साथ वनमें जाकर दीक्षित हो गया। दीक्षित होनेके बाद राजा नहीं मुनिराज पद्मोत्तर ने खूब तपश्चरण किया। निरन्तर शास्त्रोंका अध्ययन कर ग्यारह अङ्गोंका ज्ञान प्राप्त किया और दर्शन विशुद्धि आदि सोलह भावनाओंका चिन्तवन कर तीर्थंकर नामा नाम कर्मकी पुण्य प्रकृतिका बन्ध किया।

तदनन्तर आयुके अन्तमें संन्यास पूर्वक शरीर छोड़कर महाशुक्र स्वर्गमें महाशुक्र नामका इन्द्र हुआ। वहां उसकी सोलह सागरकी आयु थी, चार हाथका शरीर था, पद्मलेश्या थी। वह आठ महीनेके बाद श्वासोच्छ्वास लेता और सोलह हजार वर्ष बाद आहार ग्रहण करता था। अणिमा, महिमा आदि ऋद्धियोंका स्वामी था। उसे जन्मसे ही अवधि ज्ञान प्राप्त हो गया था जिससे वह नीचे चौथे नरकतककी बात जान लेता था। वहां अनेक देवियां अपने दिव्य रूपसे उसे लुभाती रहती थीं। यही इन्द्र आगेके भवमें भगवान वासुपूज्य होगा। कहां? किसके? कब? सो सुनिये।

(२) वर्तमान परिचय

इसी जम्बू द्वीपके भरत क्षेत्रमें एक चम्पा नगर है उसमें इक्ष्वाकुवंशीय राजा वासुपूज्य राज्य करते थे उनकी महारानीका नाम जयावती था। जब ऊपर कहे हुए इन्द्रकी वहांकी आयु सिर्फ छह माहकी बाकी रह गई थी तभी से कुवेरने महाराज वसुपूज्यके घरपर रत्नोंकी वर्षा करनी शुरू कर दी और श्री, ह्री आदि देवियां महारानीकी सेवाके लिये आ गईं।

एक दिन महारानी जयावतीने रात्रिके पिछले भागमें ऐरावत आदि सोलह स्वप्न देखे। सवेरे उठकर जब उसके प्राणनाथसे उनका फल पूछा तब उन्होंने कहा—"आज आषाढ़ कृष्ण षष्टीके दिन शतभिषा नक्षत्रमें तुम्हारे गर्भमें किसी तीर्थंङ्कर बालकने प्रवेश किया है। ये स्वप्न उसीकी विभूतिके परिचायक हैं। याद रखिये उसी दिन उसी इन्द्रने वसुन्धरा छोड़कर रानी जयावती के गर्भमें प्रवेश किया था। चतुर्णिकायके देवोंने आकर गर्भ कल्याणका उत्सव मनाया और उत्तम उत्तम आभूषणोंसे राजा रानीका सत्कार किया।

अनुक्रमसे गर्भके दिन पूर्ण होनेपर रानीने फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशीके दिन पुत्र रत्नका प्रसव किया। उसी समय हर्षसे नाचते गाते हुए समस्त देव और इन्द्र चम्पा नगर आये और वहांसे बाल तीर्थंकरको ऐरावत हाथीपर बैठाकर मेरु पर्वतपर ले गये। वहां सौधर्म और ऐशान इन्द्रने उनका क्षीर सागरके जलसे अभिषेक किया। अभिषेकके बादमें इन्द्राणीने सुकोमल वस्त्रोंसे उनका शरीर पोंछकर उसमें उत्तम उत्तम आभूषण पहिनाये और इन्द्रने मनोहर शब्दोंमें स्तुति की। यह सब कर चुकनेके बाद देव लोग बाल तीर्थंकरको चम्पा नगरमें वापिस ले आये। बालकका अतुल्य ऐश्वर्य देखकर माता जयावतीका हृदय मारे आनन्दसे फूला न समाता था। इन्द्रने अनेक उत्सव किये बन्धु-बान्धवोंकी सलाहसे उनका वासुपूज्य नाम रखा और उनके विनोदके लिये अनेक देवकुमारोंको छोड़कर सबके साथ स्वर्गको ओर प्रस्थान किया।

यहां राज्य परिवारमें बड़े प्रेमसे भगवान वासुपूज्यका लालन पालन होने लगा। भगवान श्रेयान्सनाथके मोक्ष चले जानेके बाद चौअन सागर व्यतीत होनेपर वासुपूज्य स्वामी हुए थे। इनकी आयु भी इसी प्रमाणमें शामिल है

क्योंकि हरएक जगह जो अन्तराल बतलाया गया है वह एक तीर्थंकरके बाद दूसरे तीर्थंकरके मोक्ष होने तकका है, जन्म तकका नहीं है। उनकी आयु बहत्तर लाख वर्षकी थी, शरीरकी ऊंचाई सत्तर धनुषकी थी और रंग केसरके समान था। आपके जन्म लेनेके पहले तीन पल्यतक भारतवर्षमें धर्मका विच्छेद रहा था पर ज्योंही आप उत्पन्न हुए त्योंही लोग पुनः जैन धर्ममें दीक्षित हो गये थे। जब उनके कुमार कालके अठारह लाख वर्ष बीत चुके तब महाराज वासुपूज्यने उन्हें राज्य देकर उनकी शादी करनी चाही। पर किसी कारणसे उनका हृदय विषय भोगोंसे सर्वथा विरक्त हो गया। उन्होंने न राज्य लेना स्वीकार किया और न विवाह ही करना। किन्तु उदासीन होकर दुःखमय संसार का स्वरूप सोचने लगे। उन्होंने क्रम क्रमसे अनित्य आदि भावनाओंका विचार किया जिससे उनका वैराग्य परम अवधितक पहुंच गया। उसी समय लौकान्तिक देवोंने आकर उनकी स्तुति की और उनके विचारोंका शतशः समर्थन किया। चारों निकायके देवोंने आकर दीक्षा कल्याणकका उत्सव किया। भगवान वासुपूज्य देव निर्मित पालकीपर सवार होकर मनोहर नामके वनमें पहुंचे और वहां आप्तजनोंसे पूछकर उन्होंने फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशीके दिन विशाखा नक्षत्रमें शामके समय दो दिनके उपवासकी प्रतिज्ञा लेकर जिन दीक्षा लेली। पारणाके दिन आहार लेनेकी इच्छासे उन्होंने महानगरमें प्रवेश किया। वहांपर सुन्दर नामके राजाने उन्हें भक्ति पूर्वक आहार दिया। उससे प्रभावित होकर देवोंने उनके घरपर पंचाश्चर्य प्रकट किये। भगवान वासुपूज्य आहार लेकर पुनः वनमें लौट गये। इस तरह कठिन तपस्या करते हुए उन्होंने छद्मस्थ अवस्थाको एक वर्ष मौन पूर्वक व्यतीत किया। उसके बाद वे दीक्षा वनमें पहुंचे और वहां उपवासकी प्रतिज्ञा लेकर कदम्ब वृक्षके नीचे ध्यान लगाकर विराजमान हुए। उसी समय उन्हें माघ शुक्ला द्वितियाके दिन विशाखा नक्षत्रमें शामके समय पूर्ण ज्ञान केवल ज्ञान प्राप्त हो गया। देवोंने आकर ज्ञान कल्याणकका उत्सव मनाया। इन्द्रकी आज्ञा पाकर कुवेरने दिव्य सभा समवसरणकी रचना की। जिसके बीचमें स्थित होकर उन्होंने सात तत्व, नव पदारथ, छह द्रव्य, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र आदि अनेक

विषयोंका व्याख्यान देकर अपना मौन भंग किया।

उनके उपदेशसे प्रभावित होकर अनेक भव्य नर-नारियोंने यथाशक्ति व्रत विधान धारण किये। इन्द्रकी प्रार्थना करनेपर उन्होंने प्रायः सभी आर्य क्षेत्रोंमें विहार किया। जिससे समस्त लोग पुनः जैन धर्ममें दीक्षित हो गये। पथभ्रान्त पथिक पुनः सच्चे पथपर आ गये।

उनके समवसरणमें धर्म आदि छ्यासठ गणधर थें, बारह सौ ग्यारह अङ्ग और चौदह पूर्वके जानकार थे, उनतालीस हजार दो सौ शिक्षक थे, पांच हजार चार सौ अवधिज्ञानी थे, छह हजार केवली थे, दश हजार विक्रिया ऋद्धि के धारक थे, छह हजार मनः पर्यय ज्ञानी थे और चार हजार दो सौ वादी थे इस तरह बहत्तर हजार मुनिराज थे। इनके सिवाय सेना आदि एक लाख छह हजार आर्यिकाएं थी, दो लाख श्रावक, चार लाख श्राविकाएं, असंख्यात देव देवियां और संख्यात तिर्यंच थे।

अनेक देशोंमें विहार करनेके बाद जब उनकी आयु एक हजार वर्षकी रह गई तब वे चम्पानगरमें आये और शेष समय उन्होंने वहींपर विताया। एक माहकी आयु रहनेपर उन्होंने राजत मौलिका नदीके तटपर विद्यमान मन्दार गिरिकी सुन्दर शिखरपर मनोहर नामके वनमें योग विरोध किया और पर्यंकासनसे विराजमान हो गये। वहींपर शुक्ल ध्यानके प्रतापसे अघातिया कर्मों का क्षय कर भादों सुदी चौदशके दिन शामके समय विशाखा नक्षत्रमें मुक्ति भामिनीके अधिपति बन गये। उनके साथ चौरानवे और मुनियोंने निर्वाण लाभ किया था। देवोंने आकर भक्ति पूर्वक उनके निर्वाण क्षेत्रकी पूजा की और निर्वाण महोत्सव मनाया।



भगवान विमलनाथ

स्तिमिततम समाधि ध्वस्त निःशेष दोषं
क्रम गम करणान्तर्धान हीनाव बोधम्।
विमल ममल मूर्तिं कीर्त्तिभाजंद्युभाजां
नमत विमलताप्तौ भक्तिभारेण भव्याः ॥ —आचार्य गुणभद्र

'अत्यन्त निश्चल समाधिके द्वारा जिन्होंने समस्त दोषोंको नष्ट कर दिया है ऐसे तथा क्रम, साधन और विनाशसे रहित है ज्ञान जिन्होंका ऐसे निर्मल मूर्ति वाले और देवोंकी कीर्तिको प्राप्त होनेवाले भगवान विमलनाथको हे भव्य प्राणियो! निर्मलताकी प्राप्तिके लिये भक्तिपूर्वक नमस्कार करो।"

[१] पूर्वभव वर्णन

पश्चिम धातकीखण्ड द्वीपमें मेरु पर्वतसे पश्चिमकी ओर सीतानदीके दाहिने तटपर एक रम्यकावती देश है किसी समय वहां पद्मसेन राजा राज्य करते थे। उनकी शासन प्रणाली बड़ी ही विचित्र थी। उनके राज्यमें न कोई वर्ण-व्यवस्थाका उल्लङ्घन करता था न कोई झूठ बोलता था न कोई किसीको व्यर्थ ही सताता था, न कोई चोरी करता था और न कोई पर स्त्रियोंका अपहरण करता था। वहांकी प्रजा धर्म, अर्थ और कामका समान रूपसे पालन करती थी। एक दिन महाराज पद्मसेन राज सभामें बैठे हुए थे उसी समय वन-नामके मालीने आकर अनेक फलफूल भेंट करते हुए कहा 'कि महाराज! प्रीतिं-कर वनमें सर्वगुप्त केवलीका शुभागमन हुआ है।' राजा पद्मसेन केवलीका आगमन सुनकर अत्यन्त हर्षित हुए। उनके समस्त शरीरमें मारे हर्षके रोमांच निकल आये और आंखोंसे हर्षके आंसू बहने लगे। उसी समय उन्होंने सिंहासनसे उठकर जिस ओर परमेश्वर सर्वगुप्त विराजमान थे उस ओर सात पैंड चलकर परोक्ष नमस्कार किया। फिर समस्त परिवार और नगरके प्रतिष्ठित लोगोंके साथ साथ उनकी वन्दनाके लिये प्रीतिङ्कर नामके वनमें गये। केवली सर्वगुप्त के प्रभावसे उस वनकी अपूर्व ही शोभा हो गई थी। उसमें एक साथ छहों

ऋतुएं अपनी अपनी शोभा प्रकट कर रही थीं। महाराज पद्मसेनने विनत मूर्धा होकर केवलीके चरणोंमें प्रणाम किया और उपदेश सुननेकी इच्छासे वहीं यथोचित स्थानपर बैठ गये। केवली भगवानने दिव्य ध्वनिके द्वारा सात तत्वों का व्याख्यान किया और चतुर्गति रूप संसारके दुःखोंका वर्णन किया। संसार का दुःखमय वातावरण सुनकर महाराज पद्मसेनका हृदय एकदम विभीत हो गया। उसी समय उनके हृदयमें वैराग्य सागरकी तरल तरंगे उठने लगीं। जब केवली महाराजकी दिव्य ध्वनिसे उन्हें पता चला कि अब मेरे केवल दो भव ही बाकी रह गये हैं तब तो उनके आनन्दका ठिकाना नहीं रहा। उन्होंने घर आकर पद्म नामक पुत्रके लिये राज्य दिया और फिर बनमें जाकर उन्हीं केवलीके निकट जिन दीक्षा ले ली। उनके साथ रहकर उन्हींसे ग्यारह अङ्गोंका अध्ययन किया और दर्शन विशुद्धि आदि सोलह कारण भावनाओंका चिन्त-वन कर तीर्थंकर नामक पुण्य प्रकृतिका बन्ध किया जिससे आयुके अन्तमें संन्यासपूर्वक शरीर छोड़कर बारहवें सहस्रार स्वर्गमें सहस्रार नामके इन्द्र हुए। वहां उनकी आयु अठारह सागर की थी, एक धनुष—चार हाथ ऊंचा शरीर था, जघन्य शुक्ल लेश्या थी, वे वहां अठारह हजार वर्ष बाद आहार लेते और नौ माह बाद श्वासोच्छ्वास ग्रहण करते थे। वहां अनेक देवियां अपने अतुल्य रूपसे उनके लोचनोंको प्रसन्न किया करती थीं। उन्हें जन्मसे ही अवधिज्ञान था जिससे वे चौथे नरक तकको वार्ता जान लेते थे। वे अपनी दिव्य शक्तिसे सब जगह घूम घूमकर प्रकृतिकी अद्भुत विभूति देखते थे। यही सहस्रारेन्द्र आगे भवमें भगवान विमलनाथ होंगे।

[२] पूर्वभव परिचय

भरत क्षेत्रकी कम्पिला नगरीमें इक्ष्वाकु वंशीय राजा कृतवर्मा राज्य करते थे उनकी महारानीका नाम जयश्यामा था। पाठक जिस सहस्रारेन्द्रसे परिचित हैं उसकी आयु जब सिर्फ छह माहकी बाकी रह गई तभीसे महाराज कृतवर्मा के घर पर देवोंने रत्नोंकी वर्षा करनी शुरू कर दी। महादेवी जयश्यामाने ज्येष्ठ कृष्ण दशमीके दिन उत्तरा भाद्रपद नक्षत्रमें रात्रिके पिछले भागमें

सोलह स्वप्न देखे और उसी समय अपने मुखकमलमें प्रवेश करता हुआ एक गन्धसिन्धुर—उत्तम हाथी देखा। उसी समय उक्त इन्द्रने स्वर्गवसुन्धरासे मोह छोड़कर उसके गर्भमें प्रवेश किया सवेरा होते ही उसने प्राणनाथ कृतवर्मासे स्वप्नोंका फल पूंछा तब उन्होंने कहा कि आज तुम्हारे गर्भमें किसी तीर्थंकर बालकने अवतरण किया है। यह रत्नोंकी वर्षा और ये सोलह स्वप्न उसीकी विभूति बतला रहे हैं। इधर महाराज कृतवर्मा रानी जयश्यामाके लिये स्वप्नोंका मधुर फल सुनाकर आनन्द पहुंचा रहे थे उधर देवोंके आसन कम्पायमान हुए जिससे उन्होंने भगवान विमलनाथके गर्भावतारका निश्चय कर लिया और समस्त परिवारके साथ आकर कम्पिलापुरीमें खूब उत्सव किया। अच्छे अच्छे वस्त्राभूषणोंसे राज दम्पतीका सत्कार किया। जैसे जैसे महारानीका गर्भ बढ़ता जाता था। वैसे वैसे समस्त बन्धु बान्धवोंका हर्ष बढ़ता जाता था। नित्य प्रति होनेवाले अच्छे अच्छे शकुन सभी लोगोंको हर्षित करते थे। जब गर्भके दिन पूर्ण हो गये तब महादेवीने माघ शुक्ल चतुर्दशीके दिन उत्तरा भाद्रपद नक्षत्रमें मतिश्रुत, अवधि ज्ञानधारी पुत्र रत्नको उत्पन्न किया। उसी समय इन्द्रादि देवोंने आकर जन्म कल्याणकका उत्सव किया और अनेक प्रकारसे बाल तीर्थङ्करकी स्तुति कर उनका विमलप्रभ नाम रक्खा। भगवान विमलप्रभका राज परिवारमें बड़ी प्यारसे लालन पालन होने लगा। वे अपनी बाल्योचित चेष्टाओंसे माता पिताको अत्यन्त हर्षित करते थे। वासुपूज्य स्वामीके मोक्ष जानेके तीस सागर बाद भगवान विमलप्रभ विमलनाथ हुए थे। इनके उत्पन्न होनेके पहले एक पल्यतक भारतवर्षमें धर्मका विच्छेद हो गया था। उनकी आयु साठ लाख वर्षकी थी। शरीरकी ऊंचाई साठ धनुष और रङ्ग सुवर्णके समान पीला था। जब इनके कुमारकाल के पन्द्रह लाख वर्ष बीत गये तब इन्हें राज्यकी प्राप्ति हुई। राज्य पाकर इन्होंने ऐसे ढङ्गसे प्रजाका पालन किया जिससे इनका निर्मल यश समस्त संसारमें फैल गया था। महाराज कृतवर्माने अनेक सुन्दरी कन्याओंके साथ उनका विवाह कराया था। जिसके साथ तरह तरहके कौतुक करते हुए वे सुखसे समय बिताते थे। बीच बीचमें इन्द्र आदि देवता विनोद गोष्ठियोंके द्वारा

उनका मन बहलाते रहते थे। इस तरह हर्ष पूर्वक राज्य करते हुए जब उन्हें तीस लाख वर्ष हो गये तब वे एक दिन उषाकालमें किसी पर्वतकी शिखरपर आरूढ़ होकर सूर्योदयकी प्रतीक्षा कर रहे थे उस समय उनकी दृष्टि सहसा घासपर पड़ी हुई ओसपर पड़ी। वे उसे प्रकृतिकी अद्भुत दैनगी समझकर बड़े प्यारसे देखने लगे। उसे देखकर उन्हें सन्देह होने लगा कि यह हरी भरी मोतियोंकी खेती है ! या हृदय बल्लभ चन्द्रमाके गाढ़ आलिङ्गनसे टूटकर बिखरे हुए निशा प्रेयसीके मुक्ताहारके मोती हैं। या चकवा चकवीकी विरह वेदनासे दुःखी होकर प्रकृति महा देवीने दुःखसे आंसू छोड़े हैं? या विरहणी नारियों पर तरस खाकर कृपालु चन्द्र महाराजने अमृत वर्षा की है ? या मदनदेवकी निर्मल कीर्ति रूपी गङ्गाके जल कण बिखरे पड़े हैं' इस तरह भगवान विमल नाथ बड़े प्रेमसे उन हिमकणोंको देख रहे थे। इतनेमें प्राची दिशासे सूर्यका उदय हो आया। उसकी अरुण प्रभा समस्त आकाशमें फैल गई। धीरे-धीरे उसका तेज बढ़ने लगा। विमलनाथ स्वामीने अपनी कौतुक भरी दृष्टि हिमकणोंसे उठाकर प्राचीकी ओर डाली। सूर्यके अरुण तेजको देख कर उन्हें बहुत ही आनन्द हुआ पर प्राचीकी ओर देखते हुए भी वे उन हिमकणोंको भूले नहीं थे। उन्होंने अपनी दृष्टि सूर्यसे हटाकर ज्योंही पासकी घासपर डाली त्योंही उन्हें उन हिमकणोंका पता नहीं चला। क्योंकि वे सूर्यकी किरणोंका संसर्ग पाकर क्षण एकमें क्षितिमें विलीन हो गये थे। इस विचित्र परिवर्तनसे उनके दिलपर भारी ठेस पहुंची। वे सोचने लगे मि मैं जिन हिम कणोंको एक क्षण पहले संतृष्ण लोचनोंसे देख रहा था अब द्वितीय क्षणमें उनका पता नहीं है। क्या यही संसार है ? संसारके प्रत्येक पदार्थ क्या इसी तरह भंगुर है ? ओह ! मैं अब तक देखता हुआ भी नहीं देखता था। मैं भी सामान्य मनुष्योंकी तरह विषय वासनामें बहता चला गया। खेद ! आज मुझे इन हिमकणोंसे, ओसकी बूंदोंसे दिव्य नेत्र प्राप्त हुए हैं। मैं अब अपना कर्तव्य निश्चय कर चुका। वह, यह है कि मैं बहुत शीघ्र इस भंगुर संसारसे नाता तोड़कर अपने आप समा जाऊं। उसका उपाय दिगम्बर मुद्राको छोड़कर और कुछ नहीं है। अच्छा तो अब मुझे राज्य छोड़कर इसी निर्मल नीले

नभके नीचे बैठकर आत्मध्यान करना चाहिए।' ऐसा विचारकर भगवान विमलनाथने दीक्षा धारण करनेका दृढ़ निश्चय कर लिया। उसी समय ब्रह्मलोकने आकर लौकान्तिक देवोंने उनके विचारोंका समर्थन किया।

अपना कार्य पूरा कर लौकान्तिक देव अपने २ स्थानपर पहुंचे ही होंगे कि चतुर्निकायके देव अपनी चेष्टाओंसे वैराग्य गंगाको प्रवाहित करते हुये कम्पिला नगरी आये। भगवान् भी अन्य मनस्क हो पर्वतमालासे उतरकर घरपर आये। वहां उन्होंने अभिषेक पूर्वक पुत्रके लिये राज्य दिया और आप देव निर्मित पालकीपर सवार होकर सवेतुक वन गये। वहां पहुंचकर उन्होंने ओम् नमः सिद्धेभ्यः कहते हुये, माघ शुक्ला चतुर्थीके दिन उत्तरा भाद्रपद नक्षत्रमें शामके समय एक हजार राजाओंके साथ दीक्षा ले ली। विशुद्धिके बढ़नेसे उन्हें उसी समय मनः पर्ययय ज्ञान प्राप्त हो गया। देव लोग तपः कल्याणक का उत्सव समाप्त कर अपने अपने स्थानों पर चले गये।

भगवान् विमलप्रभ दो दिनका योग समाप्त कर तीसरे दिन आहारके लिये नन्दपुर पहुंचे। वहां उन्हें वहांके राजा जयकुमारने भक्ति पूर्वक आहार दिया। पात्रदानके प्रभावसे प्रभावित होकर जयकुमार महाराजके घरपर पञ्चाश्चर्य प्रकट किये। आहारके बाद वे पुनः बनमें लौट आये और आत्मध्यानमें लीन हो गये। इस तरह दिन दो दिनके अन्तरसे आहार लेते हुए उन्होंने मौन रहकर तीन वर्ष छद्मस्थ अवस्थामें बिताये। इसके बाद उसी सहेतुक वनमें दो दिनके उपवासकी प्रतिज्ञा लेकर जामुनके पेड़के नीचे ध्यान लगाकर विराजमान हुये। जिससे उन्हें माघ शुक्ला षष्टीके दिन शामके समय उत्तरा भाद्रपद नक्षत्रमें घातिया कर्मोंका नाश होनेसे पूर्णज्ञान-केवलज्ञान प्राप्त हो गया। उसी समय देवोंने आकर ज्ञान कल्याणकका उत्सव किया। इन्द्रकी आज्ञासे कुबेरने समवसरणकी रचना की। उसके मध्यमें सुवर्ण सिंहासनपर अन्तरीक्ष विराजमान होकर उन्होंने अपना मौनभंग किया, दिव्य उपदेशोंसे समस्त जनताको सन्तुष्ट कर दिया। जब उनका प्रथम उपदेश समाप्त हुआ तब इन्द्रने मधुर शब्दोंमें स्तुति कर उनसे अन्यत्र विहार करनेकी प्रार्थना की। इन्द्रकी प्रार्थना सुनकर उन्होंने प्रायः समस्त आर्य देशोंमें विहार किया, अनेक

भव्य प्राणियोंका संसार-सागरसे समुद्धार किया। जगह-जगह स्याद्वाद् वाणीके द्वारा जीव जीवादि तत्वोंका व्याख्यान किया। उनके उपदेशसे प्रभावित होकर अनेक नर नारियोंने देशव्रत और महाव्रत ग्रहण किये थे।

आचार्य गुणभद्रने लिखा है कि उनके समवसरणमें 'मन्दर' आदि पचपन गणधर थे, ग्यारह सौ द्वादशांगके वेत्ता थे, छत्तीस हजार पांच सौ तीस शिक्षक थे, चार हजार आठ सौ अवधिज्ञानी थे, पांच हजार पांच सौ केवली थे। नौ हजार विक्रिया ऋद्धिके धारण करने वाले थे, पांच हजार पांच सौ मनः पर्यय ज्ञानी थे और तीन हजार छह सौ वादी थे। इस तरह सब मिला कर अड़सठ हजार मुनिराज थे। 'पद्मा' आदि एक लाख तीन हजार आर्यिकाएं थीं, दो लाख श्रावक, चार लाख श्राविकाएं, असंख्यात देव देवियां और संख्यात तिर्यंच थे।

जब आयुका एक माह बाकी रह गया तब वे सम्मेद शिखरपर आ विराजमान हुए। वहां उन्होंने योग निरोधकर आषाढ़ कृष्ण अष्टमीके दिन शुक्ल ध्यानके द्वारा अवशिष्ट अघातिया कर्मोंका संहार किया और अपने शुभ समागमसे मुक्ति बल्लभाको सन्तुष्ट किया। उसी समय देवोंने आकर उनके निर्वाण क्षेत्रकी पूजा की।



भगवान अनन्तनाथ

त्वमीदृशस्तादृश इत्ययं मम
प्रलापलेशोऽल्पमते महामुने।
अशेष माहात्म्य मनीर यन्नपि
शिवाय संस्पर्श इवामृताम्बुधेः॥ —आचार्य समन्तभद्र

हे महामुने! आप ऐसे हो, वैसे हो, मुझ अल्पमतिका यह प्रलाप, जब

कि समस्त माहात्म्यको प्रकट नहीं कर रहा है तब भी सुधा सागरके स्पर्शके समान कल्याणके लिये ही है।

(१) पूर्वभव वर्णन

धातकी खण्ड द्वीपमें पूर्व मेरुकी ओर उत्तर दिशामें एक आरिष्ट नामका नगर है जो अपनी शोभासे पृथिवीका स्वर्ग कहलाता है। उसमें किसी समय पद्मरथ राजा राज्य करता था। उसकी प्रजा हमेशा उससे सन्तुष्ट रहती थी वह भी प्रजाकी भलाईके लिये कोई बात उठा नहीं रखता था। एक दिन वह स्वयंप्रभ तीर्थंकरकी बन्दनाके लिये गया। वहांपर उसने भक्ति पूर्वक स्तुति की और समीचीन धर्मका व्याख्यान सुना। व्याख्यान सुननेके बाद वह सोचने लगा कि सब इन्द्रियोंके विषय क्षण भङ्गुर हैं। धन पैरकी धूलिके समान है, यौवन पहाड़ी नदीके वेगके समान है, आयु जलके बबूलोंकी तरह चपल है और भोग सर्पके भोग-फणके समान भयोत्पादक है। मैं व्यर्थ ही राज्य कार्य में उलझा हुआ हूँ, ऐसा विचार कर उसने धनमित्र पुत्रके लिये राज्य देकर किन्हीं आचार्य वर्यके पास दिगम्बर दीक्षा ले ली। उन्हींके पास रहकर उसने ग्यारह अङ्गोंका अध्ययन किया और दर्शन विशुद्धि आदि सोलह भावनाओं-का चिन्तवन कर तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध किया। वह आयुके अन्तमें सन्यास पूर्वक मरकर सोलहवें अच्युत स्वर्गके पुष्पोत्तर विमानमें देव हुआ। वहांपर उसकी आयु बाईस सागरकी थी, साढ़े तीन हाथ ऊंचा शरीर था और शुक्ल लेश्या थी। वह ग्यारह माह बाद स्वासोच्छास लेता और बाईस हजार वर्ष बाद मानसिक आहार ग्रहण करता था। उसके अनेक देवियां थीं जो अपने दिव्य रूपसे उसे हमेशा सन्तुष्ट किया करती थीं। वहांपर कायिक प्रवीचार मैथुन नहीं था। किन्तु मनमें देवांगनाओंकी अभिलाषा मात्रसे उसकी काम-व्यथा शान्त हो जाती थी। वह अपने सहजात अवधि ज्ञानसे सातवें नरक तकके रूपी पदार्थोंको जानता था और अणिमा, महिमा आदि ऋद्धियोंका स्वामी था। यही देव आगे भवमें भगवान अनन्तनाथ होगा।

जम्बू द्वीपके दक्षिण भरतक्षेत्रमें अयोध्या नगरी है। उसमें किसी समय

इक्ष्वाकु वंशीय सिंहसेन राजा राज्य करते थे। उनकी महारानीका नामजय-श्यामा था। उस समय रानी जयश्यामाके समान रूपवती, शीलवती, और सौभाग्यवती स्त्री दूसरी नहीं थी। जब ऊपर कहे हुए देवकी वहांकी स्थिति छह माहकी बाकी रह गई तबसे राजा सिंहसेनके घरपर कुबेरने रत्नोंकी वर्षा करना शुरू कर दी और वापी, कूप तालाब परिखा प्राकार आदिसे शोभायमान नई अयोध्याकी रचनाकर उसमें राजा तथा समस्त नागरिकोंको ठहराया। कार्तिक कृष्णा प्रतिपदाके दिन रेवती नक्षत्रमें रात्रिके पिछले पहरमें महादेवी जयश्यामाने गजेन्द्र आदि सोलह स्वप्न देखे और अन्तमें मुंहमें घुसते हुए किसी सुन्दर हाथीको देखा। उसी समय उक्त देवने स्वर्गीय वसुधासे मोह तोड़कर उसके गर्भमें प्रवेश किया। सवेरा होते ही उसने पतिदेव महाराज सिंहसेनसे स्वप्नोंका फल पूछा। वे अवधिज्ञानसे जानकर कहने लगे कि आज तुम्हारे गर्भमें तीर्थंकर बालकने अवतार लिया है ये सब इसीके अभ्युदयके सूचक हैं। इधर महाराज रानीके सामने तीर्थङ्करके माहात्म्य और उनके पुण्य-के अतिशयका वर्णनकर रहे थे उधर देवोंके जय जय शब्दसे आकाश गूंज उठा। देवोंने आकर राज भवनकी प्रदक्षिणाएं की स्वर्गसे लाये हुए वस्त्र आभूषणोंसे राज दम्पतीका सत्कार किया तथा और भी अनेक उत्सव मनाकर अपने स्थानोंकी ओर प्रस्थान किया। यह सब देखकर रानी जयश्यामाके आनन्दका पार नहीं रहा।

धीरे धीरे गर्भके नौ मास पूर्ण होने पर उसने ज्येष्ठ कृष्ण द्वादशीके दिन बालक-भगवान अनन्तनाथको उत्पन्न किया। उसी समय देवोंने आकर बालकका मेरु पर्वत पर ले जाकर जन्माभिषेक किया और फिर अयोध्यामें वापिस आकर अनेक उत्सव किये। इन्द्रने आनन्द नामका नाटक किया और अप्सराओंने मनोहर नृत्यसे प्रजाको अनुरञ्जित किया। सबकी सलाहसे बालकका नाम अनन्तनाथ रक्खा गया था जो कि बिलकुल ठीक मालूम होता था क्योंकि उनके गुणोंका अन्त नहीं था-पार नहीं था। जन्मोत्सवके उपलक्ष्यमें अयोध्यापुरी इतनी सजाई गई थी कि वह अपनी शोभाके सामने स्वर्गपुरीको भी नीचा समझती थी। महाराज सिंहसेनने हृदय खोलकर याचकोंको मनवां-

क्षित दान दिया। देव लोग जन्मका उत्सव पूरा कर अपने अपने घर गये। इधर राज परिवारमें बालक अनन्तनाथका बड़े प्यारसे लालन-पालन होने लगा वे अपनी बाल कालकी मनोहर चेष्टाओंसे माता पिताका कौतुक बढ़ाते थे।

भगवान् विमलनाथके बाद नौ सागर और पौन पल्य बीत जाने पर श्री अनन्तनाथ हुए थे। इनकी आयु तीस लाख वर्षकी थी, पचास धनुष ऊंचा शरीर था, स्वर्णके समान कान्ति थी इन्हें जन्मसे ही अवधि ज्ञान था। सात लाख पचास हजार वर्ष बीत जाने पर उन्हें राज्यकी प्राप्ति हुई थी। वे साम, दाम, भेद और दण्डके द्वारा राज्यका पालन करते थे। असंख्य राजा इनकी आज्ञाको मालाकी तरह अपने शिरका आभूषण बनाते थे। वे प्रजाको चाहते थे और प्रजा इनको चाहती थी। महाराज सिंहसेनने इनका कई सुन्दर कन्याओंके साथ विवाह करवाया था। जिससे इनका गृहस्थ जीवन अनन्त सुखमय हो गया था।

जब राज्य करते हुए इन्हें पन्द्रह लाख वर्ष बीत गये तब एक दिन उल्का पात होनेसे इन्हें वैराग्य उत्पन्न हो गया। इन्होंने समस्त संसारसे ममत्व छोड़कर दीक्षा लेनेका पक्का निश्चय कर लिया। उसी समय लौकान्तिक देवोंने आकर उनकी स्तुति की, उनके विचारोंकी सराहना की और अनित्य आदि बारह भावनाओंका स्वरूप प्रकट किया जिससे उनकी वैराग्य धारा और भी अधिक द्रुगतिसे वाहित होने लगी। निदान भगवान् अनन्तनाथ, अनन्त विजय नामक पुत्रके लिये राज्य देकर देव निर्मित सागर दत्ता पालकी पर सवार हो सहेतुक वनमें पहुंचे। वहां उन्होंने तीन दिनके उपवासकी प्रतिज्ञा कर ज्येष्ठ कृष्णा द्वादशीके दिन रेवती नक्षत्रमें शामके समय एक हजार राजाओंके साथ जिन दीक्षा ले ली। देवोंने दीक्षा कल्याणकका उत्सव किया। उन्हें दीक्षा लेते ही मनःपर्यय ज्ञान तथा अनेक ऋद्धियां प्राप्त हो गई थीं। प्रथम योग समाप्त हो जानेके बाद वे आहारके लिये साकेत अयोध्यापुरीमें गये। वहां पुण्यात्मा विशाखने पड़गाह कर उन्हें नवधा भक्ति पूर्वक आहार दिया। देवोंने उसके घर पर पञ्चाश्चर्य प्रकट किये। भगवान् अनन्तनाथ आहार लेनेके बाद पुनः वनमें लौट आये और वहां योग धारण कर विराजमान हो गये।

इस तरह कठिन तपश्चरण करते हुए उन्होंने छद्मस्थ अवस्थाको दो वर्ष मौन पूर्वक बिताये। इसके बाद वे उसी सहेतुक वनमें पीपल वृक्षके नीचे ध्यान लगाकर विराजमान थे कि उत्तरोत्तर विशुद्धताके बढ़नेसे उन्हें चैत्र कृष्णा अमावस्याके दिन रेवती नक्षत्रमें दिव्य आलोक-केवल ज्ञान प्राप्त हो गया। उसी समय देवोंने आकर समवसरणकी रचना की और ज्ञान कल्याणकका उत्सव किया। भगवान् अनन्तनाथने समवसरणके मध्यमें विराजमान होकर दिव्य ध्वनिके द्वारा मौन भङ्ग किया। स्याद्वाद पताकासे अङ्कित जीव अजीव तत्त्वोंका व्याख्यान किया। संसारका दिग्दर्शन कराया उसके दुःखोंका वर्णन किया। जिससे प्रति बुद्ध होकर अनेक मानवोंने मुनि दीक्षा ग्रहण की। प्रथम उपदेश समाप्त होनेके बाद उन्होंने कई जगह विहार किया। जिससे प्रायः सभी ओर जैन धर्मका प्रकाश फैल गया था। इनके उत्पन्न होनेके पहले जो कुछ धर्म का विच्छेद हो गया था वह दूर हो गया और लोगोंके हृदयोंमें धर्मसरोवर लहराने लगा। उनके समवसरणमें जय आदि पचास गणधर थे एक हजार द्वादशाङ्ग के जानकार थे, तीन हजार दो सौ वादी-शास्त्रार्थ करने वाले थे, उनतालीस हजार पांच सौ शिक्षक थे, चार हजार तीन सौ अवधि ज्ञानी थे, पांच हजार केवली थे, आठ हजार विक्रिया ऋद्धिके धारक थे। इस तरह सब मिलाकर छयासठ हजार मुनिराज थे। 'सर्व श्री' आदि एक लाख आठ हजार आर्यिकाएं थीं। दो लाख श्रावक, चार लाख श्राविकायें, असंख्यात देव देवियां और संख्यात तिर्यश्च थे। समस्त आर्य क्षेत्रोंमें विहार करनेके बाद वे आयुके अन्त में सम्मेदशिखर पर जा विराजमान हुए वहां उन्होंने छह हजार मुनियोंके साथ योग निरोध कर एक महीने तक प्रतिमा योग धारण किया। उसी समय सूक्ष्म क्रिया प्रतिपाति और व्युपरत क्रिया निवृत्ति शुक्ल ध्यानोंके द्वारा अवशिष्ट अघातिया कर्मों का नाशकर चैत्र कृष्ण अमावस्याके दिन उषाकालमें मोक्ष भवनमें प्रवेश किया। देवोंने आकर निर्वाण क्षेत्रकी पूजाकी और उनके गुण गाते हुए अपने अपने घरोंकी ओर प्रस्थान किया।



भगवान धर्मनाथ

धर्मेयस्मिन् समुद्भूता, धर्मादश सुनिर्मलाः ।
सधर्मः शर्मणे दद्या, दधर्म मप हृत्यनः ॥ —गुणभद्र

'जिन धर्मनाथमें उत्तम क्षमा आदि निर्मल दश धर्म प्रकट हुए थे वे धर्म नाथ स्वामी मेरे अधर्मको दुष्कृत्यको हरकर सुख प्रदान करें।'

[१] पूर्वभव वर्णन

पूर्व घातकी खण्डमें पूर्व दिशाकी ओर सीता नदीके दाहिने किनारेपर एक सुसीमा नामका नगर है उसमें किसी समय दशरथ नामका राजा राज्य करता था। वह बहुत ही बलवान् था। उसने समस्त शत्रुओंको जीत कर अपने राज्यकी नींव अधिक मजबूत कर ली थी। उसका प्रताप और यश सारे संसारमें फैल रहा था।

एक दिन चैत्र शुक्ला पूर्णिमाके दिन नगरके समस्त लोग वसन्तका उत्सव मना रहे थे। राजा भी उस उत्सवसे वञ्चित नहीं रहा। परन्तु सहसा चन्द्र ग्रहण देखकर उसका हृदय विषयोंसे विरक्त हो गया। वह सोचने लगा कि 'जब राजा चन्द्रमा पर ऐसी विपत्ति पड़ सकती है तब मेरे जैसे क्षुद्र नर कीटों पर विपत्ति पड़ना असम्भव नहीं है। मैं आज तक अपने शुद्ध बुद्ध स्वभावको छोड़कर व्यर्थ ही विषयोंमें उलझा रहा। हा! हन्त! अब मैं शीघ्र ही बुढ़ापा आनेके पहले ही आत्म कल्याण करनेका यत्न करूंगा-वनमें जाकर जिन दीक्षा धारण करूंगा' ऐसा सोचकर महाराज दशरथने जब अपने विचार राजसभामें प्रकट किये तब एक मिथ्यादृष्टी मन्त्री बोला-'नाथ! भूत चतुष्टय [पृथिवी, जल, अग्नि, वायु] से बने हुए इस शरीरको छोड़ कर आत्मा नामका कोई पदार्थ नहीं है। यदि होता तो जन्मके पहले और मृत्युके पश्चात दिखता क्यों नहीं? इसलिये आप ढोंगियोंके प्रपञ्चमें आकर वर्तमानके सुख छोड़ व्यर्थ ही जङ्गलोंमें कष्ट मत उठाइये। ऐसा कौन बुद्धिमान होगा जो गायके स्तनोंको छोड़ कर उसके सींगोंसे दूध दुहेगा' मन्त्रीके वचन सुनकर राजाने कहा। सचिव

तुम समीचीन ज्ञानसे सर्वथा रहित मालूम होते हो। हमारे और तुम्हारे शरीरमें जो अहम् – मैं इस तरहका ज्ञान होता है वही आत्म पदार्थकी सत्ता सिद्ध कर देता है फिर करण इन्द्रियोंमें व्यापार देखकर कर्ता-आत्माका अनुमान भी किया जा सक्ता है। इसलिये आत्म पदार्थ प्रमाण और अनुभवसे सिद्ध है। उसका विरोध नहीं किया जा सक्ता ? तुमने जो भूत चतुष्टयसे जीव की उत्पत्ति होना बतलाया है वह व्यभिचरित है क्योंकि एक ऐसे क्षेत्रमें जहां पर खुलकर हवा बह रही है अग्निके ऊपर रखी हुई जलभृत बटलोईमें किसी भी जीवकी उत्पत्ति नहीं देखी जाती। जिसके रहते हुए ही कार्य हो और उसके अभावमें न हो वही सच्चा सम्यक् हेतु कहलाता है पर यहां तो दूसरी ही बात है। यदि जन्मके पहले मृत्युके पश्चात् जीवात्माकी सिद्धि न मानी जावे तो सद्या प्रसूत (तत्कालमें उत्पन्न हुए) बालकके दूध पीनेका संस्कार कहांसे आया ? जातिस्मरण और अवधि ज्ञानसे जो मनुष्य अपने कितने ही भव स्पष्ट देख लेते हैं वह क्या है ? रही न दिखनेकी बात, सो वह अमूर्तिक इन्द्रियोंसे उसका अवलोकन नहीं हो सक्ता। क्या कभी अत्यन्त तीक्ष्ण तलवारकी धारसे आकाशका भेदन देखा गया है ? इत्यादि रूपसे मंत्रीके नास्तिक विचारोंको दूर हटा, उसे जैन तत्त्वोंका रहस्य सुना और महारथ पुत्रके लिये राज्य दे राजा दशरथ बनमें जाकर विमल बाहन नामके मुनिराजके पास दीक्षित हो गया। वहां उसने खूब तपश्चरण किया तथा सतत अभ्यासके द्वारा ग्यारह अङ्गोंका ज्ञान प्राप्त कर लिया मुनिराज दशरथने विशुद्ध हृदयसे दर्शन विशुद्धि आदि सोलह कारण भावनाओंका चिन्तवन किया जिससे उन्हें तीर्थंकर नामक महा पुण्य प्रकृतिका बन्धन हो गया वे आयुके अन्तमें सन्यास पूर्वक शरीर छोड़कर सर्वार्थसिद्धि विमानमें अहमिन्द्र हुए। वहां उनकी आयु तेतीस सागरकी थी, एक हाथ ऊंचा सफेद रङ्गका शरीर था। वे तेतीस हजार वर्ष बाद मानसिक आहार लेते और तेतीस पक्ष बाद स्वासोच्छ्वास ग्रहण करते थे। उन्हें जन्मसे ही अवधि ज्ञान था जिससे वे सातवें नरक तकके रूपी पदार्थोंको स्पष्ट रूपसे जानते देखते थे। वे हमेशा तत्त्व चर्चाओंमें ही अपना समय बिताया करते थे। कषायोंके मन्द होनेसे वहां उनकी प्रवृत्ति

ओर झुकती ही नहीं थी। वे उस आत्मीय आनन्दका उपभोग जो असंख्य विषयोंमें भी प्राप्त नहीं हो सक्ता। यही अहमिन्द्र आगेके भवमें भगवान् धर्मनाथ होगा और अपने दिव्य उपदेशसे संसारका कल्याण करेगा।

(२) वर्तमान परिचय

जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें किसी समय रत्नपुर नामका एक नगर था उसमें महासेन महाराज राज्य करते थे। उनकी महादेवीका नाम सुव्रता था। यद्यपि महासेनके अन्तःपुरमें सैकड़ों रूपवती स्त्रियां थीं तथापि उनका जैसा प्रेम महादेवी सुव्रता पर था वैसा किन्हीं दूसरी स्त्रियोंपर नहीं था। महासेन बहुत ही शूर वीर और रणधीर राजा थे। उन्होंने अपने बाहुबलसे बड़े बड़े शत्रुओंके दांत खट्टे कर अपने राज्यको बहुत ही सुविशाल और सुदृढ़ बना लिया था। मन्त्रियोंके ऊपर राज्य भार छोड़कर वे एक तरहसे निश्चिन्त ही रहते थे।

महादेवी सुव्रताकी अवस्था दिन प्रति दिन बीतती जाती थी पर उसके कोई सन्तान नहीं होती थी। एक दिन उसपर ज्यों ही राजाकी दृष्टि पड़ी त्योंही उन्हें पुत्रकी चिन्ताने धर दबाया। वे सोचने लगे कि जिनके पुत्र नहीं है संसारमें उनका जीवन निःसार है। पुत्रके अङ्ग स्पर्शसे जो सुख होता है उसकी सोलहवीं कलाको भी चन्द्र, चन्दन, हिम, हारयष्टि मलयानिलका स्पर्श नहीं पा सक्ता। जिस तरह असंख्यात ताराओंसे भरा हुआ भी आकाश एक चन्द्रमाके बिना शोभा नहीं पाता है उसी तरह अनेक मनुष्योंसे भरा हुआ भी यह मेरा अन्तःपुर पुत्रके बिना शोभा नहीं पा रहा है। क्या करूं ? कहां जाऊं ? किससे पुत्रकी याचना करूं, इस तरह सोचते हुए राजाका चित्त किसी भी तरह निश्चल नहीं हो सका। उनका बदन स्याह हो गया और मुंहसे गर्म निश्वास निकलने लगी। सच है—संसारमें सर्वसुखी होना सुदुर्लभ है। राजा पुत्र चिन्तामें दुखी हो रहे थे कि इतनेमें बनमालीने अनेक फल फूल भेंट करते हुए कहा 'महाराज! उद्यानमें प्राचेतस नामके महर्षि आये हुए हैं। उनके साथ अनेक मुनिराज हैं जो उनके शिष्य मालूम होते हैं। उन सबके समागमसे बनकी शोभा अपूर्व ही हो गई है। एक साथ छहों

ऋतुओंने वन धारामें शोभा प्रकट करदी है और सिंह व्याघ्र हाथी जीव परस्परका विरोध छोड़कर प्रेमसे ही हिल मिल रहे हैं।

वनमें मुनिराजका आगमन सुनकर राजाको इतना हर्ष हुआ कि वह शरीरमें नहीं समा सका और आंसुओंके छलसे बाहिर निकल पड़ा। उसने उसी समय सिंहासनसे उठकर मुनिराजके लिये परोक्ष प्रणाम किया तथा वनमाली को उचित पारितोषिक देकर बिदा किया। फिर समस्त परिवारके साथ मुनि बन्दनाके लिये वनमें गया। वहां उसने भक्ति पूर्वक साष्टांग नमस्कार कर प्राचेतस महर्षिसे धर्मका स्वरूप सुना, जीव अजीव आदि पदार्थोंका व्याख्यान सुना और फिर उनसे सुव्रताके पुत्र नहीं होनेका कारण पूछा। मुनिराज प्राचेतसने अपने अवधिज्ञानसे सब हाल जानकर कहा—'राजन्! पुत्रके अभावमें इस तरह दुःखी मत होओ। आपकी इस सुव्रता महारानीके गर्भसे पन्द्रह माहके बाद जगद्वन्द्य परमेश्वर धर्मनाथका जन्म होगा जो अपना तुम्हारा नहीं, सारे संसारका कल्याण करेगा।'

मुनिराजके बचनोंसे प्रसन्न होकर राजाने फिर पूंछा 'महाराज! उस जीवने किस भवमें, किस तरह और कैसा पुण्य किया था? जिससे वह इतने विशाल तीर्थंकर पदको प्राप्त होने वाला है? मैं उसके पूर्वभव सुनना चाहता हूं, तब प्राचेतस महर्षिने अपने अवधिज्ञान रूपी नेत्रसे देख कर उसके पहलेके दो भवोंका वर्णन किया जो पहले लिखे जा चुके हैं।

राजा मुनिराजको नमस्कार कर परिवार सहित अपने घर लौट आया। उसी दिनसे राजभवनमें रत्नोंकी वर्षा होनी शुरू हो गई और इन्द्रकी आज्ञा पाकर अनेक दिक्कुमारियां रानी सुव्रताकी सेवाके लिये आ गई जिससे राजाको मुनिराजके बचनों पर दृढ़ विश्वास हो गया। देव कुमारियोंने अन्तःपुरमें जाकर रानी सुव्रता की इस तरह सेवाकी कि उसका छह मासका समय क्षण एककी तरह निकल गया। वैशाख शुक्ल १३ के दिन रेवती नक्षत्रमें रानीने १६ स्वप्न देखे उसी समय उक्त अहमिन्द्रने सर्वार्थ सिद्धिके सुरम्य विमानसे सम्बन्ध तोड़कर उसके गर्भमें प्रवेश किया। सवेरा होते ही रानीने पतिदेव महासेन महाराजसे स्वप्नोंका फल पूछा। उन्होंने भी एक एक कर स्वप्नोंका फल बतलाते हुये

कहा 'कि ये सब तुम्हारे भावी पुत्रके अभ्युदयके सूचक हैं।' उसी समय देवोंने आकर गर्भ कल्याणकका उत्सव किया और स्वर्गसे लाये हुए वस्त्र आभूषणोंसे राजा रानीका खूब सत्कार किया। नौ माह बीतनेपर पुष्य नक्षत्रमें महारानी सुव्रताने तीन ज्ञानसे युक्त पुत्र उत्पन्न किया। उसी समय देवोंने मेरु पर्वत पर लेजाकर बालकका क्षीर सागरके जलसे कलशाभिषेक किया। अभिषेक विधि समाप्त होने पर इन्द्राणीने कोमल धवल वस्त्रसे शरीर पोंछकर उसमें बालोचित आभूषण पहिनाये। इन्द्रने मनोहर शब्दोंमें उसकी स्तुतिकी और धर्मनाथ नाम रक्खा। मेरु पर्वतसे लौटकर इन्द्रने भगवान् धर्मनाथको माता सुव्रताके पास भेज दिया और स्वयं नृत्य सङ्गीत आदिसे जन्मका उत्सव मना कर परिवार सहित स्वर्गको चला गया।

राज्य परिवारमें भगवान् धर्मनाथका बड़े प्रेमसे लालन पालन होने लगा। धीरे धीरे शिशु अवस्था पार कर वे कुमार अवस्थामें पहुंचे। उन्हें पूर्वभवके संस्कारसे बिना किसी गुरुके पास पढ़े हुए ही समस्त विद्यायें प्राप्त हो गईं थीं अल्प वयस्क भगवान् धर्मनाथका अद्भुत पाण्डित्य देखकर अच्छे अच्छे विद्वानोंके दिमाग चकरा जाते थे। जब धर्मनाथ स्वामीने युवावस्थामें पदार्पण किया तब उनकी नैसर्गिक शोभा और भी अधिक बढ़ गई थी। अर्द्धचन्द्रके समान विस्तृत ललाट कमल दलसी आंखें तोतासी नाक, मोतीसे दांत पूर्णचन्द्रसा मुख, शङ्खसा कण्ठ, मेरु कटकसा वक्षःस्थल, हाथीकी सूंडसी भुजायें, स्थूल कन्धे, गहरी नाभि सुविस्तृत नितम्ब सुदृढ़ ऊरु गति शील जङ्घायें और आरक्त चरण कमल। उनके शरीरके सभी अवयव अपूर्व शोभा धारण कर रहे थे। उनकी आवाज नूतन जलधरकी सुरम्य गर्जनाके समान सज्जन—मयूरोंको सहसा उत्कण्ठित कर देती थी अब वे राज्य कार्यमें भी पिताको मदद पहुंचाने लगे। एक दिन महाराज महासेनने उन्हें युवराज बनाकर राज्यका बहुत कुछ भार उनको सुपुर्द कर दिया जिससे उनके कन्धोंको बहुत कुछ आराम मिला था। किसी समय राजा महासेन राज सभामें बैठे हुए थे। उन्हींके पासमें युवराज धर्मनाथ जी विराजमान थे। मन्त्री, पुरोहित तथा अन्य सभासद भी अपने अपने योग्य स्थानोंपर बैठे हुए थे उसी द्वारपालके साथ विदर्भ देशके

कुण्डिनपुर नगरके राजा प्रताप राजका दूत सभामें आया और महाराजको सविनय नमस्कार कर उचित स्थान पर बैठ गया। राजाने उससे आनेका कारण पूछा तब उसने हाथ जोड़ कर कहा 'कि महाराज ! विदर्भदेश-कुण्डिनपुरके राजा प्रतापराजने अपनी लड़की श्रृंगारवतीका स्वयम्बर रचनेका निश्चय किया है मैं उसमें शामिल होनेके लिये युवराजको निमन्त्रण देने आया हूँ। यह श्रृंगारवतीका चित्रपट है' कहकर उसने एक चित्रपट राजाके सामने रख दिया। ज्योंही राजाकी दृष्टि उस चित्रपट पर पड़ी त्योंही वे श्रृंगारवतीका रूपदेख चकित रह गये। उन्होंने मनमें निश्चय कर लिया कि यह कन्या सर्वथा धर्मनाथके योग्य है। पर उन्होंने युवराजका अभिप्राय जाननेके लिये उनकी ओर दृष्टि डाली। युवराजने भी मन्द मुसकानसे पिताके विचारोंका समर्थन कर दिया फिर क्या था ? राजा महासेनने दूतका सत्कार कर उसे विदा किया और युवराजको असंख्य सेनाके साथ कुण्डिनपुर भेजा युवराजका एक घनिष्ट मित्र प्रभाकर था जो स्वयंवर यात्राके समय उन्हींके साथ था मार्गमें जब वे विन्ध्याचल पर पहुंचे तब प्रभाकरने मनोहर शब्दोंमें उसका वर्णन किया। वहीं एक किन्नरेन्द्रने अपनी नगरीमें लेजाकर युवराजका सन्मान किया। उनके साथकी समस्त सेना उस दिन वहीं पर सुखसे रह आई।

भगवान् धर्मनाथके प्रभावसे वहां बनमें एक साथ छहों ऋतुएं प्रकट हो गई थीं। जिससे सैनिकोंने तरह तरहकी क्रीडाओंसे मार्गश्रम-थकावट दूर की। वहांसे चलकर कुछ दिन बाद जब वे कुण्डिनपुर पहुंचे तब वहांके राजा प्रताप राजने प्रतिष्ठित मनुष्योंके साथ आकर युवराजका खूब सत्कार किया और बड़ा हर्ष प्रकट किया। प्रतापराजने युवराजको एक विशाल भवनमें ठहराया। उनके पहुंचनेसे कुण्डनपुरकी सजावट और खूब की गई थी। धीरे धीरे अनेक राजकुमार आ आकर कुण्डिनपुरमें जमा हो गये। किसी दिन निश्चित समय पर स्वयम्बर सभा सजाई गई। उनमें चारों ओर ऊंचे ऊंचे सिंहासनोंपर राजकुमार बैठाये गये। युवराज धर्मनाथने भी प्रभाकर मित्रके साथ एक ऊंचे आसनको अलंकृत किया। कुछ देर बाद कुमारी श्रृङ्गारवती हस्तिनीपर बैठकर स्वयम्बर मण्डपमें आई। उनके साथ अनेक सहेलियां भी थीं। सुभद्रा नाम-

की प्रतीहारी एक एक कर समस्त राजकुमारोंका परिचय सुनाती जाती थी। पर श्रृङ्गारवतीकी दृष्टि किसीपर भी स्थिर नहीं हुई। अन्तमें युवराज धर्मनाथ के पास पहुंचनेपर सुभद्राने कहा—'कुमारि! उत्तर कोशल देशमें रत्नपुर नामका एक सुन्दर नगर है। उसमें महाराजमहासेन राज्य करते हैं उनकी महारानीका नाम सुव्रता है। ये युवराज उन्हींके पुत्र हैं। इनका भगवान धर्मनाथ नाम है। इनके जन्म होनेके पन्द्रह माह पहलेसे देवोंने रत्न वर्षा की थी। इस समय भारतवर्षमें इन जैसा पुण्यात्मा दूसरा पुरुष नहीं है।' प्रतीहारीके मुंहसे युवराजकी प्रशंसा सुन और उनके दिव्य सौन्दर्यपर मोहित होकर कुमारी श्रृङ्गारवतीने लज्जासे कांपते हुए हाथसे उनके गलेमें वर माला डाल दी। उसी समय सब ओरसे साधु साधुकी आवाज आने लगी। महाराज प्रतापराज युवराजको विवाह वेदिका पर ले गये और वहां उनके साथ विधिपूर्वक श्रृङ्गारवती का विवाह कर दिया।

शादीके दूसरे दिन भगवान धर्मनाथ ससुरालमें किसी ऊंचे आसनपर बैठे हुए थे। इतनेमें पिता महासेनका एक दूत पत्र लेकर उनके पास आया। पत्र पढ़कर उन्होंने प्रतापराजसे कहासे कहा—'कि पिताजीने मुझे आवश्यक कार्यवश शीघ्र ही बुलाया है इसलिये जानेकी आज्ञा दे दीजिये।' प्रतापराज उन्हें जानेसे न रोक सके। युवराज धर्मनाथ समस्त सेनाका भार सेनापतिपर छोड़कर श्रृंगारवतीके साथ देव निर्मित पुष्पक विमानपर आरूढ़ होकर शीघ्र ही रत्नपुर वापिस आ गये। वहां महाराज महासेनने पुत्र और पुत्रवधूका खूब सत्कार किया। किसी दिन राजा महासेन संसारसे विरक्त होकर राज्यका समस्त भार धर्मनाथपर छोड़कर दीक्षित हो गये। देवोंने राज्याभिषेक कर धर्मनाथका राजा होना घोषित कर दिया। राज्य प्राप्तिके समय उनकी आयु ढाई लाख वर्षकी थी। राज्य पाकर उन्होंने नीति पूर्वक प्रजाका पालन किया जिससे उनकी कीर्ति-वाहिनी सहस्र धारा हो सब ओर फैल गई। इस तरह राज्य करते हुए जब उनके पांच लाख वर्ष बीत गये तब एक दिन रातके समय उल्कापात देख कर उनका चित्त विषयोंसे सहसा विरक्त हो गया। उन्होंने सोचा—कि 'मैं नित्य समझकर जिन पदार्थोंमें आसक्त हो सकता हूं वे सब इसी उल्काकी

तरह भंगुर हैं—नाशशील हैं। इसलिये उन्हें छोड़कर अविनाशी मोक्ष पद प्राप्त करना चाहिए।' उसी समय लौकान्तिक देव आये और उनने भी उनके विचारोंका समर्थन किया। जिससे उनका वैराग्य और भी अधिक बढ़ गया।

निदान, वे सुधर्म नामक ज्येष्ठ पुत्रके लिये राज्य देकर देव निर्मित नागदत्ता पालकीपर सवार हो शाल वनमें पहुंचे और वहां माघ शुक्ला त्रयोदशीके दिन पुष्प नक्षत्रमें शामके समय एक हजार राजाओंके साथ दीक्षित हो गये। उन्हें दीक्षित होते ही मनः पर्यय ज्ञान प्राप्त हो गया था। देव लोग दीक्षा-कल्याणकका उत्सव मनाकर अपने अपने स्थानोंपर वापिस चले गये।

मुनिराज धर्मनाथ तीन दिनके बाद आहार लेनेके लिये पाटलिपुत्र पटना गये। वहां धन्यसेन राजाने उन्हें भक्तिपूर्वक आहार दिया। पात्रदानसे प्रभावित होकर देवोंने धन्यसेनके घरपर पंचाश्चर्य प्रकट किये। धर्मनाथ आहार लेकर वनमें लौट आये और आत्मध्यानमें अविचल हो गये। इस तरह एक वर्ष तक तपश्चरण करते हुए उन्होंने कई नगरोंमें विहार किया। वे दीक्षा लेनेके बाद मौन पूर्वक रहते थे। एक वर्षकी छद्मस्थ अवस्था बीत जानेपर उन्हें उसी शाल वनमें सप्तच्छद वृक्षके नीचे पौष शुक्ला पौर्णमासीके दिन केवलज्ञान प्राप्त हो गया। उसी समय देवोंने आकर कैवल्य प्राप्तिका उत्सव किया। इन्द्रकी आज्ञा पाकर कुबेरने दिव्यसभा समवसरणकी रचना की उसके मध्यमें सिंहासन पर विराजमान होकर उन्होंने अपना मौन भंग किया। दिव्य ध्वनिके द्वारा जीव अजीव आदि तत्वोंका व्याख्यान किया और संसारके दुःखोंका वर्णन किया जिसे सुनकर अनेक नर नारियोंने मुनि आर्यिकाओं और श्रावक श्राविकाओंके व्रत धारण किये थे। प्रथम उपदेशके बाद इन्द्रने विहार करनेकी प्रार्थना की। तब उन्होंने प्रायः समस्त आर्य क्षेत्रोंमें विहार कर जैनधर्मका खूब प्रचार किया। उनके समवसरणमें अरिष्टसेन आदि ४३ गणधर थे, ६११ अङ्ग और १४ पूर्वोंके जानकार थे, चालीस हजार सात सौ शिक्षक थे, तीन हजार छह सौ अवधिज्ञानी थे, चार हजार पांच सौ केवली थे, सात हजार विक्रिया ऋद्धिके धारक थे, चार हजार पांचसौ मनः पर्यय ज्ञानी थे, और दो हजार आठ सौ वादी थे, इस तरह सब मिलाकर चौंसठ हजार

मुनिराज थे। सुव्रता आदि बासठ हजार चारसौ आर्यिकायें थीं। दो लाख श्रावक, चार लाख श्राविकायें, असंख्यात देव देवियां और संख्यात तीर्यंच थे।

वे आयुके अन्तमें सम्मेद शिखर पर पहुंचे और वहां आठ सौ मुनियोंके साथ योग निरोध कर ध्यानारूढ़ हो बैठ गये। उसी समय शुक्लध्यानके प्रतापसे अघातिया कर्मोंका संहार कर जेष्ठ शुक्ला चतुर्थीके दिन पुष्य नक्षत्रमें उन्होंने स्वातन्त्र्य लाभ किया। तत्काल देवोंने आकर उनके निवार्ण क्षेत्रकी पूजा की।

श्रीअनन्तनाथ तीर्थङ्करके मोक्ष जानेके बाद चार सागर बीत जानेपर भगवान् धर्मनाथ हुये थे। इनकी आयु भी इसी प्रमाणमें शामिल है। इनकी पूर्णायु दस लाख वर्षकी थी। शरीर ४५ योजन ऊंचा था और रङ्ग पीला था।

इनकी उत्पत्तिके पहले भारतवर्षमें आधे पल्य तक धर्मका विच्छेद हो गया था पर इन्द्रके उपदेशसे वह सब दूर हो गया था और जैनधर्म-कल्पवृक्ष पुनः लहलहा उठा था।



भगवान् शान्तिनाथ

स्वदोष शान्त्यावहितात्म शान्तिः
शान्तेर्विधाता शरणं गतानाम्।
भूयाद्भवक्लेशभयोपशान्त्यै
शान्तिर्जिनो मे भगवान् शरण्यः॥ —आचार्य समन्तभद्र

"अपने राग द्वेष आदिदोषोंके दूर करनेसे शान्तिको धारण करनेवाले शरणमें आये हुये प्राणियोंके शान्तिके विधाता और शरणागतोंकी रक्षा करनेमें धुरीण भगवान् शान्तिनाथ हमारे संसार सम्बन्धी क्लेश और भयोंकी शान्तिके लिये होवें। हमारे संसारिक दुःख नष्ट करें।"

[१] पूर्वभव वर्णन

जम्बूद्वीपके पूर्व विदेह क्षेत्रमें पुष्कलावती देशकी पुण्डरीकिणी नगरीमें

किसी समय घनरथ नामका राजा राज्य करता था। उसकी महारानीका नाम मनोहरा था। उन दोनोंके मेघरथ और दृढ़रथ नामके दो पुत्र थे। उनमें मेघरथ बड़ा और दृढ़रथ छोटा भाई था। वे दोनों भाई एक दूसरेसे बहुत प्यार करते थे, एकके बिना दूसरेको अच्छा नहीं लगता था। वे सूर्य और चन्द्रमा की तरह शोभित होते थे। उन दोनोंके पराक्रम, बुद्धि, विनय, प्रताप, क्षमा, सत्य तथा त्याग आदि अनेक गुण स्वभावसे ही प्रकट हुये थे।

जब दोनों भाई पूर्ण तरुण हो गये तब महाराज घनरथने बड़े पुत्र मेघरथका विवाह प्रियमित्रा और मनोरमाके साथ तथा दृढ़रथका सुमतिके साथ किया। तब बन्धुओंके साथ अनेक क्रीड़ा कौतुक करते हुये दोनों भाई अपना समय सुखसे बिताने लगे। पाठकों को यह जानकर हर्ष होगा कि इनमेंसे बड़ा भाई मेघरथ इस भवसे तीसरे भवमें भगवान् शान्तिनाथ होकर संसार का कल्याण करेगा और छोटा भाई दृढ़रथ तीसरे भवमें चक्रायुध नामका उसी का भाई होगा जो कि श्रीशांतिनाथका गणधर होकर मोक्ष प्राप्त करेगा।

कुछ समय बाद मेघरथकी प्रिय मित्रा भार्यासे नन्दि वर्धन नामका पुत्र हुआ और दृढ़रथकी सुमति देवीसे वरसेन नामका पुत्र हुआ। इस प्रकार पुत्र पौत्र आदि सुख सामग्रीसे राजा घनरथ इन्द्रकी तरह शोभायमान होते थे। एक दिन महाराज घनरथ राज सभामें बैठे हुये थे, उनके दोनों पुत्रभी उन्हींके पास बैठे थे कि इतनेमें प्रिय मित्राकी सुषेणा नामकी दासी एक घनतुंड नामका मुर्गा लाई और राजासे कहने लगी कि जिसका मुर्गा इसे लड़ाईमें जीत लेगा मैं उसे एक हजार दीनार दूंगी। यह सुनकर दृढ़रथकी स्त्री सुमतिकी काञ्चना नामकी दासी उसके साथ लड़ानेके लिये एक वज्रतुन्ड नामका मुर्गा लाई। घनतुण्ड और वज्रतुण्डमें खुलकर लड़ाई होने लगी। कभी सुषेणाका मुर्गा काञ्चनाके मुर्गाको पीछे हटा देता और कभी कांचनाका मुर्गा सुषेणाके मुर्गाको पीछे हटा देता था। जिससे दोनों दलके मनुष्य बारी बारी से हर्षकी तालियां पीटते थे दोनों मुर्गाओं के बलवीर्यसे चकित होकर राजा घनरथने मेघरथसे पूछा कि इन मुर्गाओं में यह बल कहांसे आया? राजकुमार मेघरथको अवधि ज्ञान था इसलिये वह शीघ्र ही सोचकर पिताके प्रश्नका नीचे

लिखे अनुसार उत्तर देने लगा—

'इसी जम्बूद्वीपके ऐरावत क्षेत्रमें रत्नपुर नामका एक नगर है उसमें किसी समय भद्र और धन्य नामके दो सहोदर-सगे भाई रहते थे। वे दोनों गाड़ी चलाकर अपना पेट पालते थे। एक दिन उन दोनोंमें श्रीनदीके किनारे एक बैलके लिये लड़ाई हो पड़ी जिसमें वे दोनों एक दूसरेको मारकर काञ्चन नदी के किनारे श्वेतकर्ण और नामकर्ण नामके जङ्गली हाथी हुए। वहां भी वे दोनों पूर्वभवके बैरसे आपसमें लड़कर मर गये जिससे अयोध्या नगरमें किसी नन्दि मित्र ग्वालाके घर पर उन्मत्त भैंसे हुए। वहां भी दोनों लड़कर मर गये मर कर उसी नगरमें शक्तिवरसेन और शब्दवरसेन नामके राजकुमारोंके यहां मेढ़े हुए। वहां भी दोनों लड़कर मरे और मर कर ये मुर्गे हुए हैं ये दोनों पूर्वभवके बैरसे ही आपसमें लड़ रहे हैं।' उसी समय दो विद्याधर आकर उन मुर्गाओंका युद्ध देखने लगे। तब राजा घनरथने मेघरथसे पूछा कि ये लोग कौन हैं? और यहां कैसे आये हैं? तब मेघरथने कहा कि महाराज! सुनिये

'जम्बूद्वीपके भरत क्षेत्रमें जो विजयार्ध पर्वत है उसकी उत्तर श्रेणीमें एक कनकपुर नामका नगर है। उसमें गरुड़वेग विद्याधर राज्य करता था। उसकी रानीका नाम धृतिषेणा था। उन दोनोंके दिवि तिलक और चन्द्रतिलक नामके दो पुत्र थे। एक दिन वे दोनों भाई सिद्धकूटकी वन्दनाके लिये गये। वहींपर उन्हें दो चारण ऋद्धिधारी मुनियोंके दर्शन हुए। विद्याधर पुत्रोंने विनय सहित नमस्कार कर उनसे अपने पूर्वभव पूछे। तब उनमेंसे बड़े मुनिराजने कहा कि पहले 'पूर्वधातकी खण्डद्वीपके ऐरावत क्षेत्रमें स्थित तिलकपुर नामके नगरमें एक अभयघोष राजा राज्य करता था। उसकी स्त्री का नाम सुवर्ण तिलका था तुम दोनों अपने पूर्वभवमें उन्हीं राजदम्पतिके विजय और जयन्त नामके पुत्र थे। कारण पाकर तुम्हारे पिता अभयघोष संसारसे विरक्त होकर मुनि हो गये मुनि होकर उन्होंने कठिन तपस्याकी और सोलह कारण भावनाओंका चिन्तवन कर तीर्थङ्कर बन्ध किया। फिर आयुके अन्तमें मरकर सोलहवें स्वर्गमें अच्युतेन्द्र हुआ है। तुम दोनों विजय और जयन्त भी आयुके अन्तसे जीर्ण शरीरको छोड़कर ये दिवितिलक और चन्द्रतिलक विद्याधर हुए हो। तुम्हारे

पूर्वभवके पिता अभय घोष स्वर्गसे चयकर पुण्डरीकिणी नगरीमें राजा हेमांगद और रानी मेघमालिनीके घनरथ नामके पुत्र हुए हैं। वे इस समय अपने पुत्र-पौत्रोंके साथ मुर्गाओंका युद्ध देख रहे हैं' इस तरह मुनिराजके मुखसे आपके साथ अपने पूर्वभवोंका सम्बन्ध सुनकर ये दोनों विद्याधर आपसे मिलनेके लिये आये हैं। मेघरथके वचन सुनकर घनरथ तथा समस्त सभासद अत्यन्त प्रसन्न हुए उसी समय दोनों विद्याधरोंने राजा घनरथ और राजकुमार मेघरथका खूब सत्कार किया। दोनों मुर्गोंने भी अपने पूर्वभव सुनकर परस्परका बैरभाव छोड़ दिया। और सन्यास पूर्वक मरण किया जिससे एक भूत रमण नामके बनमें ताम्र चूल नामका देव हुआ और दूसरा देव रमण नामके बनमें कनक चूल नामका व्यन्तर देव हुआ। वहां जब उन देवोंने अवधि ज्ञानसे अपने पूर्वभवों का विचार किया तब उन्होंने शीघ्र ही पुण्डरीकिणी पुरी आकर राजकुमार मेघरथका खूब सत्कार किया और अपने पूर्वभवोंका सम्बन्ध बतलाया। इसके बाद उन व्यन्तर देवोंने कहा कि 'राजकुमार! आपने हमारे साथ जो उपकार किया है हम उसका बदला नहीं चुका सकते। पर हम यह चाहते हैं कि आप लोग हमारे साथ चल कर मानुषोत्तर पर्वत तककी यात्रा कर लीजिये। राज-कुमार मेघरथ तथा महाराज घनरथकी आज्ञा मिलने पर देवोंने सुन्दर विमान बनाया और उसमें समस्त परिवार सहित राजकुमार मेघरथको बैठाकर उसे आकाशमें ले गये। वे देव उन्हें क्रम क्रमसे भरत हैमवत आदि क्षेत्रों, गङ्गा सिन्धु आदि नदियों, हिमवन् मेरु आदि पर्वतों, पद्म महापद्म आदि सरोवरों तथा अनेक देश और नगरियोंकी शोभा दिखलाते हुये मानुषोत्तर पर्वत पर ले गये। कुमार मेघरथ प्रकृतिकी अद्भुत शोभा देखकर बहुतही प्रसन्न हुआ उसने समस्त अकृत्रिम चैत्यालयोंकी वन्दनाकी, स्तुतिकी और फिर उन्हीं देवोंकी सहायतासे अपने नगर पुण्डरीकिणीपुरको लौट आया। घर आनेपर देवोंने उसे अनेक वस्त्र आभूषण मणिमालायें आदि भेंटकी और फिर अपने अपने स्थानों पर चले गये।

किसी एक दिन कारण पाकर महाराज घनरथका हृदय विषय वासनाओं से विरक्त हो गया। उन्होंने बारह भावनाओंका चिन्तवन कर अपने वैराग्यको

और भी अधिक बढ़ा लिया। लौकान्तिक देवोंने आकर उनकी स्तुति की और दीक्षा लेनेका समर्थन किया। निदान महाराज घनरथ युवराज मेघरथको राज्य दे वनमें जाकर दीक्षित हो गये। इधर कुमार मेघरथने भी अनेक साधु उपायोंसे प्रजाका पालन शुरू कर दिया जिससे समस्त प्रजा उस पर अत्यन्त मुग्ध हो गई। किसी एक दिन राजा मेघरथ अपनी स्त्रियोंके साथ देव रमण नामके वनमें घूमता हुआ एक चन्द्रकान्त-शिला पर बैठ गया। जहां वह बैठा था वहीं पर आकाशमें एक विद्याधर जा रहा था। जब उसका विमान मेघरथके ऊपर पहुंचा तब वह सहसा रुक गया। विद्याधरने विमान रुकनेका कारण जाननेके लिये सब ओर दृष्टि डाली। ज्यों ही उसकी दृष्टि मेघरथ पर पड़ी त्यों ही वह क्रोधसे आगबबूला हो गया। वह झटसे नीचे उतरा और उस शिलाको जिस पर कि मेघरथ बैठा हुआ था, उठानेका प्रयत्न करने लगा। परन्तु राजा मेघरथने उस शिलाको अपने पैरके अंगूठेसे दबा दिया जिससे वह विद्याधर शिलाका भारी बोझ नहीं सह सका। अन्तमें वह जोरसे चिल्ला उठा। उसकी आवाज सुनकर उसकी स्त्रीने विमानसे उतर कर मेघरथसे पतिकी भिक्षा मांगी। तब उसने भी पैरका अंगूठा उठा लिया जिससे विद्याधरकी जान बच गई।

यह हाल देखकर मेघरथकी प्रिय मित्राने उससे पूछा। यह सब क्या और क्यों हो रहा है। ? तब मेघरथ कहने लगा—'प्रिये! यह, विजयार्ध पर्वतकी अलका नगरीके राजा विद्युद्दंष्ट्र और रानी अनिलवेगाका प्यारा पुत्र सिंहरथ नामका विद्याधर है। इधर अमित वाहन तीर्थङ्करकी वन्दना कर आया। जब इसका विमान मेरे ऊपर आया तब वह कीलित हुए की तरह आकाशमें रुक गया। जब उसने सब ओर देखा तब मैं ही दिखा, इसलिये मुझे ही विमानका रोकनेवाला समझकर वह क्रोधसे आग बबूला हो गया और इस शिलाको जिस पर हम सब बैठे हुए हैं उठानेका यत्न करने लगा तब मैंने पैरके अंगूठेसे शिलाको दबा दिया जिससे वह चिल्लाने लगा। उसकी चिल्लाहट सुनकर यह उसकी स्त्री आई और इतना कह कर मेघरथने उस सिंहरथ विद्याधरके पूर्वभव कह सुनाये जिससे वह पानी पानी हो गया और पास जाकर राजा मेघरथकी खूब प्रशंसा करने लगा तथा सुवर्ण तिलक नामक पुत्रके लिये राज्य देकर दीक्षित

हो गया। उसकी स्त्री मदनवेगा भी आर्यिका हो गई। राजा मेघरथ भी देव रमण वनसे राजधानीमें लौट आये और नीति पूर्वक प्रजाका पालन करने लगे।

एक दिन वह अष्टान्हिका व्रतकी पूजा कर उपवासकी प्रतिज्ञा लिये हुए स्त्री पुत्रोंके साथ बैठकर धर्म चर्चा कर रहा था कि इतनेमें उसके सामने भय से कांपता हुआ एक कबूतर आया, कबूतरके पीछे पीछे बड़े वेगसे दौड़ता हुआ एक गीध आया और राजाके सामने खड़े होकर कहने लगा—'कि महाराज! मैं भूखसे मर रहा हूँ आप दानवीर हैं इसलिये कृपाकर आप यह कबूतर मुझे दे दीजिये। नहीं तो मै मर जाऊं गा।

गीधके वचन सुनकर दृढ़रथ (मेघरथका छोटा भाई) को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने उसी समय राजा मेघरथसे पूछा कि महाराज! कहिये, यह गीध मनुष्योंकी बोली क्यों बोल रहा है। अनुज छोटे भाईका प्रश्न सुनकर मेघरथने कहा कि 'जम्बू द्वीपके ऐरावत क्षेत्रमें पद्मिनी खेट नामके नगरमें एक सागरसेन नामका वैश्य रहता था उसकी अमितमति स्त्रीसे धनमित्र और नन्दिषेण नामके दो पुत्र थे। वे दोनों धनके लोभसे लड़े और एक दूसरेको मार कर ये गीध और कबूतर हुए हैं।" और यह गीध मनुष्यकी बोली नहीं बोल रहा है किन्तु इसके ऊपर एक ज्योतिषी देव है। यह आज किसी कारण वश ईशान इन्द्रकी सभामें गया था वहांपर इन्द्रके मुखसे हमारी प्रशंसा सुन कर इसे कुछ ईर्षा पैदा हुई जिससे यह मेरी परीक्षा लेनेके लिये यहां आया है और गीधके मुंहसे मनुष्यकी बोली बोल रहा है।" दृढ़रथसे इतना कहकर राजा मेघरथने उस देवसे कहा—भाई! तुम दानके स्वरूपसे सर्वथा अपरिचित मालूम होते हो। इसीलिये मुझसे गीधके लिये कबूतरकी याचना कर रहे हो। सुनो, 'अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गोदानम्' निज तथा परके उपकारके लिये अपनी योग्य वस्तुका त्याग करना दान कहलाता है और वह सत्पात्रोंमें ही दिया जाता है। सत्पात्र, उत्तम-मुनिराज, मध्यम-श्रावक और जघन्य अविरत सम्यग्दृष्टिके भेदसे तीन तरहके होते हैं। देय पदार्थ भी मद्य मांस मधुसे विवर्जित तथा सात्विक हो। अब कहो यह गीध उनमेंसे कौनसा सत्पात्र है? और यह कबूतर भी क्या देय वस्तु है? राजा मेघरथके वचन सुनकर वह देव

अपने असली रूपमें प्रकट हुआ और उनकी स्तुति कर अपने स्थानपर वापिस-चला गया। कबूतर और गीधने भी मेघरथकी बातें सुनकर आपसका विरोध छोड़ दिया जिससे आयुके अन्तमें सन्यास पूर्वक मर कर वे दोनों देव रमण वनमें व्यन्तर हुए। उत्पन्न होते ही उन देवोंने आकर राजा मेघरथकी बहुत-ही स्तुति की और अपनी कृतज्ञता प्रकट की।

एक दिन उसने किन्हीं चारण ऋद्धिधारी मुनिराजको आहार दिया जिससे उसके घरपर देवोंने पञ्चाश्चर्य प्रकट किये। किसी दूसरे दिन वह अष्टान्हिका पर्वमें महापूजा कर और उपवास धारण कर रात्रिमें प्रतिमा योगसे विराजमान था। उसी समय ईशानेन्द्रने मेघरथकी सब बातें जानकर अपनी सभामें उसकी धीर वीरताकी खूब प्रशंसा की। इन्द्रके मुखसे मेघरथकी प्रशंसा सुनकर कोई अतिरूपा और सुरूपा नामकी दो देवियां उसकी परीक्षा करनेके लिए आयीं और हाव भाव विलास पूर्वक नृत्य करने लगीं पर जब वे मेघरथको ध्यानसे विचलित न कर सकीं तब उन्होंने देवी रूपमें प्रकट होकर उसकी खूब प्रशंसा की और स्वर्गको चली गईं।

किसी दिन उसी इन्द्रने अपनी सभामें मेघरथकी स्त्री प्रियमित्राके सौंदर्यकी प्रशंसा की। उसे सुनकर रतिषेण और रति नामकी दो देवियां उसकी परीक्षा करनेके लिये आयीं। जब देवियां उसके महलपर पहुंचीं तब वह तेल, उबटन लगाकर स्नान कर रही थी। उन देवियोंने छिपकर उसका रूप देखा और मनमें प्रशंसा करने लगीं। फिर उन देवियोंने कन्याओंका भेष धारणकर स्त्री पहरेदारके द्वारा उसके पास सन्देश भेजा कि दो कन्याएं आपकी सौन्दर्य सुधाका पान करना चाहती हैं। उत्तरमें रानीने कहला भेजा कि तबतक ठहरो जबतक मैं स्नान न कर लूं। प्रियमित्रा स्नानकर उत्तमोत्तम वस्त्र और अलङ्कार पहनकर मिलनेके स्थानमें पहुंचीं और कन्याओंको आनेकी खबर दी। खबर पाते ही दोनों कन्याएं भीतर पहुंचीं और रानी प्रियमित्राका रूप देखकर एक दूसरेकी ओर देखने लगीं। जब उनसे उसका कारण पूछा गया तब वे दोनों बोलीं—महादेवि! नहाते समय हम लोगोंने आपमें जो असीम सौन्दर्य देखा था अब उसका पता नहीं है। कन्याओंकी बात सुनकर प्रियमित्राने राजा-

मेघरथकी ओर देखा। तब उसने भी कहा कि हां, पहलेकी अपेक्षा तुम्हारे रूपमें अवश्य कमी हो गयी है। पर बहुत ही सूक्ष्म। इसके बाद दोनों कन्याओंने देवी बेषमें प्रकट होकर सब रहस्य प्रकट कर दिया और उसके रूपकी प्रशंसा करती हुई वे स्वर्गको वापिस चली गईं। अपने रूपमें कमी सुनकर प्रियमित्राको बहुत दुःख हुआ पर राजा मेघरथने मीठे शब्दोंमें उसका वह दुःख दूर कर दिया।

एक दिन मेघरथके पिता भगवान घनरथ समवसरण सहित विहार करते हुए पुण्डरीकिणी पुरीके मनोहर नामक उद्यानमें आये। जब मेघरथको उनके आनेका समाचार मिला तो वह उसी समय दृढ़रथ तथा अन्य परिवारके लोगोंके साथ उनकी बन्दनाके लिए गया और वहां साष्टाङ्ग प्रणामकर मनुष्योंके कोठेमें बैठ गया। उस समय भगवान घनरथ उपासकाध्ययन—श्रावकाचारका कथन कर चुकनेके बाद उन्होंने चतुर्गति रूप संसारके दुःखोंका वर्णन किया जिसे सुनकर राजा मेघरथका हृदय संसारसे एकदम डर गया। उसने उसी समय संयम धारण करनेका निश्चय कर लिया और घर आकर छोटे भाई दृढ़रथको राज्य देने लगा। पर दृढ़रथने कहा कि आप जिस चीजको बुरी समझ कर छोड़ रहे हैं उसे मैं क्यों ग्रहण करूं? मेरा भी हृदय सांसारिक वासनाओंसे ऊब गया है। इसलिए मैं इस भौतिक राज्यको ग्रहण नहीं करूंगा। जब दृढ़रथने राज्य देनेसे निषेध कर दिया तब उसने अपने मेघसेन पुत्रके लिए राज्य दे दिया और आप अनेक राजाओंके साथ वनमें जाकर दीक्षित हो गया मुनि हो गया। छोटे भाई दृढ़रथने भी उसीके साथ दीक्षा ले ली। राजा मेघरथने मुनि बनकर कठिनसे कठिन तपस्याएं कीं और दर्शन विशुद्धि आदि सोलह कारण भावनाओंका चिन्तवन किया जिससे उसके तीर्थंकर नामक महा पुण्य प्रकृतिका वन्ध हो गया। आयुके अन्तमें मुनिराज मेघरथने नभस्तिलक पर्वतपर एक महीनेका प्रायोपगमन सन्यास धारण कर शान्तिसे प्राण छोड़े जिससे सर्वार्थ सिद्धि विमानमें अहमिन्द्र हुए। वहां उनकी आयु तैंतीस सागर की थी, शरीरकी ऊंचाई एक अरात्नि—एक हाथकी थी। लेश्या शुक्ल थी। वे तेतीस हजार वर्ष बाद आहार लेते और तेतीस पक्ष बाद श्वासो

उच्छ्वास ग्रहण करते थे। वहां उन्हें जन्मसे ही अवधि ज्ञान प्राप्त हो गया था इसलिये वे सातवीं पृथ्वी तकको बात स्पष्ट रूपसे जान लेते थे। अब आगेके भवमें अहमिन्द्र मेघरथ भारतवर्षमें सोलहवें तीर्थङ्कर होंगे।

[२] वर्तमान वर्णन

इसी जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें एक कुरु जाङ्गल देश है। यह देश पास पासमें बसे हुए ग्राम और नगरोंसे बहुत ही शोभायमान है। उसमें कहीं ऊंची ऊंची पर्वत मालाएं अपनी शिखरोंसे गगनको स्पर्श करती हैं। कहीं कलरव करते हुए सुन्दर निर्झर बहते हैं। कहीं मदो नदिएं धीर प्रशान्त गति से गमन करती हैं और कहीं हरे हरे बनोंमें मृग, मयूर, आदि जानवर क्रीड़ाए किया करते हैं। यह कहनेमें अत्युक्ति न होगी कि प्रकृतिने अपने सौन्दर्यका बहुत भाग उसी देशमें खर्च किया था।

उसमें एक हस्तिनापुर नामकी नगरी है। वह परिखा, प्राकार, कूप, सरोवर आदिसे बहुत ही भली मालूम होती थी। उसमें उस समय गगनचुम्बी मकान बने हुए थे। जो चन्द्रमाके उदय होनेपर ऐसे मालूम होते थे मानो दूध से धोये गये हो। वहांकी प्रजा धन धान्यसे सम्पन्न थी। कोई किसी बातके लिये दुःखी नहीं थी। वहां असमयमें कभी किसीकी मृत्यु नहीं होती थी। वहाँके लोग बड़े धर्मात्मा और साधु स्वभावी थे। वहां राजा विश्वसेन राज्य करते थे। वे बहुत ही शूरवीर-रणधीर थे। उन्होंने अपने बाहुबलसे समस्त भारतवर्षके राजाओंको अपना सेवक बना लिया था। उनकी मुख्य स्त्रीका नाम ऐरा था। उस समय पृथिवी तलपर ऐराके साथ सुन्दरतामें होड़ लगाने वाली स्त्री दूसरी नहीं थी। दोनों राज्य दम्पती सुखसे समय बिताते थे।

ऊपर कहे हुए अहमिन्द्र मेघरथकी आयु जब वहां [सर्वार्थसिद्धिमें] सिर्फ छह माह की बाकी रह गई। तबसे राजभवनमें प्रतिदिन करोड़ों रत्नोंकी वर्षा होने लगी। उसी समय अनेक शुभ शकुन हुए और इन्द्रकी आज्ञासे अनेक देवकुमारियां ऐरा रानीकी सेवाके लिये आ गईं। इन सब कारणोंसे राजा विश्वसेनको निश्चय हो गया कि हमारे घरपर जगत्पूज्य तीर्थंकरका जन्म

होगा। अब बड़े ही आनन्दसे उनका समयबीतने लगा। महारानी ऐराको भाद्र पद कृष्णा सप्तमीके दिन भरणी नक्षत्रमें रात्रिके पिछले समय सोलह स्वप्न देखे और अपने मुंहमें प्रवेश हुआ एक सुन्दर हाथी देखा। उसी समय मेघ-रथका जीव अहमिन्द्रसर्वार्थ सिद्धिकी आयु पूरी कर उसके गर्भमें प्रवृष्ट हुआ सबेरा होते ही ऐरा देवीने राजा विश्वसेनसे उन स्वप्नोंका फल पूछा। तब उन्होंने कहा कि आज तुम्हारे गर्भमें तीर्थङ्करने प्रवेश किया है। नव माह बाद उसका जन्म होगा। ये स्वप्न उसीका अभ्युदय बतला रहे हैं। पतिके मुखसे स्वप्नोंका फल सुनकर रानी ऐराको बहुत ही आनन्द हुआ। उसी समय देवों ने आकर गर्भ कल्याणकका उत्सव किया और उत्तमोत्तम वस्त्राभूषणोंसे राज दम्पतीकी पूजा की। धीरे धीरे जब गर्भके नौ माह पूर्ण हो गये तब ज्येष्ठ कृष्ण चतुर्दशीके दिन भरणी नक्षत्रमें सवेरेके समय ऐराने पुत्र रत्न उत्पन्न किया। उस पुत्रके प्रभावसे तीनों लोकोंमें आनन्द छा गया। आसनोंके कंपने से देवोंने तीर्थङ्करकी उत्पत्तिका निश्चय कर लिया और शीघ्र ही समस्त परि-वारके साथ हस्तिनापुर आ पहुंचे। वहांसे इन्द्र, बालकको ऐरावत हाथीपर बैठाकर मेरु पर्वतपर ले गया और वहां उसने उस सद्य प्रसूत बालकका क्षीर सागरके जलसे महाभिषेक किया। फिर समस्त देव सेनाके साथ हस्तिनापुर वापिस आकर पुत्रको मांकी गोदमें भेज दिया। राज भवनमें देव देवियोंने मिलकर अनेक उत्सव किये। इन्द्रने आनन्द नामका नाटक किया। उस बाल-कका नाम भगवान शांतिनाथ रखा गया।

जन्मका उत्सव समाप्त कर देव लोग अपने अपने स्थानपर चले गये और बालक शान्तिनाथका राज परिवारमें बड़े प्रेमसे पालन होने लगा। भगवान धर्मनाथके बाद पौन पल कम तीन सागर बीत जानेपर स्वामी शांतिनाथ हुए थे। उनकी आयु भी इसीमें शामिल है। इनकी आयु एक लाख वर्षकी थी, शरीरकी ऊंचाई चालीस धनुषकी थी और कान्ति सुवर्णके समान पीली थी। इनके शरीरमें ध्वजा, छत्र, शङ्ख, चक्र आदि अच्छे अच्छे चिन्ह थे। क्रम-क्रम-से भगवान शान्तिनाथने युवावस्थामें पदार्पण किया। उस समय उनके शरीर का संगठन और अनुपम सौन्दर्य देखते ही बनता था।

दृढ़रथ जो कि राजा मेघरथका छोटा भाई था और उसीके साथ तपस्या कर सर्वार्थसिद्धिमें अहमिन्द्र हुआ था वह राजा विश्वसेनकी द्वितीय पत्नी यशस्वतीके गर्भसे चक्रायुध नामका पुत्र हुआ। उसकी उत्पत्तिके समयमें भी अनेक उत्सव मनाये गये थे। महाराज विश्वसेनने योग्य अवस्था देखकर अपने दोनों पुत्रोंका कुल, वय, रूप, शील आदिसे शोभायमान अनेक कन्याओंके साथ विवाह करवाया था। जिनके साथ वे तरह तरहके कौतुक करते हुए सुखसे समय बिताते थे। इस तरह देव दुर्लभ सुख भोगते हुये जब भगवान् शान्तिनाथके कुमार कालके पच्चीस हजार वर्ष बीत गये तब महाराज विश्वसेनने राज्याभिषेक पूर्वक उन्हें अपना राज्य दे दिया और स्वयं बनमें जाकर दीक्षा ले ली।

इधर भगवान् शांतिनाथ छोटे भाई चक्रायुधके साथ प्रजाका पालन करने लगे। कुछ समय बाद उनकी आयुधशालामें चक्ररत्न प्रकट हुआ जिससे उन्हें अपने आपको चक्रवर्ती होनेका निश्चय हो गया। चक्ररत्न प्रकट होनेके बाद ही वे असंख्य सेना लेकर दिग्विजयके लिये निकले और क्रम क्रमसे भरत क्षेत्रके छहों खण्डोंको जीतकर हस्तिनापुर वापिस आ गये। वे चौदह रत्न और नौ निधियोंके स्वामी थे समस्त राजा उनकी आज्ञाको फूलोंकी माला समझ कर हर्ष पूर्वक अपने मस्तकों पर धारण करते थे। चौदह रत्नोंमेंसे चक्र, छत्र, तलवार और दण्ड ये चार रत्न आयुधशालामें उत्पन्न हुये थे। काकिणी चर्म, और चूणामणि ये श्रीगृहमें प्रकट हुए थे। पुरोहित, सेनापति, स्थपति और गृहपति हस्तिनापुरमें ही मिले थे। तथा पट्टरानी हाथी और घोड़ा विजयार्ध पर्वतसे प्राप्त हुए थे। नव निधियां भी पुण्यसे प्रेरित हुये इन्द्रने इन्हें नदी और सागरके समागमके स्थान पर दी थी। इस तरह चक्रधर भगवान् शांतिनाथ पच्चीस हजार वर्ष तक अनेक सुख भोगते हुये राज्य करते रहे।

एक दिन वे अलङ्कार गृहमें बैठकर दर्पणमें अपना मुँह देख रहे थे कि उसमें उन्हें अपने मुंहके दो प्रतिबिम्ब दिखाई पड़े। मुँहके दो प्रतिबिम्ब देख कर वे आश्चर्य करने लगे कि यह क्या है? उसी समय उन्हें आत्मज्ञान उत्पन्न हो गया जिससे वे पूर्वभवकी समस्त बातें जान गये। उन्होंने सोचा कि 'मैंने

पूर्वभवमें मुनि अवस्थामें जो जो कार्य करनेका विचार किया था। अभी तक उन कार्योंका सूत्रपात भी नहीं किया। मैंने अपनी विशाल आयु सामान्य मनुष्योंकी तरह भोग-विलासोंमें फँसकर व्यर्थ ही बिता दी। समस्त विषय सामग्री क्षण भंगुर है—देखते देखते नष्ट हो जाती है इसलिये इससे मोह छोड़ कर आत्म कल्याण करना चाहिये'······इस तरह विचारकर भगवान् शांतिनाथ अलङ्कार घरसे बाहर निकले उसी समय लौकान्तिक देवोंने आकर उनके विचारोंका समर्थन किया जिससे उनका वैराग्य सागर और भी अधिक लहराने लगा उसमें तरल तरंगें उठने लगीं। लौकान्तिकदेव अपना कार्य समाप्त कर ब्रह्मलोकको वापिस चले गये और वहांसे इन्द्र आदि समस्त देव संसारकी असारताका दृश्य दिखलाते हुये हस्तिनापुर आये। भगवान् शांति-नाथ नारायण नामक पुत्रको राज्य देकर सर्वार्थसिद्धि पालकी पर सवार होगये देव लोग पालकीको कन्धोंसे उठाकर सहस्राम्र बनमें ले गये। वहां उन्होंने पालकीसे उतरकर ज्येष्ठ कृष्णा चतुर्थीके दिन शामके समय भरणी नक्षत्रमें 'ओम् नमः सिद्धेभ्यः' कहते हुए जिन दीक्षा ले ली। सामायिक चरित्रकी विशुद्धतासे उन्हें उसी समय मनः पर्यय ज्ञान प्राप्त हो गया। उनके साथमें चक्रायुध आदि एक हजार राजाओंने भी दिगम्बर दीक्षा धारण की थी। देव लोग दीक्षा कल्याणकका उत्सव समाप्त कर अपने अपने घर चले गये।

तीन दिन बाद मुनिराज शांतिनाथने आहारके लिये मन्दरपुरमें प्रवेश किया। वहां उन्हें सुमित्र राजाने भक्ति पूर्वक आहार दिया। पात्र दानसे प्रभावित होकर देवोंने सुमित्र महाराजके घर पर रत्नोंकी वर्षा की। आहार लेकर भगवान् शांतिनाथ पुनः बनमें लौट आये और आत्म ध्यानमें लीन हो गये। इस तरह उन्होंने छद्मस्थ अवस्थामें सोलह वर्ष बिताये। इन सोलह वर्षोंमें भी आपने अनेक जगह बिहार किया और अपनी सौम्य मूर्तिसे सब जगह शांतिके झरने बहाये। इसके अनन्तर आप घूमते हुये उसी सहसाम्र बनमें आये और वहां किसी नन्द्यावर्त नामके पेड़के नीचे तीन दिन उपवासकी प्रतिज्ञा लेकर विराजमान हो गये। उस समय भी उनके साथ चक्रायुध आदि हजार मुनिराज विराजमान थे। उसी समय उन्होंने क्षपक श्रेणी चढ़कर शुक्ल

ध्यानके द्वारा चार घातिया कर्मोंका क्षय कर केवल ज्ञान, केवल दर्शन, अनंत सुख और अनन्त चतुष्टय प्राप्त किये। देवोंने आकर कैवल्य प्राप्तिका उत्सव किया। और कुबेरने समवसरणकी रचना की। समवसरणके मध्यमें विराजमान होकर भगवान् शांतिनाथ अपना मौन भङ्ग किया—दिव्यध्वनिके द्वारा सप्त, तत्व, नव पदार्थ, छह द्रव्य आदिका व्याख्यान किया जिसे सुन समस्त भव्य जीव प्रसन्न हुए। अनेकोंने जिन दीक्षा धारणकी उनके समवसरणमें चक्रायुधको आदि लेकर छत्तीस गणधर थे, आठ सौ श्रुतकेवली थे इकतालीस हजार आठ सौ शिक्षक थे, तीन हजार अवधिज्ञानी थे चार हजार केवलज्ञानी थे छह हजार विक्रिया ऋद्धिके धारक थे, चार हजार मनः पर्यय ज्ञानी थे, दो हजार चार सौ वादी शास्त्रार्थ करने वाले थे। इस तरह सब मिलकर बासठ हजार मुनिराज थे हरिषेणा आदि साठ हजार तीन सौ आर्यिकायें थी। सुर कीर्ति आदि दो लाख श्रावक अर्हद्दासी आदि चार लाख श्राविकायें, असंख्यात देव देवियां और संख्यात तिर्यंच थे। इन सबके साथ उन्होंने अनेक देशोंमें बिहार किया और जैन धर्मका खूब प्रचार किया।

जब उनकी आयु एक महीनेकी रह गई तब वे सम्मेद शिखरपर आये और वहां अनेक मुनिराजोंके साथ योग निरोध कर प्रतिमा योगसे विराजमान हो गये। वहीं पर उन्होंने सूक्ष्म क्रिया प्रति पाति और व्युपरत क्रिया निवृत्ति नामक शुक्ल ध्यानके द्वारा अवशिष्ट अघातिया कर्मोंका संहार कर ज्येष्ठ कृष्ण चतुर्दशीके दिन शामके समय भरणी नक्षत्रमें मोक्षलाभ किया। देवोंने आकर उनके निर्वाण क्षेत्रकी पूजा की। उसी समय यथाक्रमसे चक्रायुध आदि नौ हजार मुनिराज मुक्त हुए। भगवान शान्तिनाथ,तीर्थंकर,कामदेव और चक्रवर्ती पदवियोंके धारक थे।

❀ मत्तगयन्द छन्द ❀

शान्ति जनेश जयो जगतेश हरे अघ ताप निशेषकी नाई।
सेवत पाय सुरासुर आय न मैं सिर नाय मही तल तांई॥
मौलि विषैं मणि नील दिपै प्रभु के चरणों झलकैं बहु झांई।
सूंघन पाप-सरोज सुगन्धि किधों चलके अति पङ्कति आंई॥



—भूधरदास

भगवान कुन्थुनाथ

ररक्ष कुन्थु प्रमुखान् हि जीवान्
दया प्रतानेन, दयालयो यः ।
स कुन्थुनाथो दयया सनाथः
करोतु मां शीघ्र महो सनाथन् ॥ —लेखक

"दयाके आलय स्वरूप जिन कुन्थुनाथने दयाके समूहसे कुन्थु आदि जीवोंकी रक्षा की थी वे दयायुक्त भगवान् कुन्थुनाथ मुझ अनाथको शीघ्र ही सनाथ करें।"

(१) पूर्वभव वर्णन

जम्बूद्वीपके पूर्व विदेह क्षेत्रमें सीता नदीके दाहिने किनारेपर एक वत्स देश है। उसकी राजधानी सुसीमा नगरी थी। उसमें किसी समय सिंहरथ नामका राजा राज्य करता था। वह बहुत ही बुद्धिमान और पराक्रमी राजा था। उसने अपने बाहुबलसे समस्त शत्रु राजाओंका पराजय कर उन्हें देशसे निकाल दिया था। उसका नाम सुनकर शत्रु राजा थर-थर कांपने लगते थे।

एक दिन राजा सिंहरथ मकानकी छतपर बैठा हुआ था कि इतनेमें आकाशसे उलका (रेखाकार तेज) पात हुआ। उसे देखकर वह सोचने लगा कि 'संसारके सब पदार्थ इसी तरह अस्थिर हैं। मैं अपनी भूलसे उन्हें स्थिर समझकर उनमें आसक्त हो रहा हूं। यह मोह बड़ा प्रबल पवन है जिसके प्रचण्ड वेगसे बड़े-बड़े भूधर भी विचलित हो जाते हैं। यह बड़ा सघन तिमिर है जिसमें दूरदर्शी आंखें भी काम नहीं कर सकतीं। और यह वह प्रचण्ड दावानल है जिसकी ऊष्मासे वैराग्य लताएं झुलस जाती हैं। इस मोहके कारण ही प्राणी चारों गतियोंमें तरह तरहके दुःख भोगते हैं। अब मुझे इस मोहको दूर करनेका प्रयत्न करना चाहिये।" ऐसा सोचकर उसने पुत्रके लिये राज्य देकर पति वृषभ मुनिराजके पास दीक्षा ले ली और कठिन तपस्याओंसे अपने शरीरको सुखा दिया। उक्त मुनिराजके पास रहकर उसने ग्यारह अङ्गों

का अध्ययन किया और दर्शन विशुद्धि आदि सोलह भावनाओंका चिन्तवन कर तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध किया। आयुके अन्तमें सन्यास पूर्वक शरीर छोड़ कर मुनिराज सिंहरथ सर्वार्थसिद्धिके विमानमें अहमिन्द्र हुआ। वहां उसे तेंतीस सागरकी आयु प्राप्त हुई थी, उसका शरीर एक हाथ ऊंचा था, शुक्ल लेश्या थी। उसे जन्मसे ही अवधि ज्ञान था। वह तैंतीस हजार वर्ष बाद मानसिक आहार ग्रहण करता और तैंतीस पक्ष बाद श्वासोच्छ्वास लेता था। वहां वह अपना समस्त समय तत्त्व चर्चामें ही बिताता था। यही अहमिन्द्र आगेके भवमें कथानायक भगवान् कुन्थुनाथ होगा।

[२] वर्तमान परिचय

जम्बूद्वीपके भरत क्षेत्रमें एक कुरु जाङ्गल नामका देश है। उसके हस्तिनापुर नगरमें कुरुवंशी और काश्यप गोत्री महाराज शूरसेन राज्य करते थे। उनकी महारानीका नाम था श्री कान्ता। जब ऊपर कहे हुए अहमिन्द्रकी आयु केवल छह महीनेकी बाकी रह गई तबसे देवोंने महाराज शूरसेनके घर-पर रत्नोंकी वर्षा करनी शुरू कर दी। उसी समय श्री ह्री धृति, कीर्ति बुद्धि आदि देवियां आकर महारानीकी सेवा करने लगीं। श्रावण कृष्ण एकादशीके दिन कृतिका नक्षत्रमें रात्रिके पिछले पहर श्री कान्ताने सोलह स्वप्न देखे।

उसी समय उक्त अहमिन्द्रने सर्वार्थसिद्धिसे चयकर उसके गर्भमें प्रवेश किया। सवेरा होते ही रानीने राजासे स्वप्नोंका फल पूंछा। तब उन्होंने कहा कि आज तुम्हारे गर्भमें किसी जगत्पूज्य तीर्थङ्कर बालकने प्रवेश किया है। नव माह बाद तुम्हारी कूंखसे तीर्थङ्कर बालकका जन्म होगा। समस्त देव देवेन्द्र उसे नमस्कार करेंगे। ये सोलह स्वप्न उसीका अभ्युदय बतला रहे हैं। पतिदेवके मुंहसे स्वप्नोंका फल और भावी पुत्रका प्रभाव सुनकर रानी श्रीकांता बहुत ही हर्षित हुई। उसी वक्त देवोंने आकर स्वर्गीय वस्त्राभूषणोंसे राजा रानीकी पूजा की तथा उनके भवनमें अनेक उत्सव मनाये। जब गर्भके नौ माह सुखसे व्यतीत हो गये तब महारानी श्रीकान्ताने बैशाख शुक्ला प्रतिपदा (परिवा) के दिन कृतिका नक्षत्रमें पुत्र उत्पन्न किया। पुत्रके जन्मसे क्षण

एकके लिये नारकी भी सुखी हो गये। उसी समय भक्तिसे भरे हुए चारों निकायके देव हस्तिनापुर आये और वहांसे उस सद्य प्रसूत बालकको मेरु पर्वत पर ले गये। वहां उन्होंने क्षीर सागरके जलसे उसका कलशाभिषेक किया। अभिषेक समाप्त होने पर इन्द्राणीने उन्हें बालोचित आभूषण पहिनाये और इन्द्रने मनोहर शब्दोंमें उनकी स्तुतिकी। इसके अनन्तर समस्त देव हर्ष से नाचते गाते हुए हस्तिनापुर आये। इन्द्र, जिन बालकको अपनी गोदमें लिये हुए ऐरावत हाथीसे नीचे उतरा और राजभवनमें जाकर उसने बालकको माता श्रीकांताके पास भेजा और भगवान् कुन्थुनाथ नाम रक्खा।

भगवान् कुन्थुनाथके जन्मोत्सवसे हस्तिनापुर ऐसा मालूम होता था मानो इन्द्रपुरी ही स्वर्गसे उतरकर भूलोक पर आ गई हो। उधर उत्सव समाप्त कर देव लोग अपने अपने घर गये इधर बालक कुन्थूनाथका राज परिवारमें बड़े प्यारसे पालन होने लगा। इन्द्र प्रति दिन स्वर्गसे उनकी मनभावती वस्तुएं भेजा करता था और अनेक देव विक्रियासे तरह तरहके रूप बनाकर उन्हें प्रसन्न रखते थे। द्वितीयाके चन्द्रमाकी तरह क्रम क्रमसे बढ़ते हुये भगवान् कुन्थुनाथ यौवन अवस्थाको प्राप्त हुए। उस समय उनके शरीरकी शोभा बड़ी ही विचित्र हो गई थी। महाराज शूरसेनने उनका कई योग्य कन्याओंके साथ विवाह किया और कुछ समय बाद उन्हें युवराज बना दिया।

भगवान् शांतिनाथके मोक्ष जानेके बाद जब आधा पल्य बीत गया था तब श्री कुन्थुनाथ तीर्थङ्कर हुए थे। उनकी आयु भी इसीमें शामिल है। उनका शरीर पेंतालीस धनुष ऊंचा था शरीरकी कान्ति सुवर्णके समान पीली थी, और आयु पंचानवे हजार वर्षकी थी। जब उनकी आयुके तेईस हजार सात सौ पचास वर्ष बीत गये तब उन्हें राज्य प्राप्त हुआ था। और जब इतना ही समय राज्य करते हुए बीत गया था तब चक्ररत्न प्राप्त हुआ था। चक्ररत्नके प्राप्त होते ही वे समस्त सेनाके साथ षटखण्डोंकी विजयके लिये निकले और कुछ वर्षोंमें समस्त भरतक्षेत्रमें अपना शासन प्रकट कर हस्तिनापुरको वापिस लौट आये। जब दिग्विजयी कुन्थुनाथने राजधानीमें प्रवेश किया था तब बत्तीस हजार मुकुटबद्ध राजाओंने उनका स्वागत किया था। देवों

तथा राजाओंने मिलकर उनका पुनः राज्याभिषेक किया। इस तरह वे देव दुर्लभ भोग भोगते हुये सुखसे समय बिताने लगे।

एक दिन भगवान् कुन्थुनाथ अपने इष्ट परिवारके साथ किसी वनमें गये थे। वहांसे लौटते समय रास्तेमें उन्हें ध्यान करते हुये एक मुनिराज दिखाई पड़े। उन्होंने उसी समय अंगुलीसे इशारा कर अपने मंत्रीसे कहा—'देखो, कितनी शांत मुद्रा है?' जब मन्त्रीने उनसे मुनिव्रत धारण करनेका कारण पूछा तब उन्होंने कहा कि 'मुनिव्रत धारण करनेसे संसारके बढ़ानेवाले समस्त कर्म नष्ट हो जाते हैं तब मोक्ष प्राप्त हो जाता है।'

इन्होंने जितने वर्ष सामान्य राजा रहकर राज्य किया था उतने ही वर्ष सम्राट होकर भी राज किया था। किसी एक दिन कारण पाकर उनका चित्त विषयोंसे उदास हो गया जिससे उन्होंने दीक्षा लेनेका सुदृढ़ संकल्प कर लिया। उसी समय लौकान्तिक देवोंने आकर उनकी स्तुतिकी और उनके विचारोंका समर्थन किया। लौकान्तिक देव अपना कार्य पूरा कर अपने अपने स्थानों पर वापिस चले गये। किन्तु उनके बदले हर्षसे समुद्रकी तरह उमड़ते हुए असंख्यात देव हस्तिनापुर आ पहुंचे। और दीक्षा कल्याणकको विधि करने लगे।

भगवान् कुन्थुनाथ पुत्रको राज्य देकर देव निर्मित विजया नामकी पालकी पर सवार हो सहेतुक वनमें पहुंचे और वहां तीन दिनके उपवासकी प्रतिज्ञा लेकर वैशाख शुक्ला परिवाके दिन कृत्तिका नक्षत्रमें शामके समय वस्त्राभूषण छोड़कर दिगम्बर हो गये। उन्हें दीक्षा समय ही मनः पर्यय ज्ञान प्राप्त हो गया था देव लोग उत्सव समाप्त कर अपने स्थानों पर वापिस चले गये। चौथे दिन आहार लेनेकी इच्छासे उन्होंने-- हस्तिनापुरमें प्रवेश किया वहां धर्ममित्रने उन्हें आहार देकर अचिन्त्य पुण्यका सञ्चय किया। वे आहार लेकर वनमें लौट आये और कठिन तपस्याएं करने लगे। वे दीक्षा लेनेके बाद मौनसे ही रहते थे। इस तरह कठिन तपश्चर्या करते हुए उन्होंने सोलह वर्ष मौनसे व्यतीत किये। इसके अनन्तर विहार करते हुए वे उसी सहेतुक वनमें आये और वहां तिलक वृक्षके नीचे तेला-तीन दिनके उपवासकी प्रतिज्ञा लेकर विराजमान हो गये। आत्माकी विशुद्धिके बढ़ जानेसे उन्हें उसी समय-चैत्र शुक्ला तृतीयाके

दिन कृतिका नक्षत्रमें शामके समय केवल ज्ञान प्राप्त हो गया। देवोंने आकर उनके ज्ञान कल्याणककी पूजाकी। कुबेरने समव-सरण बनाया। उसके मध्यमें स्थित होकर उन्होंने अपना मौन भङ्ग किया—दिव्यध्वनिके द्वारा पदार्थोंका व्याख्यान किया और चारों गतियोंके दुःखोंका चित्रण किया। उनके उपदेशसे प्रभावित होकर अनेक नरनारियोंने मुनिः अर्यिका और श्रावक श्राविकाओंके व्रत धारण किये थे। प्रथम उपदेश समाप्त होनेके बाद उन्होंने अनेक कार्य क्षेत्रोंमें विहार किया था जिससे जैन धर्मका सर्वत्र सामूहिक प्रचार हुआ था।

उनके समवसरणमें स्वयम्भू आदि पैंतीस गणधर थे, सात सौ श्रुतकेवली थे, तेतालीस हजार एक सौ पचास शिक्षक थे, दो हजार पांच सौ अवधि-ज्ञानी थे, तीन हजार दो सौ केवलज्ञानी थे, पांच हजार एक सौ विक्रिया ऋद्धिके धारक थे, तीन हजार तीन सौ मनः पर्ययज्ञानी थे और दो हजार पचास वादी---शास्त्रार्थ करने वाले थे। इस तरह सब मिलकर साठ हजार मुनिराज थे। 'भविता' आदि साठ हजार तीन सौ पचास आर्यिकाएं थीं। तीन लाख श्रावक, दो लाख श्राविकायें, असंख्यात देव देवियां और संख्यात तिर्यंच थे। जब उनकी आयु सिर्फ एक माहकी बाकी रह गई तब वे सम्मेद शिखर पर पहुंचे और वहीं पर प्रतिमा योग धारण कर एक हजार मुनियोंके साथ वैशाख शुक्ला परिवाके दिन कृतिका नक्षत्रमें रात्रिके पूर्वभागमें मोक्ष मन्दिरके अतिथि बन गये। देवोंने आकर उनके निर्वाण क्षेत्र की पूजा की।

भगवान् कुन्थुनाथ, तीर्थंकर, चक्रवर्ती और कामदेव इन तीन पदवियोंसे विभूषित थे। इनके बकराका चिन्ह था।

भगवान् अरनाथ

शार्दूलविक्रीडितम्

त्यक्तं येन कुलालचक्र मिव तच्चक्रं धराचक्रचित्।
श्रीश्चासौघट दासिकव परम श्रीधर्मचक्रेप्सया॥
युष्मान् भक्तिभरानतान्स दुरितारति रथ ध्वंसकृत्।
पायाद्भव्यजनानरो जिनपतिः संसारभीरून् सदा॥ —आचार्यगुणभद्र

"जिसने, भूमण्डलको संचित करनेवाले चक्र रत्नको कुम्भकारके चक्रके ...न छोड़ दिया और जिसने अर्हत्य लक्ष्मी तथा धर्मचक्रकी प्राप्तिकी इच्छासे राज्यलक्ष्मीको घरदासी (पानी भरनेवाली) की तरह छोड़ दिया वे पाप रूपी वैरियोंका विध्वंस करनेवाले भगवान् अरनाथ, भक्तिभावसे नम्रीभूत और संसारसे डरनेवाले भव्यजनोंकी हमेशा रक्षा करें।"

[१] पूर्वभव वर्णन

जम्बूद्वीपके विदेह क्षेत्रमें सीता नदीके उत्तर तटपर एक कच्छ नामका देश है। उसके क्षेमपुर नगरमें किसी समय धनपति नामका राजा राज्य करता था। वह बुद्धिमान् था, बलवान् था, न्यायवान् था, प्रतापवान् था, और था बहुत ही दयावान्। उसने अपने दानसे कल्पवृक्षोंको और निर्मल यशसे शरच्चन्द्रके मरीचि मण्डलको भी पराजित कर दिया था उसकी चतुराई और बलका सबसे बड़ा उदाहरण यही था कि अपने जीवनमें कभी उसका कोई शत्रु नहीं था। वह दीन दुःखी जीवोंके दुःखको देखकर बहुत ही दुःखी हो जाता था इसलिये वह तन मन धनसे उनकी सहायता किया करता था। उसके राज्यमें राजा प्रजा सभी लोग अपनी अपनी अजीविकाके क्रमोंका उल्लङ्घन नहीं करते थे इसलिये कोई दुखी नहीं था।

किसी एक दिन राजाने अर्हन्नन्दन नामके तीर्थङ्करसे धर्मका स्वरूप और चतुर्गतियोंके दुःखोंका श्रवण किया जिससे उसका चित्त विषयानन्दसे सर्वथा हट गया। उसने अपना राज्य पुत्रके लिये दे दिया और स्वयं किन्हीं आचार्य के पास दीक्षित हो गया। उनके पास रहकर उसने ग्यारह अङ्गोंका अध्ययन किया तथा दर्शन विशुद्धि आदि सोलह कारण भावनाओंका चिन्तवन किया जिससे उसे तीर्थङ्कर नामक महापुण्य प्रकृतिका बन्ध हो गया। इस तरह कुछ वर्षों तक कठिन तपस्या करनेके बाद उसने आयुके अन्तमें समाधिमरण किया जिससे वह जयन्त नामक अनुत्तर विमानमें अहमिन्द्र हुआ। वहां उसकी आयु तेतीस सागर, प्रमाण थी, लेश्या शुक्ल थी और शरीरकी ऊंचाई एक हाथकी थी। वहां वह अवधिज्ञानसे सातवें नरक तककी बात जान लेता था। तेतीस हजार वर्ष बाद मानसिक आहार लेता और तेतीस पक्षमें एकबार

सुगन्धित श्वासोच्छ्वास ग्रहण करता था। वहां वह प्रवीचार सम्बन्धसे सर्वथा रहित था। उसका समस्त समय जिन पूजा या तत्व चर्चाओंमें ही बीतता था यही अहमिन्द्र आगेके भवमें भगवान् अरनाथ होगा।

[२] बर्तमान परिचय

जम्बूद्वीपके भरत क्षेत्रमें कुरुजाङ्गल देश है। उसके हस्तिनापुर नगरमें सोमबंशीय काश्यपगोत्री राजा सुदर्शन राज्य करता था। उसकी स्त्रीका नाम मित्रसेना था। दोनों राज दम्पतियोंमें घना प्रेम था। तरह तरहके कौतुक करते हुये उन दोनोंका समय बहुत ही सुखसे व्यतीत होता था। जब ऊपर कहे हुए अहमिन्द्रकी आयु सिर्फ छह माहकी बाकी रह गई तबसे राजा सुद-र्शनके घर पर देवोंने रत्न वर्षा करनी शुरू करदी। कुबेरने एक नवीन हस्तिना-पुरकी रचना कर उसमें महाराज सुदर्शन तथा समस्त नागरिक प्रजाको ठह-राया। इन्द्रकी आज्ञासे देवकुमारियां आ आकर रानी मित्रसेनाकी सेवा करने लगीं। इन सब शुभ निमित्तोंको देखकर राजा प्रजाको बहुत ही आनन्द होता था।

फाल्गुन कृष्ण तृतीयाके दिन रेवती नक्षत्रको उदय रहते हुए पिछली रातमें मित्रसेना महादेवीने सोलह स्वप्न देखे। उसी समय उक्त अहमिन्द्र जयन्त विमानसे च्युत होकर उसके गर्भमें आया। सबेरा होते ही रानीने प्राणनाथ-राजासे स्वप्नोंका फल पूछा तब उन्होंने कहा कि आज तुम्हारे गर्भमें जगद्वन्द्य किसी महापुरुषने प्रवेश किया है। नव माह बाद तुम्हारे प्रतापी पुत्र उत्पन्न होगा। इधर राजा सुदर्शन रानीको स्वप्नोंका फल सुना रहे थे उधर जय जय शब्दसे आकाशको गुञ्जाते हुए देव लोग आ गये और भावी तीर्थंङ्कर अरनाथका गर्भकल्याण उत्सव मनाने लगे। उन्होंने माता पिता— सुदर्शन और मित्र सेनाका बहुत ही सन्मान किया और उन्हें स्वर्गसे लाये हुये अनेक वस्त्राभूषण भेंट किये। गर्भाधानका उत्सव समाप्त कर देव लोग अपने अपने स्थान पर चले गये।

नौ माह बाद रानी मित्रसेनाने मगशिर शुक्ला चतुर्दशीके दिन पुष्य नक्ष-त्रमें मतिश्रुत और अवधिज्ञानसे विराजित तीर्थंङ्कर पुत्रको उत्पन्न किया।

पुत्रके उत्पन्न होते ही सब ओर आनन्द छा गया। भक्ति से प्रेरे हुए चारों निकायोंके देवोंने मेरु पर्वत पर ले जाकर उसका अभिषेक किया। वहांसे लौटकर इन्द्रने महाराज सुदर्शनके घर पर आनन्द नामका नाटक किया तथा अनेक प्रकारके उत्सव किये। उस समय राज भवनमें जो भीड़ जमा थी उससे ऐसा मालूम होता था कि मानो तीनों लोकोंके समस्त प्राणी वहां पर एकत्रित हो गये हो। तीर्थङ्कर पुत्रका अरनाथ नाम रक्खा गया। देव लोग जन्मकल्याणकका उत्सव समाप्त कर अपने अपने स्थानों पर चले गये।

राज भवनमें भगवान् अरनाथका बड़े प्यारसे पालन होने लगा। वे अपनी बाल चेष्टाओंसे माता पिता बन्धु बान्धव आदिको बहुत ही हर्षित करते थे। माता मित्रसेनकी आशाओंके साथ वे निरन्तर बढ़ने लगे। जब उन्होंने युवावस्थामें पदार्पण किया तब उनकी शोभा बहुत ही विचित्र हो गई थी। उनकी सुन्दरता पर मुग्ध होकर उन्हें कामदेव कहने लगे थे।

श्रीकुन्थुनाथ तीर्थङ्करके बाद एक हजार करोड़ वर्ष कम चौथाई पल्य बीत जानेपर भगवान अरनाथ हुये थे। उनकी आयुभी इसी अन्तरालमें शामिल है। जिनराज अरनाथकी उत्कृष्ट आयु चौरासी हजार वर्षकी थी। तीस धनुष ऊंचा शरीर था। शरीरकी कान्ति सुवर्णके समान सचिक्कण-स्निग्ध पीली थी। उनके शरीरको रोग शोक दुःख वगैरह तो छू भी नहीं गये थे। योग्य अवस्था देखकर महाराज सुदर्शनने उनका कुलीन कन्याओंके साथ विवाह कर दिया और कुछ समय बाद उन्हें युवराज पद पर नियुक्त कर दिया था। इस तरह कुमारकालके इक्कीस हजार वर्ष बीत जाने पर उन्हें राज्य प्राप्त हुआ और इतने ही वर्ष बाद उनकी आयुधशालामें चक्ररत्न प्रकट हुआ। भगवान् अरनाथ चक्ररत्नको आगेकर असंख्य सेनाओंके साथ दिग्विजयके लिये निकले और कुछ वर्षोंमें ही समस्त भरतक्षेत्रमें अपना अधिपत्य स्थापितकर हस्तिनापुर वापिस लौट आये। दिग्विजयी सम्राट अरनाथका नगर प्रवेशोत्सव बड़ी सज धजसे मनाया गया था। उन्होंने चक्रवर्ती होकर इक्कीस हजार वर्ष तक राज्य किया और इस तरह उनकी आयुका तीन चौथाई हिस्सा गृहस्थ अवस्थामें ही बीत गया। एक दिन उन्हें शरद् ऋतुके बादलोंका नष्ट होना देखकर वैराग्य उत्पन्न

हो गया। उसी समय लौकान्तिक देवोंने आकर स्तुति की और उनके विचारोंका समर्थन किया जिससे उनकी वैराग्य भावना बड़ी ही प्रबल हो उठी थी लौकान्तिक देव अपना कार्य पूरा समझ कर स्वर्गको चले गये और उनके बदले समस्त देव देवेन्द्र आये। उन सबने मिलकर भगवान् अरनाथका दीक्षा अभिषेक किया तथा वैराग्यको बढ़ाने वाले अनेक उत्सव किये। भगवान् अरनाथ अपने पुत्र अरविन्दकुमारके लिये राज्य देकर देव निर्मित बैजयन्ती नामकी पालकी पर सवार हो सहेतुक बनमें पहुंचे। वहां उन्होंने दो दिनके उपवासकी प्रतिज्ञा लेकर मगसिर शुक्ला दशमीके दिन रेवती नक्षत्रके समय जिनदीक्षा धारण करली—समस्त वस्त्रा भूषण उतारकर फेंक दिये और पंच मुष्टियोंसे सिर परके केश उखाड़ डाले। उन्हें उसी समय मनः पर्यय ज्ञान भी प्राप्त हो गया था। उनके साथमें एक हजार राजाओंने भी दीक्षा ली थी। देव लोग निःक्रमण कल्याणकका उत्सव समाप्त कर अपने अपने घर चले गये और भगवान् अरनाथ मेरु पर्वतकी तरह अचल हो आत्मध्यानमें लीन हो गये। पारणेके दिन वे चक्रपुर नगरमें गये वहां उन्हें राजा अपराजितने आहार दिया। पात्रदानसे प्रभावित होकर देवोंने अपराजित राजाके घर पर पंचाश्चर्य प्रकट किये। आहार लेनेके बाद वे बनमें लौट आये और वहां कठिन तपश्चर्याओंके द्वारा आतम शुद्धि करने लगे।

उन्होंने कई जगह विहार कर छद्मस्थ अवस्थाके सोलह वर्ष व्यतीत किये इन दिनोंमें वे मौन पूर्वक रहते थे। इसके अनन्तर वे उसी सहेतु बनमें आकर दो दिनके उपवासकी प्रतिज्ञा ले माकन्द—आमके पेड़के नीचे बैठ गये। वहां पर उन्हें घातिया कर्मोंका क्षय हो जानेसे कार्तिक शुक्ला द्वादशीके दिन रेवती नक्षत्रमें शामके समय पूर्णज्ञान-केवलज्ञान प्राप्त हो गया जिससे वे समस्त जगत्की चराचर वस्तुओंको हस्ताकमलवत् स्पष्ट जानने लगे। उसी समय देवोंने आकर ज्ञानकल्याणकका उत्सव किया। कुबेरने दिव्य सभा--समवसरणकी रचनाकी जिसके मध्यमें सिंहासन पर अन्तरीक्ष विराजमान होकर उन्होंने अपना सोलह वर्षका मौन भङ्ग किया मधुर ध्वनिमें सबको उपदेश देने लगे। उपदेशके समय समवसरणकी बारहों सभाएं खचा खच भरी हुई थीं। उनके

उपदेशसे प्रतिबुद्ध होकर अनेक नर नारियोंने व्रत दीक्षाएं ग्रहण की थीं। इसके बाद उन्होंने अनेक क्षेत्रोंमें विहार किया और जैनधर्मका ठोंस प्रचार किया। अनेक पथ भ्रान्त पुरुषोंको सच्चे पथ पर लगाया।

उनके समवशरणमें कुम्भार्य आदि तीस गणधर थे, छह सौ दश श्रुत-केवली थे, पैंतीस हजार आठसौ पैंतीस शिक्षक थे, अट्ठाईस सौ अवधिज्ञानी थे, इतने ही केवलज्ञानी थे, चार हजार तीन सौ विक्रिया ऋद्धिके धारक थे, दो हजार पचपन मनः पर्यय ज्ञानी थे और एक हजार छह सौ वादी थे। इस तरह सब मिलाकर अर्द्ध लक्ष--पचास हजार मुनिराज थे। यक्षिला आदि साठ हजार आर्यिकायें थीं, एक लाख साठ हजार श्रावक थे, तीन लाख श्राविकायें थीं असंख्यात देव देवियां और संख्यात तीर्यंच थे।

जब उनकी आयु एक माहकी अवशिष्ट रह गई तब उन्होंने सम्मेद-शिखर पर पहुंचकर एक हजार मुनियोंके साथ प्रतिमा योग धारण कर लिया और वहींसे चैत्र कृष्ण अमावास्याके दिन रेवती नक्षत्रमें रात्रिके पहले पहरमें मोक्ष प्राप्त किया। देवोंने आकर उनके निर्वाण क्षेत्रकी पूजा की तथा अनेक उत्सव मनाये। श्री अरनाथभी पहलेके दो तीर्थकरोंकी तरह तीर्थङ्कर, चक्रवर्ती और कामदेव इन तीन पदवियोंके धारक थे।



भगवान् मल्लिनाथ

मोह मल्ल मद भेदन धीरं कीर्तिमान मुखरीकृत वीरम्।
धैर्यखड्ग विनिपातित मारं तं नमामि व' मल्लिकुमारम्॥—लेखक

"जो मोह-मल्लके भेदन करनेमें धीर-वीर हैं, जिन्होंने अपनी कीर्ति गाथाओंसे वीर मनुष्योंको वाचालित किया है और जिन्होंने धैर्य रूप कृपाणसे कामदेवको नष्ट कर दिया है मैं उन मल्लिकुमारको नमस्कार करता हूँ।"

पूर्वभव वर्णन

जम्बूद्वीपके विदेह क्षेत्रमें मेरु पर्वतसे पूर्वकी ओर एक कच्छपवती देश है। उसमें अपनी शोभासे स्वर्गपुरीको जीतनेवाली एक वीतशोका नामकी नगरी है। किसी समय उसमें वैश्रणव नामका राजा राज्य करता था। राजा वैश्रणव महा बुद्धिमान् और प्रतापी पुरुष था। उसने अपने पुरुषार्थसे समस्त पृथ्वीको अपने आधीन कर लिया था। वह हमेशा प्रजाके कल्याण करनेमें तत्पर रहता था। दीन-दुखियोंकी हमेशा सहायता किया करता था और कला कौशल विद्या आदिके प्रचारमें विशेष योग देता था। एक दिन राजा वैश्रणव वर्षा ऋतुकी शोभा देखनेके लिये कुछ इष्ट-मित्रोंके साथ वनमें गया था। वहां सुन्दर, हरियाली, निर्मल, निर्झर, नदियोंकी तरल तरंगें, श्यामल मेघ माला, इन्द्रधनुष, चपलाकी चमक, बलाकाओंका उत्पतन और मयूरोंका मनोहर नृत्य देखकर उसकी तबियत बाग बाग हो गई। वर्षाऋतुकी सुन्दर शोभा देखकर उसे बहुत ही हर्ष हुआ। वहीं वनमें घूमते समय राजाको एक विशाल बड़का वृक्ष मिला, जो अपनी शाखाओंसे आकाशके बहु भागको घेरे हुये था। वह अपने हरे हरे पत्तोंसे समस्त दिशाओंको हरा हरा कर रहा था। और लटकते हुये पत्तोंसे जमीनको खूब पकड़े हुये था। राजा उस वट वृक्षकी शोभा अपने साथियोंको दिखलाता हुआ आगे चला गया। कुछ देर बाद जब वह उसी रास्तेसे लौटा तब उसने देखा कि बिजलीके गिरनेसे वह विशाल बड़का वृक्ष जड़ तक जल चुका है। यह देखकर उसका मन विषयोंसे सहसा विरक्त हो गया। वह सोचने लगा—कि 'जब इतना सुदृढ़ वृक्ष भी क्षण एकमें नष्ट हो गया तब दूसरा कौन पदार्थ स्थिर रह सकता है? मैं जिन भौतिक भोगोंको सुस्थिर समझकर उनमें तल्लीन हो रहा हूँ वे सभी इसी तरह भङ्गुर हैं। मैंने इतनी विशाल आयु व्यर्थ ही खो दी। कोई ऐसा काम नहीं किया जो मुझे संसारकी महा व्यथासे हटाकर सच्चे सुखकी ओर ले जा सके' इत्यादि विचार करता हुआ राजा वैश्रवण अपने घर लौट आया और वहां पुत्रको राज्य दे किसी वनमें पहुंचकर श्रीनाग नामक मुनिराजके पास दीक्षित हो गया। वहां उसने उग्र तपस्यासे

आत्म हृदयको सुविशुद्ध बनाया और निरन्तर अध्ययन करके ग्यारह अंगों तकका ज्ञान उपार्जन किया। उसी समय उसने दर्शन विशुद्धि आदि सोलह कारण भावनाओंका चिन्तवन कर तीर्थंकर नामक महापुण्य प्रकृतिका बन्ध किया। जब आयुका अन्त समय आया तब उसने सल्लेखना पूर्वक शरीरका परित्याग किया जिससे वह अपराजित नामके अनुत्तर विमानमें अहमिन्द्र हुआ। वहांपर उसकी आयु तेतीस सागर प्रमाण थी, एक हाथ ऊंचा शरीर था, शुक्ल लेश्या थी। वह तेतीस हजार वर्ष बाद मानसिक आहार लेता और और तेतीस पक्षमें सुगन्धित श्वास लेता था। उसे जन्मसे ही अवधि ज्ञान था जिससे वह लोक नाड़ीके अन्ततककी बातोंको स्पष्ट जान लेता था। वह प्रवीचार—स्त्री संसर्गसे रहित था। उसे काम नहीं सताता था। वह निरन्तर तत्व-चर्चा आदिमें ही अपना समय बिताता था। यही अहमिन्द्र आगे चलकर मल्लिनाथ तीर्थंकर होगा। कब और कहां ? सो सुनिये।

[२] वर्तमान परिचय

जम्बू द्वीपके भरत क्षेत्रके बंग-बंगाल नामके देशमें एक मिथिला नामकी नगरी है। जिसकी उर्वरा जमीनमें हर एक प्रकारकी शस्य होती है। उसमें किसी समय इक्ष्वाकु वंशीय काश्यप गोत्री राजा कुम्भ राज्य करते थे। उनकी महारानीका नाम प्रजावती था। दोनों दम्पति सुखसे समय बिताते थे। ऊपर जिस अहमिन्द्रका कथन कर चुके हैं उसकी जब वहांपर (अपराजित विमान में) सिर्फ छह माहकी आयु बाकी रह गई तबसे रानी प्रजावतीके घरपर कुबेर ने रत्नोंकी वर्षा करनी शुरू कर दी। चैत्र शुक्ला प्रतिपदाके दिन अश्विनी नक्षत्रमें रात्रिके पिछले पहरमें उसने हाथी आदि सोलह स्वप्न देखे और मुंह में प्रवेश करते हुये एक गन्ध सिन्धुर-मत्त हाथीको देखा। उसी समय उक्त अहमिन्द्रने अपराजित विमानसे चयकर रानी प्रजावतीके गर्भमें प्रवेश किया जब सवेरा हुआ तब उसने उन स्वप्नोंका फल प्राणनाथ कुम्भ महाराजसे पूछा उन्होंने स्वप्नोंका अलग अलग फल बतलाते हुए कहा कि आज तुम्हारे गर्भ में किसी महापुरुष तीर्थंकरने पदार्पण किया है। नौ माह बाद तुम्हारे तीर्थंकर पुत्र उत्पन्न होगा। ये सोलह स्वप्न उसीका अभ्युदय बतला रहे हैं। राजा

यह कहकर रुके ही थे कि इतनेमें आकाश मार्गसे असंख्य देव जय जय शब्द करते हुये उनके पास आ पहुँचे। देवोंने भक्ति पूर्वक राज दम्पतिको नमस्कार किया और अनेक सुन्दर शब्दोंमें उनकी स्तुति की। साथमें लाये हुये दिव्य वस्त्राभूषणोंसे उनकी पूजा की तथा भगवान् मल्लिनाथके गर्भावतारका समाचार प्रकट कर अनेक उत्सव किये। देवोंके चले जानेपर भी अनेक देवियां महा रानी प्रजावतीकी सेवा-शुश्रूषा करती रही थीं। जिससे उसे गर्भ सम्बन्धी किसी भी कष्टका सामना नहीं करना पड़ा था।

जब धीरे धीरे गर्भके नौ माह बीत गये तब उसने मार्गशीर्ष सुदी एकादशीके दिन अश्विनी नक्षत्रमें उस पुत्र रत्नको उत्पन्न किया, जो पूर्ण चन्द्र की तरह चमकता था, जिसके सब अवयव अलग अलग विभक्त थे और जो जन्मसे ही मति श्रुत तथा अवधिज्ञानसे विभूषित था। उसी समय इन्द्रादि देवोंने बालकको मेरु शिखरपर ले जाकर वहां क्षीर सागरके जलसे उसका कलशाभिषेक किया। बादमें घर लाकर माताकी गोदमें बैठा दिया और तांडव नृत्य आदि अनेक उत्सवोंसे उपस्थित जनताको आनन्दित किया। जन्मका उत्सव समाप्त कर देव लोग अपनी अपनी जगहपर चले गये। वहां राज भवन में बालक मल्लिनाथका उचित रूपसे लालन पालन होने लगा।

क्रम क्रमसे बाल्य और कौमार अवस्थाको व्यतीत कर जब उन्होंने युवावस्थामें पदार्पण किया तब उनके शरीरकी आभा बहुत ही विचित्र हो गई थी। उस समय उनका सुन्दर सुडौल शरीर देखकर हरएककी आंखें संतृप्त हो जाती थीं। अठारहवें तीर्थंकर भगवान् अरहनाथके बाद एक हजार करोड़ वर्ष बीत जानेपर भगवान् मल्लिनाथ हुये थे। उनकी आयु भी इसी अन्तरालमें शामिल है। पञ्चपञ्चाशत्—पचपन हजार वर्षकी उनकी आयु थी। पचीस धनुष ऊंचा शरीर था, और सुवर्णके समान शरीरकी कान्ति थी। जब भगवान मल्लिनाथकी आयु सौ वर्षकी हो गई तब उनके पिता महाराज कुम्भने उनके विवाह की तैयारी की। मल्लिनाथके विवाहोत्सवके लिये पुरवासियोंने मिथिलापुरीको खूब ही सजाया। अपने द्वारोंपर मणियोंकी वन्दन मालाएं बांधी। मकानोंकी शिखरोंपर पताकायें फहराईं। मार्गमें सुगन्धित जल सींचकर फूल बरसाये।

और कई तरहके बाजोंके शब्दोंसे नभको गुंजा दिया। इधर राज परिवार और पुरवासी विवाहोत्सवकी तैयारीमें लग रहे थे, उधर भगवान् मल्लिनाथ राजभवनके विजन स्थानमें बैठे हुये सोच रहे थे कि—विवाह, यह एक मीठा बन्धन है। मनुष्य इस बन्धनमें फंसकर आत्म स्वातन्त्र्यसे सर्वथा वंचित हो जाते हैं। विवाह, यह एक प्रचण्ड पवन है, जिसके प्रबल झकोरोंसे प्रशान्त हुई विषयवह्नि पुनः उद्दीप्त हो उठती है। विवाह, यह एक मलिन कर्दम-कीचड़ है जो कि आत्म क्षेत्रको सर्वथा मलिन बना देती है। विवाहको सभी कोई बुरी दृष्टिसे देखते आये हैं और है भी यह बुरी चीज। तब मैं क्यों व्यर्थ ही इस जंजालमें अपने आपको फंसा दूँ। मेरा सुदृढ़ निश्चय है कि मेरे जो उच्च विचार और उन्नत भावनाएं हैं, विवाह उन सब पर एकदम पानी फेर देगा। मेरे उन्नतिके मार्गमें यह विवाह एक अचल-पर्वतकी तरह आड़ा हो जावेगा। इसलिये मैं आज निश्चय करता हूं कि अब मैं इन भौतिक भोगों पर लात मार कर शीघ्र ही आत्मीय आनन्दकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न करूंगा।"...उसी समय लौकान्तिक देवोंने उनके उच्च आदर्श विचारोंका समर्थन किया जिससे उनका वैराग्य अधिक प्रकर्षताको प्राप्त हो गया। अपना कार्य समाप्तकर लौकान्तिक देव अपने-अपने स्थानों पर चले गये और सौधर्म आदि इन्द्रोंने आकर दीक्षा कल्याणकका उत्सव करना आरम्भ कर दिया। भगवान् मल्लिनाथके इस आकस्मिक विचार परिवर्तनसे सारी मिथिलामें क्षोभ मच गया। उभय पक्षके माता पिताके हृदय पर भारी ठेस पहुंची। पर उपाय ही क्या था। विवाहकी समस्त तैयारियां एकदम बन्द कर दी गईं। उस समय नगरीमें श्रृङ्गार और शान्त रसका अद्भुत समर हो रहा था। अन्तमें शान्तरसने श्रृङ्गारको धराशायी बनाकर सब ओर अपना आधिपत्य जमा लिया था। देवोंने भगवान् मल्लिनाथका अभिषेक कर उन्हें अच्छे-अच्छे वस्त्राभूषण पहिनाये दीक्षाभिषेकके बाद वे देवनिर्मित जयंत नामकी पालकी पर सवार होकर श्वेत वनमें पहुंचे और वहां दो दिनके उपवासकी प्रतिज्ञा लेकर मार्गशीर्ष सुदी एकादशीके दिन अश्विनी नक्षत्रमें शामके समय तीन सौ राजाओंके साथ नग्न दिगम्बर हो गये—सब वस्त्राभूषण उतार कर फेंक दिये तथा पंचमुष्टि-

थोंसे केश लुंचकर अलग कर दिये। उन्हें दीक्षा धारण करते ही मनःपर्यय ज्ञान प्राप्त हो गया था। तीसरे दिन वे आहारके लिये मिथिलापुरीमें गये। वहां उन्हें नन्दिषेणने भक्ति पूर्वक आहार दिया। पात्रदानसे प्रभावित होकर नन्दिषेणके घरपर देवोंने पंचाश्चर्य प्रकट किये।

आहार लेकर भगवान् मल्लिनाथ पुनः वनमें लौट आये और आत्म ध्यानमें लीन हो गये। दीक्षा लेनेके छह दिन बाद उन्हें उसी श्वेत वनमें अशोक वृक्षके नीचे जन्म तिथि—मार्गशीर्ष सुदी एकादशीके दिन अश्विनी नक्षत्रमें प्रातःकालके समय दिव्यज्ञान-केवल ज्ञान प्राप्त हो गया। उसी समय इन्द्र आदि देवोंने आकर ज्ञान कल्याणकका उत्सव मनाया। इन्द्रकी आज्ञा पाकर कुबेरने समवसरण धर्मसभाकी रचना की। उसके मध्यमें विराजमान होकर भगवान् मल्लिनाथने अपना छह दिनका मौन भंग किया। दिव्य ध्वनि द्वारा सप्ततत्व, नवपदार्थ, छह द्रव्य आदिका पुष्कल विवेचन किया। चारों गतियोंके दुःखोंका वर्णन किया जिससे प्रभावित होकर अनेक नर नारियोंने मुनि-आर्यिका और श्रावक-श्राविकाओंके व्रत धारण किये।

उनके समवसरणमें विशाख आदि अट्ठाईस गणधर थे, साढ़े पांच सौ ग्यारह अंग चौदह पूर्वके जानकार थे। उनतीस हजार शिक्षक थे दो हजार दो सौ अवधि-ज्ञानी थे, इतने ही केवल ज्ञानी थे, एक हजार चार सौ वादी थे, दो हजार नौ सौ विक्रिया-ऋद्धिके धारक थे और एक हजार सात सौ पचास मनपर्यय ज्ञानी थे। इस तरह सब मिलकर चालीस हजार मुनिराज थे। बन्धुषेणा आदि पचपन हजार आर्यिकाएं थीं, एक लाख श्रावक थे, तीन लाख श्राविकाएं थीं, असंख्यात देव देवियां थीं और संख्यात तिर्यञ्च थे।

भगवान् मल्लिनाथने अनेक आर्य क्षेत्रोंमें विहार कर पथभ्रान्त पथिकोंको मोक्षका सच्चा रास्ता बतलाया। जब उनकी आयु सिर्फ एक माहकी बाकी रह गई तब उन्होंने सम्मेद शिखरपर पहुंचकर पांच हजार मुनियोंके साथ प्रतिमा योग धारण कर लिया। और अन्तमें योग निरोधकर फाल्गुन शुक्ला पञ्चमीके दिन भरणी नक्षत्रमें शामके समय कर्मोंको नष्टकर मोक्ष महलमें प्रवेश किया। उसी समय देवोंने आकर सिद्ध क्षेत्रकी पूजा की और निर्वाण कल्या-णकका उत्सव मनाकर प्रचुर पुण्यका सञ्चय किया।

भगवान् मल्लिनाथने कुमार अवस्थामें ही अजेय कामदेवको जीतकर अपने नामको सार्थक किया था। वे महाबली थे—शूरवीर थे, किन्तु नर शत्रुओं के संहारके लिये नहीं, अपि तु आत्म शत्रु मोह मद मदन आदिको जीतनेके लिये। इस तरह इनके पवित्र जीवन और निर्मल आचारोंका विचार करनेपर 'मल्लिनाथ स्त्री थे' यह केवल कल्पना है।



भगवान् मुनिसुव्रतनाथ

अबोध कालोरग मूढ़ दष्ट
मबूबुधत् गारुडरत्नवद्यः।
जगत्कृपाकोमल दृष्टि पातैः
प्रभुः प्रसद्यान्मुनिसुव्रतो नः ॥—अर्हद्दास

"जिन्होंने अज्ञानरूपी काले सर्पके द्वारा डसे हुए इस मूर्छित संसारको गरुडरत्नके समान सचेत किया था वे भगवान् मुनि सुव्रतनाथ अपने कृपा कोमल दृष्टिपातके द्वारा हम सबपर प्रसन्न होवें।"

[१] पूर्वभव वर्णन

जम्बूद्वीप-भरतक्षेत्रके अङ्ग देशमें एक चम्पापुर नामका नगर था। उसमें किसी समय हरिवर्मा नामके राजा राज्य करते थे। महाराज हरिवर्मा अपने समयके अद्वितीय वीर बहादुर थे। उन्होंने अपने बाहुबलसे समस्त शत्रुओंकी आंखें नीचे कर दी थीं।

एक दिन चम्पापुरके किसी उद्यानमें अनन्त वीर्य नामके मुनिराज पधारे। उनके पुण्य प्रतापसे वनमें एक साथ छहों ऋतुओंकी शोभा प्रकट हो गई। विरोधी जन्तुओंने परस्परका वैरभाव छोड़ दिया। जब वनमालीने जाकर राजा हरिवर्मासे मुनिराज अनन्तवीर्यके शुभागमनका समाचार कहा तब वे बहुत ही प्रसन्न हुए। सच है—भव्य पुरुषोंको वीतराग साधुओंके समागमसे जो

सुख होता है वह अन्य पदार्थोंके समागमसे नहीं होता। आभरण आदि देकर उन्होंने वनमालीको विदा किया और आप इष्ट परिवारके साथ पूजनकी सामग्री लेकर मुनिराज अनन्त वीर्यकी वन्दनाके लिये गये। वनमें पहुंचकर राजा हरिवर्माने छत्र चमर आदि राजाओंके चिन्ह दूरसे ही अलग कर दिये और शिष्यकी तरह विनीत होकर मुनिराजके पास पहुंचे। अष्टाङ्ग नमस्कार कर हरिवर्मा, मुनिराजके समीप ही जमीनपर बैठ गये। अनन्तवीर्यने 'धर्म वृद्धिरस्तु' करते हुए राजाके नमस्कारका प्रत्युत्तर दिया। और फिर स्याद्स्ति, स्यान्नास्ति, आदि सात भङ्गोंको लेकर जीव अजीव आदि तत्वोंका स्पष्ट विवेचन किया। मुनिराजके व्याख्यानसे महाराज हरि वर्माको आत्म बोध हो गया। उन्होंने उसी समय अपनी आत्माको पर पदार्थोंसे भिन्न अनुभव किया और राग द्वेषको दूर कर उसे सुविशुद्ध बनानेका सुदृढ़ निश्चय कर लिया। घर आकर उन्होंने अपने ज्येष्ठ पुत्रको राज्य दिया और फिर वनमें जाकर अनेक राजाओंके साथ उन्हीं अनन्त वीर्य मुनिराजके पास जिन-दीक्षा ग्रहण कर ली। गुरुके पास रह कर उन्होंने ग्यारह अंगोंका ज्ञान प्राप्त किया तथा दर्शन विशुद्धि आदि सोलह भावनाओंका चिन्तवन कर तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध किया। इस तरह बहुत दिनतक कठिन तपस्या करके आयुके अन्तमें सल्लेखना विधिसे शरीर त्याग किया जिससे चौदहवें प्राणत स्वर्गमें इन्द्र हुए। वहांपर उनकी बीस सागरकी आयु थी, शुक्ल लेश्या थी, साढ़े तीन हाथ ऊंचा शरीर था। बीस पक्षवाद उच्छ्वास लिया और बीस हजार वर्ष बाद आहारकी इच्छा होती थी। वे वहां अपने सहजात अवधिज्ञानसे पांचवें नरकतककी बात जान लेते थे। उनके हजारों सुन्दरी स्त्रियां थीं पर उनके साथ कायिक प्रवीचार नहीं होता था। कषायोंकी मन्दता होनेके कारण मान-सिक संकल्प मात्रसे ही उन दम्पतियोंकी कामेच्छा शान्त हो जाती थी। यही इन्द्र आगेके भवमें भगवान् मुनिसुव्रतनाथ होंगे। कहां ? सो सुनिये।

[२] वर्त्तमान परिचय

इसी भरतक्षेत्रके मगध (विहार) प्रांतमें एक राजगृह नामका नगर है।

उसमें हरिवंशका शिरोमणि सुमित्र नामका राजा राज्य करता था। उसकी स्त्रीका नाम सोमा था। दोनों दम्पति सुखसे समय व्यतीत करते थे। पहले उन्हें किसी बातकी चिन्ता नहीं थी। पर जब सोमाकी अवस्था बीतती गई और कोई सन्तान पैदा नहीं हुई तब उन्हें सन्तानका अभाव निरन्तर खटकने लगा। राजा सुमित्र समझदार पुरुष थे, संसारकी स्थितिको अच्छी तरह जानते थे, इसलिये वे अपने आपको बहुत कुछ समझाते रहते थे। उन्हें सन्तान का अभाव विशेष कटु नहीं मालूम होता था। पर सोमाका हृदय कई बार समझाने पर भी पुत्रके अभावमें शान्त नहीं होता था।

एक दिन जब उसकी नजर गर्भवती क्रीड़ा हंसी पर पड़ी, तब वह अत्यंत व्याकुल हो उठी और अपने आपकी निन्दा करती हुई आंसू बहाने लगी। जब उसकी सखियों द्वारा राजा सुमित्रको उसके दुःखका पता चला तब वे शीघ्र ही अन्तःपुर दौड़े आये और तरह तरहके मीठे शब्दोंमें रानीको समझाने लगे। उन्होने कहा कि जो कार्य्य सर्वथा दैवके द्वारा साध्य है उसमें मनुष्यका पुरुपार्थ क्या कर सक्ता है ? इसलिये दैव साध्य वस्तुकी प्राप्तिके लिये चिन्ता करना व्यर्थ है इत्यादि रूपसे समझाकर सुमित्र महाराज राजसभाकी ओर चले गये और रानी सोमा भी क्षण एकके लिये हृदयका दुःख भूलकर कार्यान्तरमें लग गईं।

एक दिन महाराज सुमित्र राज सभामें बैठे हुए थे कि इतनेमें इन्द्रकी आज्ञा पाकर अनेक देवियां आकाशसे उतरती हुई राजसभामें आईं और जय जय शब्द करने लगीं। राजाने उन सबका सत्कार कर उन्हें योग्य आसनोंपर बैठाया और फिर उनसे आनेका कारण पूछा। राजाके वचन सुन कर श्रीदेवीने कहा कि महाराज! आजसे पन्द्रह माह बाद आपकी मुख्य रानी सोमाके गर्भसे भगवान् मुनिसुव्रतनाथका जन्म होगा। इसलिये हम सब इन्द्रकी आज्ञा पाकर मुनिसुव्रतनाथकी माताकी शुश्रूषा करनेके लिये आई हुई हैं। इधर देवियों और राजाके बीचमें यह सम्वाद चल रहा था उधर आकाशसे अनेक रत्नोंकी वर्षा होने लगी। रत्नोंकी वर्षा देखकर देवियोंने कहा—कि महाराज! ये सब उसी पुण्य मूर्ति बालकके अभ्युदयको बतला

रहे हैं। देवियोंके वचन सुनकर राजा बहुत ही प्रसन्न हुए। राजाकी आज्ञा पाकर देवियां अन्तःपुर पहुंचीं और वहां महारानी सोमाकी सेवा करने लगीं। छह माह बाद रानीने श्रावण कृष्णा द्वितीयाके दिन रात्रिके पिछले पहरमें सोलह स्वप्न देखे। उसी समय उक्त इन्द्रने प्राणत स्वर्गसे मोह छोड़कर रानी सोमाके गर्भमें प्रवेश किया. देवोंने गर्भ कल्याणकका उत्सव किया और राज दम्पतिका खूब सत्कार किया। जब धीरे धीरे गर्भके दिन पूर्ण हो गये तब रानी सोमाने वैसाख बदी दशमीके दिन श्रवण नक्षत्रमें पुत्र रत्न उत्पन्न किया। देवोंने आकर उसका अभिषेक किया और मुनिसुव्रत नाम रक्खा। बालक मुनिसुव्रतका राजभवनमें योग्य रीतिसे लालन पालन हुआ। क्रम क्रम से जब उन्होंने युवावस्थामें पदार्पण किया तब पिता सुमित्र महाराजने उनका किन्हीं योग्य कुलीन कन्याओंके साथ विवाह कर दिया। भगवान् मुनिसुव्रत अनुकूल स्त्रियोंके साथ तरह तरहके कौतुक करते हुए मदनदेवकी आराधना करने लगे। श्री मल्लिनाथ तीर्थंकरके मोक्ष जानेके बाद चौअन लाख वर्ष बीत जानेपर भगवान् मुनिसुव्रतनाथ हुए थे। उनकी आयु भी इसी अन्तराल में शामिल है। तीस हजार वर्षकी उनकी आयु थी, बीस धनुष ऊंचा शरीर था, और रंग मोरके गलेकी तरह नीला था।

जब कुमार कालके सात हजार पांच सौ वर्ष बीत गये तब उन्हें राज्य गद्दी प्राप्त हुई। राज्य पाकर भगवान् मुनिसुव्रतनाथने प्रजाका इस तरह पालन किया था कि जिससे वह सुमित्र महाराजका स्मरण बहुत समय तक नहीं रख सकी थी। इस तरह आनन्दपूर्वक राज्य करते हुए जब उन्हें पंद्रह हजार वर्ष बीत गये तब एक दिन मेघोंकी गर्जना सुननेसे उनके प्रधान हाथी ने खाना पीना छोड़ दिया। जब लोगोंने मुनिसुव्रत स्वामीसे उसका कारण पूछा तब वे अवधि ज्ञानसे सोचकर कहने लगे—"कि, यह हाथी इससे पहले भवमें तालपुर नगरका स्वामी नरपति नामका राजा था। उसे अपने कुल, धन, ऐश्वर्य आदिका बहुत ही अभिमान था। उसने एक बार पात्र अपात्रका कुछ भी विचार न कर किमिच्छक दान दिया था; जिससे मरकर यह हाथी हुआ है। इस समय इसे अपने अज्ञानका कुछ भी पता नहीं है न बड़ी भारी राज्य संपदा

का। यह मूर्ख केवल वनका स्मरण कर दुःखी हो रहा है।...भगवानके उक्त वचन सुनकर उस हाथीको अपने पूर्वभवका स्मरण हो आया जिससे उसने शीघ्र ही देवव्रत धारण कर लिये। इसी घटनासे भगवान मुनि सुव्रतनाथको भी आत्मज्ञान उत्पन्न हो गया। वे संसार परिभ्रमणसे एकदम उदास हो गये। उसी समय उन्होंने विषयोंकी निस्सारताका विचार कर उन्हे छोड़नेका सुदृढ़ निश्चय कर लिया। लौकान्तिक देवोंने आकर उनके उक्त विचारोंका समर्थन किया जिससे उनका वैराग्य और भी अधिक बढ़ गया। अपना कार्य पूरा कर लौकान्तिक देव तो अपने स्थानपर चले गये और चतुर्णिकायके देवों ने आकर दीक्षा कल्याणकका उत्सव मनाया। भगवान मुनि सुव्रतनाथ युव-राज विजयको राज्य देकर देव निर्मित अपराजिता पालकीपर सवार हो नील नामक वनमें पहुंचे। वहां उन्होंने वैसाख कृष्ण दशमीके दिन श्रवण नक्षत्रमें शामके समय तेलातीन दिनके उपवासकी प्रतिज्ञा लेकर एक हजार राजाओंके साथ जिन दीक्षा ले ली। उन्हें जिन दीक्षा लेते ही मनःपर्यय ज्ञान तथा अनेक ऋद्धियाँ प्राप्त हो गई थीं। चौथे दिन आहार लेनेके लिये वे राज-गृह नगरीमें पहुंचे। वहां उन्हें वृषभसेनने नवधा भक्ति पूर्वक शुद्ध-प्रासुक आहार दिया। पात्रदानसे प्रभावित होकर देवोंने वृषभसेनके घर पर पञ्चाश्चर्य प्रकट किये। राजगृहीसे लौटकर उन्होंने ग्यारह महीने तक कठिन तपश्चरण किया और फिर वैसाख कृष्ण नवमीके दिन श्रवण नक्षत्रमें शामके समय उसी नील वनमें चम्पक वृक्षके नीचे केवल ज्ञान प्राप्त कर लिया।

केवल ज्ञानके द्वारा वे विश्वके चराचर पदार्थोंको एक साथ जानने लगे थे। उसी समय देवोंने आकर ज्ञान कल्याणकका उत्सव किया। धनपतिने दिव्य सभा-समवसरणकी रचना की। उसके मध्यमें स्थित होकर उन्होंने अपना मौन भंग किया—दिव्य ध्वनिके द्वारा सर्वोपयोगी तत्वोंका स्पष्ट विवेचन किया। चारों गतियोंके दुःखोका लोमहर्षण वर्णन किया, जिससे अनेक भव्य जीव प्रतिबुद्ध हो गये थे। इन्द्रकी प्रार्थना सुनकर उन्होंने अनेक आर्य क्षेत्रोंमें विहार किया और असंख्य नर नारियोंको धर्मका सच्चा स्वरूप समझाया। धीरे धीरे उनके समवसरणमें अनेक भव्य जीवोंने आश्रय लिया था।

आचार्य गुणभद्रने लिखा है कि—'उनके समवसरणमें मल्लि आदि अठारह गणधर थे, पाँच सौ द्वादशाँगके जानकार थे, इक्कीस हजार शिक्षक थे, एक हजार आठ सौ अवधिज्ञानी थे, एक हजार पांच सौ मनः पर्ययज्ञानी थे एक हजार आठ सौ केवलज्ञानी थे, बाईस सौ विक्रिया ऋद्धिके धारक थे और एक हजार दो सौ वादी थे। इस तरह सब मिलकर तीस हजार मुनिराज थे। इनके सिवाय पुष्पदत्ता आदि पचास हजार आर्यिकाएँ थीं, एक लाख श्रावक थे, तीन लाख श्राविकाएं थीं, असंख्यात देव-देवियाँ और संख्यात तिर्यंच थे। इन सबके साथ भगवान मुनि सुव्रतनाथ अनेक आर्य क्षेत्रोंमें विहार करते थे।

निरन्तर विहार करते-करते जब उनकी आयु एक माह अवशिष्ट रह गई तब उन्होंने सम्मेद शिखरपर पहुंचकर वहां एक हजार राजाओंके साथ प्रतिमा योग धारण कर लिया और शुक्लध्यानके द्वारा अघाति चतुष्कका क्षय कर फाल्गुन कृष्ण द्वादशीके दिन श्रवण नक्षत्रमें रात्रिके पिछले पहर मुक्ति मन्दिरमें प्रवेश किया। इन्द्र आदि देवोंने आकर उनके निर्वाण कल्याणकका महान उत्सव किया।



भगवान नमिनाथ

शिखरिणी

स्तुतिः स्तोतुः साधोः कुशल परिणामाय स तदा
भवेन्मावा स्तुत्यः फलमपि ततस्तस्य च सतः।
किमेवं स्वाधीनाज्जगति सुलभ श्रायस पथे
स्तुयान्नत्वा विद्वान् सततमपि पूज्यं नमिजिनम्॥

—स्वामी समन्तभद्र

"साधुकी स्तुति, स्तुति करने वालेके कुशल-अच्छे परिणामके लिये होती है। यद्यपि उस समय स्तुति करने योग्य साधु सामने मौजूद हों और न भी

हों तथापि उस उत्कृष्ट स्तोताके स्तुतिका फल होता है। इस तरह संसारमें अपनी आधीनताके अनुसार जबकि हितका मार्ग सुलभ हो रहा है, तब कौन विद्वान हमेशा पूजनीय भगवान नमिनाथको नहीं पूजेगा? अर्थात सभी पूजेंगे।"

(१) पूर्वभव वर्णन

जम्बूद्वीपके भरत क्षेत्रमें एक वत्स नामका देश है, उसकी कौशाम्बी नामकी नगरीमें किसी समय पार्थिव नामका राजा राज्य करता था। पार्थिवकी प्रधान पत्नीका नाम सुन्दरी था। ये दोनों राज दम्पति सुखसे काल यापन करते थे। कुछ समय बाद इनके सिद्धार्थ नामका पुत्र पैदा हुआ। सिद्धार्थ बड़ा ही होनहार बालक था। जब वह बड़ा हुआ तब राजा पार्थिवने उसे युवराज बना दिया। एक दिन पार्थिव महाराज मनोहर नामके बगीचेमें घूम रहे थे। वहीं पर उन्हें एक मुनिवर नामके साधुके दर्शन हुये। राजाने उन्हें भक्तिसे शिर झुकाकर नमस्कार किया और उनके मुखसे धर्मका स्वरूप सुना। धर्मका स्वरूप सुन चुकनेके बाद उसने उनसे अपने पूर्वभव पूछे तब मुनिवर मुनिराजने अवधिज्ञान रूपी नेत्रोंसे स्पष्ट देखकर उसके पूर्वभव कहे। अपने पूर्वभवोंका समाचार जानकर राजा पार्थिवको वैराग्य उत्पन्न हो गया। उसने घर आकर युवराज सिद्धार्थको राज्य दिया और फिर वनमें पहुंचकर उन्हीं मुनिराजके पास जिन दीक्षा ले ली। इधर सिद्धार्थ भी पिताका राज्य पाकर बड़ी कुशलतासे प्रजाका पालन करने लगा। काल क्रमसे सिद्धार्थके एक श्रीदत्त नामका पुत्र हुआ जो अपने शुभ लक्षणोंसे कोई महापुरुष मालूम होता था। किसी समय राजा सिद्धार्थको अपने पिता-पार्थिव मुनिराजके समाधि मरणका समचार मिला जिससे वह उसी समय विषयोंसे विरक्त होकर मनोहर नामक वनमें गया और वहां महाबल नामक केवलीके दर्शन कर उनसे तत्वोंका स्वरूप पूछने लगा केवलीश्वर महाबल भगवानके उपदेशसे उसका वैराग्य पहलेसे और भी अधिक बढ़ गया। इसलिये वह युवराज श्रीदत्तके लिये राज्य देकर उन्हीं केवली भगवानकी चरण छायामें दीक्षित हो गया। उनके पास रहकर उसने क्षायिक सम्यग्दर्शन प्राप्त किया, ग्यारह अंगोका अध्ययन किया और विशुद्ध हृदयसे

दर्शन विशुद्धि सोलह कारण भावनाओंका चिन्तवन कर तीर्थङ्कर नामक पुण्य प्रकृतिका बन्ध किया। तथा आयुके अन्तमें समाधि धारण कर अपराजित नामक विमानमें अहमिन्द्र हुआ। वहां उसकी आयु तेतीस सागरकी थी। शरीर एक अरत्नि हाथ ऊंचा था, शुक्ल लेश्या थी। तेतीस हजार वर्ष बाद मानसिक आहार लेता और तेतीस पक्ष बाद श्वासोच्छास ग्रहण करता था। वहां वह अपने अवधिज्ञानसे सप्तम नरक तककी वार्ताएं स्पष्ट जान लेता था। यही अहमिद्र आगे चलकर भगवान् नमिनाथ होगा और संसारका कल्याण करेगा।

[२] वर्तमान परिचय

वहां अनेक तरहके सुख भोगते हुए जब उसकी आयु सिर्फ छह माहकी रह गई और वह भूतलपर अवतार लेनेके सम्मुख हुआ तब इसी भरत क्षेत्रमें बङ्ग—बङ्गाल देशकी मिथिला नगरीमें इक्ष्वाकु वंशीय महाराज श्री विजय राज्य करते थे जो अपने समयके अद्वितीय शूरवीर थे। उनकी महारानीका नाम वप्पिला था। देवोंने उनके घरपर रत्नोंकी वर्षा की और श्री ह्री आदि देवियोंने मन वचन कायसे उसकी सेवा की। उसने आश्विन कृष्णा द्वितियाके दिन अश्विनी नक्षत्रमें रातके पिछले भागमें हाथी आदि सोलह स्वप्न देखे। उसी समय उक्त अहमिन्द्रने अपराजित विमानमें चढ़कर हाथीके आकार हो उसके गर्भमें प्रवेश किया। सवेरा होते ही जब वप्पिला रानीने पतिदेवसे स्वप्नोंका फल पूछा तब उन्होंने कहा कि आज तुम्हारे गर्भमें त्रिभुवन नायक तीर्थंकर भगवानने प्रवेश किया है। ये सोलह स्वप्न और यह रत्नोंकी अविरल वर्षा उन्हींका माहात्म्य प्रकट कर रही है। सबेरा होते होते ही देवोंने आकर मिथिलापुरीकी तीन प्रदक्षिणाएं दीं और फिर राजभवनमें जाकर महाराज श्री विजय और वप्पिला देवीकी खूब स्तुति की। तथा अनेक वस्त्राभूषण देकर उन्हें प्रमुदित किया।

गर्भकालके नौ माह बीत जानेपर रानी वप्पिलाने आषाढ़ कृष्णा दशमीके दिन स्वाति नक्षत्रमें तेजस्वी बालकको उत्पन्न किया। उसके दिव्य तेजसे

समस्त प्रकृति गृह जगमगा उठा था। उसी समय देवोंने आकर उसके जन्म कल्याणकका उत्सव मनाया और नमिनाथ नामसे सम्बोधित किया। महाराज श्री विजयने भी पुत्र-रत्नकी उत्पत्तिके उपलक्ष्यमें करोड़ों रुपयोंका दान किया था। जन्मका उत्सव समाप्त कर देव लोग अपने अपने घर चले गये। राज-मन्दिरमें भगवान नमिनाथका उचित रूपसे पालन होने लगा।

क्रम-क्रमसे जब वे तरुण अवस्थाको प्राप्त हुए तब महाराज श्री विजयने उनका योग्य कुलीन कन्याओंके साथ विवाह सम्बन्ध कर दिया और उन्हें युवराज पदपर नियुक्त किया।

भगवान मुनि सुव्रतनाथके मोक्ष जानेसे साठ लाख वर्ष बीत जानेपर इन का अवतार हुआ था। इनकी आयु भी इसीमें शामिल है। आयु दश हजार वर्षकी थी। शरीर पन्द्रह धनुष ऊंचा था और शरीरका रङ्ग तपाये हुए सुवर्ण की तरह था। कुमार कालके पचीस सौ वर्ष बीत जानेपर उन्हें राज्याभिषेक पूर्वक राज्य गद्दी देकर श्री विजय महाराज आत्म-कल्याणकी ओर अग्रसर हुए थे। भगवान नमिनाथने राज्य पाकर दुष्टोंका उच्छेद और साधुओंका अनुग्रह किया। बीच-बीचमें देव लोग सङ्गीत आदिकी गोष्ठियोंसे उनका मन प्रसन्न रखते थे। इस तरह सुख पूर्वक राज्य करते हुए उन्हें पांच हजार वर्ष बीत गये।

एक दिन किसी वनमें घूमते हुए भगवान नमिनाथ वर्षा-ऋतुकी शोभा देख रहे थे कि इतनेमें आकाशमें घूमते हुए दो देव उनके पास पहुंचे। जब भगवानने उनसे आनेका कारण और परिचय पूछा तब वे कहने लगे—"नाथ इसी जम्बूद्वीपके विदेह क्षेत्रमें एक वत्सकावती देश है उसके सुसीमा नगर-में अपराजित विमानसे आकर एक अपराजित नामके तीर्थंकर हुए हैं। उनके केवल ज्ञानकी पूजाके लिये सब इन्द्रादिक देव आये थे। कल उनके समवस-रणमें किसीने पूछा था कि इस समय भरतक्षेत्रमें भी क्या कोई तीर्थङ्कर है। तब स्वामी अपराजितने कहा था कि इस समय भरतक्षेत्र—बंगाल प्रान्तकी मिथिला नगरीमें नमिनाथ स्वामी हैं, जो कुछ समय बाद तीर्थंकर होकर दिव्य ध्वनिसे संसारका कल्याण करेंगे। वे अपराजित विमानसे आकर वहां उत्पन्न

हुए हैं। महाराज! पहले हम दोनों धातकीखण्ड दीपके रहने वाले थे पर अब तपश्चर्याके प्रभावसे सौधर्म स्वर्गमें देव हुए हैं। दूसरे ही दिन हम लोग अपराजित केवलीकी बन्दनाके लिये गये थे सो वहांपर आपका नाम सुनकर दर्शनोंकी अभिलाषासे यहां आये हैं।

भगवान नमिनाथ देवोंकी बात सुनकर अपने नगरको लौट तो आये पर उनके हृदयमें संसार परिभ्रमणके दुःखने स्थान जमा लिया। उन्होंने सोचा कि यह जीव नाटकके नटकी तरह कभी देवका, कभी मनुष्यका, कभी तिर्यंच का और कभी नारकीका बेष बदलता रहता है। अपने ही परिणामोंसे अच्छे बुरे कर्मोंको बांधता है और उनके उदयमें यहां वहाँ घूमकर जन्म लेकर दुःखी होता है। इस संसार परिभ्रमणका यदि कोई उपाय है तो दिगम्बर मुद्रा धारण करना ही है”.........यहां भगवान् ऐसा विचार कर रहे थे, वहां लौकान्तिक देवोंके आसन कंपने लगे जिससे वे अवधि ज्ञानसे सब समाचार जानकर नमिनाथजीके पास आये और सारगर्भित शब्दोंमें उनकी स्तुति तथा उनके विचारोंका समर्थन करने लगे। लौकान्तिक देवोंके समर्थनसे उनका वैराग्य और भी अधिक बढ़ गया। इसलिये उन्होंने सुप्रभ नामक पुत्रको राज्य दे दिया और आप 'उत्तर कुरु' नामकी पालकीपर सवार होकर 'चित्रवन' में पहुंचे। वहां दो दिनके उपवासकी प्रतिज्ञा लेकर आषाढ़ कृष्णा दशमीके दिन अश्विनी नक्षत्रमें शामके समय एक हजार राजाओंके साथ दीक्षित हो गये। देव लोग तपः कल्याणकका उत्सव मनाकर अपने-अपने स्थानपर चले गये। भगवान् नमिनाथको दीक्षाके समय ही मनःपर्यय ज्ञान तथा अनेक ऋद्धियां प्राप्त हो गई थीं।

वे तीसरे दिन आहार लेनेकी इच्छासे वीरपुर नगरमें गये। वहांपर दत्त राजाने उन्हें विधि पूर्वक आहार दिया था। तदनन्तर उन्होंने छद्मस्थ अवस्था-के नौ वर्ष मौन पूर्वक व्यतीत किये। छद्मस्थ अवस्थामें भी उन्होंने कई जगह विहार किया। नौ वर्षके बाद वे उसी दीक्षा-वन-चित्र-वन में आये और वहां मौलिश्री—नकुल वृक्षके नीचे दो दिनके उपवासकी प्रतिज्ञा लेकर विराजमान हो गये। वहींपर उन्हें मार्ग शीर्ष शुक्ला पौर्णमासीके दिन अश्विनी नक्षत्रमें

तीसरे पहर पूर्ण ज्ञान-केवल ज्ञान प्राप्त हो गया। उसी समय इन्द्र आदि देवोंने आकर उनकी पूजा की। इन्द्रकी आज्ञा पाकर धनपतिने समवसरणकी रचना की। उसके मध्यमें सिंहासनपर विराजमान होकर उन्होंने नौ वर्षके बाद मौन भंग किया—दिव्य ध्वनिके द्वारा सब पदार्थोंका व्याख्यान किया। लोगोंको अनेक सामयिक सुधार बतलाये। उनके प्रभाव, शील और उपदेश से प्रतिबुद्ध होकर कितने ही भव्य जीवोंने मुनि-आर्यिका, श्रावक और श्राविकाओंके व्रत धारण किये थे। इन्द्रकी प्रार्थना सुनकर उन्होंने प्रायः समस्त आर्य क्षेत्रोंमें विहार किया और सत्य धर्मका ठोस प्रचार किया।

उनके समवसरणमें सुप्रभार्य आदि सत्रह गणधर थे, चार सौ पचास, ग्यारह अङ्ग चौदह पूर्वके जानकार थे, बारह हजार छह सौ शिक्षक थे, एक हजार छः सौ अवधिज्ञानी थे, इतने ही केवलज्ञानी थे, पन्द्रह सौ विक्रिया ऋद्धिके धारक थे, बारह सौ पचास मनःपर्यय ज्ञानी थे, और एक हजार वादी शास्त्रार्थ करने वाले थे। इस तरह कुल मिलाकर बीस हजार मुनिराज थे। मङ्गिनी आदि पैंतालीस हजार आर्यिकाएं थीं, असंख्यात देव-देवियां और संख्यात तिर्यंच थे। भगवान नमिनाथ इन सबके साथ विहार करते थे।

निरन्तर विहार करते-करते जब उनकी आयु केवल एक माह बाकी रह गई तब वे विहार और उपदेश वगैरह बन्द कर सम्मेद शिखरपर जा पहुंचे और वहींपर एक हजार राजाओंके साथ प्रतिमा योग धारण कर विराजमान हो गये। वहींपर उन्होंने वैशाख कृष्णा चतुर्दशीके दिन प्रातः कालके समय अश्विनी नक्षत्रमें शुक्ल ध्यान रूप वह्निके द्वारा समस्त अघातिया कर्मोंको जलाकर आत्म स्वातन्त्र्य-मोक्ष लाभ किया। उसी समय देवोंने आ कर सिद्ध क्षेत्रकी पूजा की और निर्वाण कल्याणकका उत्सव किया।

भगवान् नेमिनाथ

घनाक्षरी छन्दः—शोभित प्रियंग अंग, देखे दुख होय भंग,
लाजत अनंग जैसे, दीप भानु भास तैं।
बाल ब्रह्मचारी उग्र, सेनकी कुमारी जादों,
नाथ तैं किनारो कर्म कादो दुःख रास तैं॥
भीम भव काननमें आनन सहाय स्वामी,
अहो नेमि नामी तक, आयो तुम्हें तास तैं।
जैसे कृपा कन्द बन जीवनको बन्द छोड़ि,
त्यों हिं दासको खलास कीजे भव फांस तैं॥

[१] पूर्वभव वर्णन

जम्बू द्वीपके पश्चिम विदेह क्षेत्रमें सीतोदा नदीके उत्तर किनारेपर एक सुगन्धिल नामका देश है। उसके सिंहपुर नगरमें किसी समय अर्हद्दास नामका राजा राज्य करता था। उसकी स्त्रीका नाम जिनदत्ता था। दोनों दम्पति साधु स्वभावी और आसन्न भव्य जीव थे। वे अपना धर्ममय जीवन बिताते थे।

किसी समय महारानी जिनदत्ताने आष्टाह्निकाके दिनोंमें सिद्ध यंत्रकी पूजा की और उससे आशा की कि, हमारे कोई उत्तम पुत्र हो। ऐसी आशा कर वह प्रसन्न चित्त हो रातमें सुख पूर्वक सो गई। सोते समय उसने सिंह, हाथी, सूर्य, चन्द्रमा और लक्ष्मीका अभिषेक ऐसे पांच शुभ स्वप्न देखे। उसी समय उसके गर्भमें स्वर्गसे आकर किसी पुण्यात्मा जीवने प्रवेश किया। नौ माह बीत जानेपर उसने एक महा पुण्यात्मा पुत्र उत्पन्न किया। उसके उत्पन्न होते ही अनेक शुभ शकुन हुये थे। वह खेल कूदमें भी अपने भाइयोंके द्वारा जीता नहीं जाता था। इसलिये राजाने उसका अपराजित नाम रक्खा था। अपराजित दिन दूना और रात चौगुना बढ़ने लगा। धीरे-धीरे उसने युवावस्थामें प्रवेश किया, जिससे उसके शरीरकी शोभा कामदेवसे भी बढ़कर हो

गई थी। योग्य अवस्था देखकर राजा अर्हद्दासने उसके कुलीन कन्याओंके साथ विवाह बन्धन कर दिया और कुछ समय बाद उसे युवराज भी बना दिया।

किसी एक दिन वनमालीने राजा अर्हद्दासके वनमें विमलवाहन नामक तीर्थंकरके आनेका समाचार कहे। जिससे राजा प्रसन्न चित्त हो समस्त परिवारके साथ उनकी वन्दनाके लिये गया। वहां उसने तीन प्रदक्षिणायें देकर उन्हें भक्ति पूर्वक नमस्कार किया और मनुष्योचित स्थान पर बैठकर धर्मका स्वरूप सुना। तीर्थंकर देवके उपदेशसे विषय विरक्त होकर उसने युवराज अपराजितके लिये राज्य दे दिया और आप उन्हीं विमल वाहन मुनिराजके पास दीक्षित हो गया। कुमार अपराजितने भी सम्यग्दर्शन और अणुव्रत धारण कर राजधानीमें प्रवेश किया। वहां वह राज्यकी समस्त व्यवस्था सचिवोंके आधीन छोड़कर धर्म और कामके सेवनमें लग गया। एक दिन उसने सुना कि, पूज्य पिताजीके साथ साथ श्रीविमलवाहन तीर्थंकर गन्धमादन पर्वतसे मुक्त हो गये हैं। यह सुनकर उसने प्रतिज्ञा की कि मैं श्री विमलवाहन तीर्थंकरके बिना दर्शन किये भोजन नहीं करूंगा। इस तरह बिना भोजन किये उसको आठ दिन हो गये तब इन्द्रकी आज्ञा पाकर यक्षपतिने अपनी मायासे विमलवाहन तीर्थंकरका साक्षात् स्वरूप बनाकर दिखलाया। अपराजित समवसरणमें वन्दना कर उनकी पूजा की और फिर भोजन किया।

किसी एक दिन राजा अपराजित फाल्गुन मासकी आष्टाह्निकाओंके दिनोंमें जिनेन्द्रदेवकी पूजा कर जिन मन्दिरमें बैठा हुआ धर्मोपदेश कर रहा था। इतनेमें ही वहांपर चारण ऋद्धि धारी दो मुनिराज आये। राजाने खड़े होकर दोनों मुनिराजोंका स्वागत किया और भक्ति पूर्वक नमस्कार कर उन्हें योग्य आसनपर बैठाया। कुछ देर तक धर्म-चर्चा होनेके बाद राजाने मुनिराजसे कहा कि महाराज ! मैंने कभी आपको देखा है। यह सुनकर बड़े मुनिराज बोले— 'ठीक, आपने मुझे अवश्य देखा है पर कहां ? यह आप नहीं जानते इसलिये मैं कहता हूं सुनिये'—

पुष्करार्ध द्वीपके पश्चिम मेरुकी ओर पश्चिम विदेह क्षेत्रमें जो गन्धिल नामका देश है उसके विजयार्ध पर्वतकी उत्तर श्रेणीमें एक सूर्यप्रभ नामका

नगर है। उसमें किसी समय सूर्यप्रभ नामका राजा राज्य करता था। उसकी महारानीका नाम धारिणी था। उन दोनोंके चिन्तागति, मनोगति और चपलगति नामके तीन पुत्र थे। उनमें चिन्तागति बड़ा मनोगति मझला और चपलगति छोटा पुत्र था। राजा सूर्यप्रभ अपने बुद्धिमान् पुत्र और पतिव्रता धारिणीके साथ सुखसे जीवन बिताता था।

उसी गन्धिल देशकी उत्तर श्रेणीमें अरिंदम नगरके राजा अरिंजय और रानी अजितसेनाके एक प्रीतमती नामकी पुत्री थी। प्रीतिमती बहुत ही बुद्धिमती लड़की थी। जब वह जवान हुई और उसके विवाह होनेका समय आया तब उसने प्रतिज्ञा कर ली कि जो राजकुमार मुझे शीघ्र गमनमें जीत लेगा मैं उसीके साथ विवाह करूंगी, किसी दूसरेके साथ नहीं। यह प्रतिज्ञा लेकर उसने मेरु पर्वतकी प्रदक्षिणा देनेमें एक चिन्तागतिको छोड़कर समस्त विद्याधर राजकुमारोंको जीत लिया। जब प्रीतिमती विजयी चिन्तागतिके गलेमें बरमाला डालनेके लिये गई तब उसने कहा कि इस मालासे तुम मेरे छोटे भाई चपलगतिको स्वीकार करो। क्योंकि उसीके निमित्तसे यह गति युद्ध किया था। चिन्तागतिकी बात सुनकर प्रीतिमतीने कहा कि मैं चपलगतिसे पराजित नहीं हुई हूँ। मैं तो अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार यह रत्नमाला आपके ही श्रीकंठमें डालना चाहती हूँ। पर चिन्तागतिने उसका कहना स्वीकार नहीं किया। इसलिये वह विरक्त होकर किसी निवृता नामकी आर्यिकाके पास दीक्षिता हो गई। प्रीतिमतीका साहस देखकर चिन्तागति, मनोगति और चपलगति भी दमवर मुनिराजके पास दीक्षित हो गये और कठिन तपश्चरण कर आयुके अन्तमें माहेन्द्र स्वर्गमें सामानिक देव हुये। वहां उन्होंने महा मनोहर भोग भोगते हुये सुखसे सात सागर व्यतीत किये। आयुके अन्तमें वहांसे च्युत होकर दोनों छोटे भाई मनोगति और चपलगति, जम्बूद्वीपके विदेह क्षेत्रमें पुष्कलावती देशके विजयार्ध पर्वतकी उत्तर श्रेणीमें गगनवल्लभ नगरके राजा गगनचन्द्र और रानी गगनसुन्दरीके हम अमित गति और अमिततेज नामके पुत्र हुए हैं। किसी एक दिन हमारे पिता गगनचन्द्र पुण्डरीकिणी नगरीको गये वहां स्वयंप्रभ भगवान्से हम दोनोंके अगले-पिछले जन्मोंकी बात पूछी।

पिताकी बात सुनकर स्वयंप्रभ महाराजने हमारे पूर्व और आगेके कुछ भव बतलाये। उसी प्रकरणमें हम दोनोंके पूर्वभवके बड़े भाई चिन्तागतिका नाम आया था। उसे सुनकर पिताजीने भगवानसे पुनः पूछा कि चिन्तागति इस समय कहां उत्पन्न हुआ है ?। तब उन्होंने कहा कि इस समय वह सिंहपुर नगरमें अपराजित नामका राजा हुआ है। इस प्रकार भगवान स्वयंप्रभके वचन सुनकर हम दोनों भाई वहां पर दीक्षित हो गये और फिर पूर्व जन्मके स्नेहसे तुम्हें देखनेके लिये आये हैं। राजन्! अब तक आपने पूर्व पुण्यके उदयसे अनेक भोग भोगे हैं। एक अज्ञकी तरह आपने अपनेको अजर अमर समझ कर आत्म हितकी ओर कुछ भी प्रवृत्ति नहीं की है। इसलिये अब आप विषय वासनाओंसे विमुक्त होकर कुछ आत्म कल्याणकी ओर प्रवृत्ति कीजिये। यह सुनकर राजा अपराजितने उन दोनों मुनियोंकी खूब स्तुति की और उनका आभार माना। मुनिराज अपना कार्य पूरा कर आकाश मार्गसे विहार कर गये।

राजा अपराजितने भी अपने प्रीतिङ्कर नामके पुत्रको राज्य दिया, आष्टाह्निक पूजा की और अब शेष दिनोंमें प्रायोपगमन सन्यास धारण कर अच्युतेन्द्र हुआ। वहां पर वह बाईस सागर तक नर दुर्लभ सुख भोगता रहा। आयु पूर्ण होने पर जम्बू द्वीपके भारत क्षेत्रमें कुरुजङ्गल देशके हस्तिनापुर नगरमें रजा श्रीचन्द्र और रानी श्रीमतीके सुप्रतिष्ठित नामका पुत्र हुआ। राजा श्रीचन्द्रने उसका सुनन्दा नामक कन्याके साथ विवाह कर दिया जिससे वह तरह तरहके भोग विलासोंसे अपने यौवनको सफल करने लगा।

किसी एक दिन महाराज श्रीचन्द्रने प्रतिष्ठित पुत्रके लिये राज्य देकर सुमंदर नामके मुनिराजके पास दीक्षा ले ली। इधर सुप्रतिष्ठित भी काम, क्रोध, मद. मात्सर्य लोभ मोह आदि अन्तरङ्ग तथा बहिरङ्ग आदि शत्रुओंको जीनकर न्याय पूर्वक राज्य करने लगा। उसने किसी समय यशोधर नामक मुनिराजको आहार दिया था जिससे उसके घर पर पंचाश्चर्य प्रकट हुये थे। एक दिन राजा सुप्रतिष्ठ अपने समस्त परिवारके साथ मकानकी छतपर बैठकर चन्द्रमाकी सुन्दर सुषमा देख रहा था। उसी समय आकाशसे एक भयङ्कर उल्कापात हुआ जिससे उसका मन विषयोंसे सहसा विरक्त हो गया। वह

संसारकी क्षणभंगुरताका विचार करता हुआ विषय लालसाओंसे एक दम सहम गया। उसने उसी समय अपने सुदृष्टि नामक पुत्रके लिये राज्य देकर किन्हीं सुमन्दर नामक ऋषिराजके पास दीक्षा धारण करली। वहां उसने ग्यारह अङ्गोंका अध्ययन किया और दर्शन विशुद्धि आदि सोलह कारण भावनाओंका चिन्तवन कर तीर्थंकर नामक पुण्य प्रकृतिका वन्ध किया। जब आयुका अन्तिम समय आया तब वह सन्यास पूर्वक शरीर छोड़ जयन्त नामके अनुत्तर विमान में अहमिंद्र हुआ। वहां उसकी आयु तेतीस सागर की थी, शरीर एक हाथ ऊंचा था, लेश्या परम शुक्ल थी। तेतीस हजार वर्ष बाद आहार लेनेकी इच्छा होती थी और तेतीस पक्ष बाद श्वासोच्छास क्रिया होती थी। उसे जन्मसे ही अवधि ज्ञान था। जिसके बलसे वह नीचे सातवें नरक तककी बात जान लेता था। यही अहमिन्द्र आगेके भवमें भगवान नेमिनाथ होकर जगतका कल्याण करेगा। कहां ? सो सुनिये—

[२] वर्तमान परिचय

जम्बू द्वीप भरत क्षेत्रके कुशार्थ देशमें एक शौर्यपुर नामका नगर है उसमें किसी समय शूरसेन नामका राजा राज्य करता था। यह राजा हरिवंशरूपी आकाशमें सूर्यके समान चमकता था। कुछ समय बाद शूरसेनके शूरवीर नाम का पुत्र हुआ। जो सचमुचमें शूरवीर था। उसने समस्त शत्रु जीत लिये थे उस वीरकी स्त्रीका नाम धारिणी था। उससे उसके अन्धक वृष्णि और नर वृष्णि नामके दो पुत्र हुए। अन्धक वृष्णिकी रानीका नाम सुभद्रा था। उसके काल-क्रमसे १ समुद्र विजय, २ स्तिमित सागर, ३ हिमवान, ४ विजय, ५ विद्वान, ६ अचल, ७ धारण, ८ पूरण ९ पूरिताच्छींच्छ, अभिनन्दन और १० वासुदेव......ये दश पुत्र तथा कुन्ती और माद्री नामकी दो कन्याएं हुईं। समुद्र विजय आदि शुरुके नौ भाइयोंके क्रमसे शिव देवी, धृतीश्वरा, स्वयंप्रभा, सुनीता, सीता, प्रियवाक, प्रभावती, कालिंगी और सुप्रभा ये सुन्दरी स्त्रियां थीं। वसुदेवने अनेक देशोंमें विहार किया था इसलिये उन्हें अनेक भूमि गोचरी तथा विद्याधर राजाओंने अपनी अपनी कन्याएं भेंट की थीं—उसके बहुत स्त्रियां थीं। उन सबमें देवकी मुख्य था।

इन सबकी बहिन कुन्ती और माद्रीका विवाह हस्तिनापुरके कौरव वंशी राजा पाण्डुके साथ हुआ था। राजा पाण्डु कुन्ती देवीसे युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन तथा माद्री देवीसे नकुल और सहदेव इस तरह पाँच पुत्र हुए थे। जोकि राजा पाण्डुकी सन्तान होनेके कारण पीछे पाण्डव नामसे प्रसिद्ध हो गये थे। बहनोईका रिस्ता होनेके कारण समुद्र विजय आदि दश भाई और पाण्डु आदिका परस्परमें खूब स्नेह था। एक दूसरेको जी-जानसे चाहते थे। कुछ समय बाद छोटे भाई वसुदेवके बलराम और कृष्ण नामके दो पुत्र हुए जो बड़े ही पराक्रमी थे। श्रीकृष्णने अपने अतुल्य पराक्रमसे मथुराके दुष्ट राजा कंसको मल्ल युद्धमें मार दिया था जिससे उनकी 'जीवयशा' स्त्री विधवा होकर रोती हुई अपने पिता जरासंधके पास राजगृह नगरमें गई। उस समय जरासंधका प्रताप समस्त संसारमें फैला हुआ था। वह तीन खण्डका राजा था। अर्द्ध चक्रवर्ती कहलाता था। पुत्रीकी दुःखभरी अवस्था देखकर उसने श्रीकृष्ण आदिको मारनेके लिये अपने अपराजित नामके पुत्रको भेजा पर वसुदेव, श्रीकृष्ण आदिने उसे युद्धमें तीन सौ छयालीस बार हराया। अन्तमें अपराजित, पराजित होकर अपने घर लौट गया। फिर कुछ समय बाद जरासंधका दूसरा लड़का कालयवन श्रीकृष्णको मारनेके लिये आया। उसके पास असंख्य सेना थी। जब समुद्र विजय आदिको इस बातका पता चला तब उन्होंने परस्परमें सलाह की कि अभी श्रीकृष्णकी आयु कुछ बड़ी नहीं है इसलिये इस समय समर्थ शत्रुसे युद्ध नहीं करना ही अच्छा है। ऐसा सोचकर वे सब शौर्यपुरसे भाग गये। और विन्ध्यावटीको पारकर समुद्रके किनारेपर पहुंच गये। इधर काल यवन भी उनका पीछा करता हुआ जब विन्ध्यावटीमें पहुंचा तब वहां समुद्र विजय आदिकी कुल देवता एक बुढ़ियाका रूप बनाकर बैठ गई और विद्या बलसे खूब अग्नी जलाकर 'हा समुद्र विजय ! हा वसुदेव हा श्रीकृष्ण !' आदि कह कहकर विलाप करने लगी। जब काल यवनने उससे रोनेका कारण पूछा तब उसने कहा कि 'मैं एक बूढ़ी धाय हूँ। हमारे राजा समुद्र विजय आदि दशों भाई श्रीकृष्ण आदि पुत्रों तथा समस्त स्त्रियोंके साथ शत्रुके भयसे भागे जा रहे थे सो इस प्रचण्ड अग्निके बीचमें पड़कर असमय

में ही मर गये हैं। अब मैं असहाय होकर उन्हींके लिये रो रही हूँ। बुढ़ियाके बचन सुनकर काल यवन हर्षित होता हुआ वापिस लौट गया। अब आगे चलिये—जब राजा समुद्र विजय आदि समुद्रके किनारेपर पहुंचे थे तब वहां रहनेके लिये कोई मकान वगैरह नहीं था इसलिये वे सब आवासो— घरोंकी चिन्तामें यहां वहां घूम रहे थे। वहींपर बुद्धिमान श्रीकृष्णने आठ दिनके उपवास किये और डाभके आसनपर बैठकर परमात्माका ध्यान किया। श्रीकृष्णकी आराधनासे प्रसन्न हुए एक नैगम नामके देवने प्रकट होकर कहा कि अभी तुम्हारे पास एक सुन्दर घोड़ा आवेगा तुम उसपर सवार होकर समुद्रमें बारह योजन तक चले जाना। वहांपर तुम्हारे लिये एक मनोहर नगर बन जायेगा। इतना कहकर वह देव तो अदृश्य हो गया पर उसकी जगहपर कहींसे आकर एक सुन्दर घोड़ा खड़ा हो गया। श्रीकृष्ण उसपर सवार होकर समुद्रमें बारह योजन तक दौड़ते गये। पुण्य प्रतापसे समुद्रका उतना भाग स्थलमय हो गया वहींपर इन्द्रकी आज्ञा पाकर कुबेर देवने एक महा मनोहर नगरीकी रचना कर दी। उसके बड़े बड़े गोपुर देखकर समुद्र विजय आदिने उसका नाम द्वारावती द्वारिका रख लिया। राजा समुद्र विजय अपने छोटे भाइयों तथा श्रीकृष्ण आदि पुत्रोंके साथ द्वारिकामें सुखपूर्वक रहने लगे।

भगवान् नेमिनाथके पूर्व भवोंका वर्णन करते हुए ऊपर जिस अहमिन्द्रका कथन कर आये हैं। उसकी जब वहाँकी आयु सिर्फ छह माहकी बाकी रह गई तभीसे द्वारकापुरीमें राजा समुद्र विजय और महारानी शिवा देवीके घरपर देवोंने रत्नोंकी वर्षा करनी शुरू कर दी। इन्द्रकी आज्ञा पाकर अनेक देव कुमारियां आ-आकर शिवा देवीकी सेवा करने लगी। इन सब बातोंसे अपने घरमें तीर्थंकरकी उत्पत्तिका निश्चय कर समस्त हरिवंशी हर्षसे फूले न समाते थे।

कार्तिक शुक्ला षष्ठीके दिन उत्तराषाढ़ नक्षत्रमें रात्रिके पिछले पहर रानी शिवा देवीने सोलह स्वप्न देखे। उसी समय उक्त अहमिन्द्रने जयन्त विमान से च्युत होकर उसके गर्भमें प्रवेश किया। सबेरा होते ही रानीने पतिदेवसे स्वप्नोंका फल पूछा तब उन्होंने कहा कि आज तुम्हारे गर्भमें किसी तीर्थंकरके जीवने प्रवेश किया है। नौ माह बाद तुम्हारे गर्भसे एक महा यशस्वी तीर्थं-

कर बालक पैदा होगा। ये सोलह स्वप्न उसीकी विभूति बतला रहे हैं।' राजा समुद्र विजय रानीके लिये स्वप्नोंका फल बतलाकर निवृत्त ही हुए थे कि इतने में वहांपर जयजयकार करते हुये समस्त देव आ पहुँचे। देवोंने गर्भ कल्याणक का उत्सव किया तथा उत्तमोत्तम वस्त्राभूषणोंसे दम्पतीका खूब सत्कार किया।

तदनन्तर नौ माह बाद शिवा देवीने श्रावण शुक्ला षष्ठीके दिन चित्रा नक्षत्रमें पुत्र रत्न उत्पन्न किया। उसी समय सौ धर्म आदि इन्द्र तथा समस्त देवोंने मेरु पर्वतपर ले जाकर बालकका जन्माभिषेक किया। इन्द्राणीने अङ्ग पोंछकर बालोचित उत्तम उत्तम आभूषण पहिनाये। इन्द्रने मधुर शब्दोंमें स्तुति की और स्वामी नेमिनाथ नाम रक्खा। अभिषेककी क्रिया समाप्त कर इन्द्र भगवान् नेमिनाथको द्वारिकापुरी ले आया और उन्हें उनकी माताके लिये सौंप दिया। उस समय द्वारिकापुरीमें घर घर अनेक उत्सव किये जा रहे थे। जन्म कल्याणकका उत्सव समाप्त कर देव लोग अपने अपने स्थानोंपर चले गये। बालक नेमिनाथका राज परिवारमें उचित रूपसे लालन पालन होने लगा। वे अपनी मधुर चेष्टाओंसे सभीको हर्षित किया करते थे। द्वितीयाके चन्द्रमा की तरह वे दिन प्रतिदिन बढ़ने लगे।

भगवान् नमिनाथके मोक्ष जानेके बाद पांच लाख वर्ष बीत जानेपर स्वामी नेमिनाथ हुए थे। उनकी आयु भी इसीमें शामिल है। उनकी आयुका प्रमाण एक हजार वर्षका था। शरीरकी ऊंचाई दश धनुष और वर्ण मयूरकी ग्रीवाके समान नीला था। यद्यपि उस समय द्वारावती—द्वारिकाके राजा समुद्र विजय थे पर उनके नेमिनाथके पहले कोई सन्तान नहीं हुई थी और अवस्था प्रायः ढल चुकी थी इसलिये उन्होंने राज्यका बहुत भार अपने छोटे भाई वसुदेवके लघु पुत्र श्रीकृष्णके लिये सौंप दिया था। कृष्ण बहुत ही होनहार पुरुष थे इसलिये उनपर समस्त यादवोंकी नजर लगी हुई थी। सब कोई उन्हें प्यार और श्रद्धाकी दृष्टिसे देखते थे। भगवान् नेमिनाथ भी अपने चचेरे बड़े भाई श्रीकृष्णके साथ कम प्रेम नहीं करते थे।

एक दिन मगध देशके कई वैश्य पुत्र समुद्र मार्गसे रास्ता भूलकर द्वारिकापुरीमें आ पहुंचे। वहांकी विभूति देखकर उन्हें बहुत ही आश्चर्य हुआ।

जब वे लोग अपने अपने घर जाने लगे तब साथमें वहांके कुछ बहुमूल्य रत्न लेते गये। वैश्य पुत्रोंने राजनगरमें पहुंचकर वहांके महाराज जरासंधके दर्शन किये और वे रत्न भेंट किये। जरासंधने रत्न देखकर उन वैश्य पुत्रों से पूंछा कि आप लोग ये रत्न कहांसे लाए हैं।' तब उन्हों ने कहा कि 'महाराज! हम लोग समुद्रमें रास्ता भूल गये थे इसलिये घूमते-घूमते एक नगरीमें पहुंचे। पूंछनेपर लोगों ने उसका नाम द्वारिका बतलाया था। वह पुरी अपनी शोभासे स्वर्गपुरीको जीतती है। इस समय उसमें महाराज समुद्र-विजय राज्य करते हैं। उनके नेमिनाथ तीर्थंकर हुये हैं। जिससे वहां नर और देवों की खूब चहल पहल रहती है वसुदेवके पुत्र श्रीकृष्णकी तो बात ही न पूछिये। उसका निर्मल यश सागरकी तरल तरङ्गोंके साथ अठ-खेलियां करता है। उसकी वीर चेष्टायें समस्त नगरीमें प्रसिद्ध हैं। श्रीकृष्णका बड़ा भाई बलराम भी कम बलवान् नहीं है। उन दोनों भाइयोंमें परस्परमें खूब स्नेह है। वे एक दूस-रेके बिना क्षण भर भी नहीं रहते हैं। हम उसी नगरीसे ये रत्न लाये हैं'... वैश्य पुत्रोंके बचन सुनकर राजा जरासंधके क्रोधका ठिकाना न रहा। अभी तक तो वह समस्त यादव विन्ध्याटवीमें जल कर मर गए हैं, ऐसा निश्चय कर निश्चिन्त था पर आज वैश्य पुत्रोंके मुंहसे उनक सद्भाव और वैभवकी वार्ता सुनकर प्रतिस्पर्द्धासे उसके ओंठ कांपने लगे। आंखें लाल हो गईं और भौंह टेढ़ी हो गईं। उसने वैश्य पुत्रोंको विदा कर सेनापतिके लिए उसी समय एक विशाल सेना तैयार करने कीआज्ञा दी और कुछ समय बाद सज-धज कर द्वारिकाकी ओर रवाना हो गया। इधर जब कौतूहली नारदजीने यादवोंके लिये जरासंधके आनेका समाचार सुनाया तब श्रीकृष्ण भी शत्रुको मारनेके लिये तैयार हो गये। उन्होंने समुद्र विजय आदिकी अनुमतिसे एक विशाल सेना तैयार करवाई जो शत्रुको बीचमें ही रोकनेके लिये तैयार हो गये। जाते समय श्रीकृष्णचन्द्र भगवान् नेमिनाथके पास जाकर बोले कि, जब तक मैं शत्रुओंको मारकर वापिस न आ जाऊं तबतक आप राज्य कार्योंकी देख भाल करना। बड़े भाई कृष्णचन्द्रके बचन नेमिनाथने सहर्ष स्वीकार कर लिये। वापिस जाते समय कृष्णचन्द्रने उनसे पूछा 'भगवन्! इस युद्ध यात्रामें मेरी

विजय होगी या नहीं' । तब उन्होंने अवधिज्ञानसे सोचकर हंस दिया । कृष्ण-चन्द्र भी अपनी सफलताका निश्चय कर हंसी खुशीसे युद्धके लिये आगे बढ़े । युद्धका समाचार पाते ही हस्तिनापुरसे राजा पाण्डुके पुत्र युधिष्ठिर वगैरह भी रणक्षेत्रमें शामिल हो गये । कुरु क्षेत्रके मैदानमें दोनों ओरकी सेनाओंमें घमासान युद्ध हुआ । अनेक सैनिक तथा हाथी घोड़े वगैरह मारे गये । जब लगातार कई दिनोंके युद्धसे किसी भी पक्षकी निश्चित विजय नहीं हुई तब एक दिन कृष्णचन्द्र और जरासंध इन दोनों वीरोंमें लड़ाई हुई । जरासंध जिस शस्त्रका प्रयोग करता था कृष्णचन्द्र उसे बीचमें ही काट देते थे । अन्तमें जरासंधने क्रुद्ध हो घुमाकर चक्र चलाया । पर वह प्रदक्षिणा देकर कृष्णके हाथमें आगया । फिर कृष्णने उसी चक्रसे जरासंधका संहार किया । ठीक कहा है कि, 'भाग्यं फलति सर्वत्र'—सब जगह भाग्य ही फलता है । विजयी श्रीकृष्णचन्द्रने चक्ररत्नको आगे कर बड़े भाई बलभद्र और असंख्य सेनाके साथ भरत क्षेत्रके तीन खण्डोंको जीतकर द्वारिका नगरीमें प्रवेश किया । उस समय उनके स्वागतके लिये हजारों राजा एकत्रित हुये थे । जादवोंकी इस शानदार विजयसे उनका प्रभाव और प्रताप सब ओर फैल गया था । सभी राजा उनका लोहा मानने लगे थे । समुद्रविजय आदिने प्रतापी कृष्णचन्द्रका राज्याभिषेक कर उन्हें पूर्ण रूपसे राजा बना दिया । कृष्णचन्द्र भी अपनी चतुराई और नैतिक बलसे प्रजाका पालन करते थे । बलभद्र भी हमेशा इनका साथ देते थे । श्रीकृष्णके सत्यभामा आदिको लेकर सोलह हजार सुन्दर स्त्रियां थीं और बलराम आठ हजार स्त्रियोंके अधिपति थे । श्रीकृष्ण नारायण और बलराम बलभद्र कहलाते थे । एक दिन राजसभामें श्रीकृष्ण, बलभद्र और भगवान नेमिनाथ वगैरह बैठे हुये थे । उसी समय किसीने पूछा कि इस समय भारतवर्षमें सबसे अधिक बलवान् कौन है ? प्रश्न सुनकर कुछ सभासदोंने श्रीकृष्णके लिये ही सबसे बलवान् बतलाया । कृष्णचन्द्र भी अपनी बलवत्ताकी प्रशंसा सुनकर बहुत प्रसन्न हुये । पर बलभद्र-बलरामने कहा कि इस समय भगवान् नेमिनाथसे बढ़कर कोई अधिक बलवान् नहीं है । उनके शरीरमें बचपनसे ही अतुल्य बल है । आप लोग जो वत्स कृष्णचन्द्रके

लिये ही सबसे अधिक बलवान् समझ रहे हो यह आपका केवल भ्रम है। क्योंकि, श्रीकृष्ण और आप सबमें जो बल है उससे कई गुना अधिक बल इनमें विद्यमान है। बलरामके बचन सुनकर श्रीकृष्णके पक्षपातियोंको बड़ा बुरा मालूम हुआ। श्रीकृष्णभी अबतक पृथिवीपर अपनेसे बढ़कर किसी दूसरेको बलवान् नहीं समझते थे। इसलिये उन्होंने भी बलरामजीके बचनोंमें असम्मति प्रकट की। अब धीरे धीरे परस्परका विवाद बहुत बढ़ गया तब भगवान् नेमिनाथ और श्रीकृष्णसे बलकी परीक्षा करनी निश्चित हुई। यद्यपि भगवान् नेमिनाथ इस विषयमें मंजूर नहीं थे तथापि बलराम वगैरहके आग्रहसे उन्हें इस कार्यमें शामिल होना पड़ा। उन्होंने हंसते हुये कहा—यदि कृष्ण मेरेसे बलहान हैं तो सिंहासन परसे हमारे इस पांवको चल विचल कर दें' ऐसा कहकर उन्होने सिंहासनपर पैर जमा कर रख दिया। श्री कृष्णने उसे चल विचल करनेकी भारी कोशिश की पर वे सफलता प्राप्त न कर सके इससे उन्हें बहुत ही शर्मिन्दा होना पड़ा। भगवान् नेमिनाथका अतुल्य बल देखकर उन्हें शंका हुई 'कि ये हमसे बलवान् हैं इसलिये कभी प्रतिकूल होकर हमारे राज्यपर आघात न कर दें"। श्रीकृष्ण अपने इस सशङ्क हृदयको गुप्त ही रक्खे रहे।

किसी एक समय शरद ऋतुमें कृष्ण महराज अपने समस्त अन्तः पुरके साथ बनमें जल क्रीड़ा करनेके लिये गये थे। भगवान् नेमिनाथ भी उनके साथ थे। कृष्णकी सत्यभामा आदि स्त्रियोंने सरोवरमें देखकर नेमिनाथके ऊपर जल उछालते हुये अनेक शृङ्गारमय बचन कहे। नेमिनाथने भी चतुराई पूर्वक उनके व्यङ्ग भरे बचनोंका यथोचित उत्तर दिया। जलक्रीड़ा कर चुकनेके बाद भगवान् नेमिनाथने सत्यभामासे कहा कि तुम मेरी इस गीली धोतीको धो डालो'। तब सत्यभामा क्रोधसे भौंह टेढ़ी करती हुई बोली कि 'आप श्री कृष्ण नहीं हैं जिन्होंने नाग शय्यापर चढ़कर लीला मात्रमें शार्ङ्ग नामका धनुष चढ़ाया और दिशाओंको गुञ्जा देनेवाला पाञ्चजन्य शङ्ख बजाया था। यदि धोती धुलानेकी शौक हो तो किसी राजकुमारीको क्यों नहीं फंसा लेते! सत्यभामाके ताना भरे बचन सुनकर नेमिनाथको कुछ क्रोध हो आया। जिससे वे वहांसे लौटकर आयुधशालामें गये और सबसे पहले नाग शय्यापर चढ़कर शार्ङ्ग धनुषकी

प्रत्यंचा चढ़ाई फिर दिशाओंको गुञ्जादेनेवाला शंख बजाया। श्री कृष्ण कुछ राज्य सम्बन्धी कार्योंके कारण इन सबसे पहले ही नगरीमें लौट आये थे। जिस समय नेमिनाथने धनुष चढ़ाकर शंख बजाया था उस समय वे कुसुम-चित्रा नामक सभामें बैठे हुये कुछ आवश्यक कार्य देख रहे थे। ज्यों ही वहां उनके कानमें शंखकी विशाल आवाज पहुंची त्यों ही वे चकित होते हुये आयुधशालाको दौड़े गये। वहां उन्होंने भगवान् नेमिनाथको क्रोधयुक्त देखकर मीठे शब्दोंमें शान्त किया और पासमें किसी पुरुषसे उनके क्रोधका कारण पूछा। उसने सत्यभामा आदिके साथ जलक्रीड़ा सम्बन्धी सब समाचार कह सुनाये और बादमें सत्यभामाके मर्मभेदी वचन भी कह दिये। सुनकर श्री-कृष्ण कुछ मुस्कुराये। उन्होंने सत्यभामाके अभिमानपर बहुत कुछ रोष प्रकट किया और अपने गुरुजन समुद्रविजय, वासुदेव आदिके सामने नेमिनाथके विवाहका प्रस्ताव रक्खा। जब समुद्रविजय आदिने हर्ष सहित अपनी अपनी सम्मति दे दी। तब श्रीकृष्णने जूनागढ़ जाकर वहांके उग्रवंशी राजा उग्रसेनसे उनकी जयावती रानीसे उत्पन्न हुई राजमती कन्याकी कुमार नेमिनाथके लिये मंगनी की। राजा उग्रसेनने कृष्णचन्द्रके वचन सहर्ष स्वीकार कर लिये। जिससे दोनों ओर विवाहकी तैयारियां होने लगीं।

इन्हीं दिनोंमें श्रीकृष्णके हृदयमें पुनः शंका पैदा हुई 'कि ये नेमिनाथ बहुत ही बलवान् हैं। उस दिन इनसे मुझे हार माननी पड़ी थी और अभी-अभी जिसपर मेरे सिवाय कोई चढ़नेका साहस नहीं कर सकता उस नाग-शय्यापर चढ़ और धनुष चढ़ाकर तो गजब ही कर दिया। अब इसमें सन्देह नहीं कि ये कुछ दिनोंके बाद मेरे राज्यपर अवश्य ही आघात पहुंचावेंगे। इस तरह लोभ पिशाचके फन्देमें पड़कर श्री कृष्णके हृदयमें उथल-पुथल मच गई। उन्होंने सोचा 'कि नेमिनाथ स्वभाव हीसे विरक्त पुरुष हैं—विषय-वासनाओंसे इनका मन हमेशा ही दूर रहता है। न जाने क्यों इन्होने विवाह करना स्वीकार कर लिया ? अब भी ये वैराग्यका थोड़ासा कारण पाकर विरक्त हो जावेंगे। इसलिये कोई ऐसा उपाय करना चाहिये जिससे ये गृह त्यागकर दिगम्बर यति बन जावें।'...यह सोचकर कृष्णने एक षड़यंत्र रचा वह यह कि जूनागढ़के

रास्तेमें जहांसे बरात जानेको थी एक बाड़ लगवा दी और उसमें अनेक रियोंसे छोटे-बड़े पशु-पक्षी पकड़वाकर बन्द करवा दिये। तथा वहां रक्षकोंसे कह दिया कि जब तुमसे नेमिनाथ इन पशुओंके बन्द करनेका कारण पूछें तब कह देना यह जीव आपके विवाहमें क्षत्रिय राजाओंको मांस खिलानेके लिये बन्द किये गये हैं। कृष्णजीने अपना यह षड़यंत्र बहुत ही गुप्त रक्खा था।

जब श्रावण शुक्ला षष्टीका दिन आया तब समस्त यादव और उनके सम्बन्धी इकट्ठे होकर जूनागढ़के लिये रवाना हुए। सबसे आगे भगवान् नेमिनाथ अनेक रत्नमयी आभूषण पहिने हुये रथपर सवार हो चल रहे थे। जब उनका रथ उन पशुओंके घेरेके पास पहुँचा और उनकी करुण ध्वनि नेमिनाथके कानोंमें पड़ी तब उन्होंने पशुओंके रक्षकोंसे पूंछा कि ये पशु किस लिये इकट्ठे किये गये हैं तब पशु रक्षक बोले कि आपके विवाहमें मारनेके लिये—क्षत्रिय राजाओंको मांस खिलानेके लिये महाराज कृष्णने इकट्ठे करवाये हैं। रक्षकोंके वचन सुनकर नेमिनाथने अचम्भेमें आकर कहा कि श्रीकृष्णने ? और मेरे विवाहमें मारनेके लिये ? तब रक्षकोंने ऊंचे स्वरसे कहा हाँ महाराज !

यह सुनकर वे अपने मनमें सोचने लगे कि 'जो निरीह पशु जंगलोंमें रह कर तृणके सिवाय कुछ भी नहीं खाते, किसीका कुछ भी अपराध नहीं करते। हाय ! स्वार्थी मनुष्य उन्हें भी नहीं छोड़ते।' नेमिनाथ अवधिग्यानके द्वारा कृष्णका कपट जान गये और वहीं उनको लक्ष्यकर कहने लगे। हा कृष्ण ! इतना अविश्वास ? मैंने कभी तुम्हें अनादर और अविश्वासकी दृष्टिसे नहीं देखा। जिस राज्यपर कुल क्रमसे मेरा अधिकार था मैंने उसे सहर्ष आपके हाथोंमें सौंप दिया। फिर भी आपको सन्तोष नहीं हुआ। हमेशा आपके हृदयमें यही शंका बनी रही कि कहीं नेमिनाथ पैतृक राज्यपर अपना कब्जा न कर लें। छिः यह तो हद हो गई अविश्वासकी। इस जीर्ण तृणके समान तुच्छ राज्यके लिये इन पशुओंको दुःख देनेकी क्या आवश्यक्ता थी ? लो मैं हमेशाके लिये आपका रास्ता निष्कण्टक किये देता हूँ'......उसी समय उन्होंने विषयोंकी भंगुरताका विचार कर दीक्षा लेनेका दृढ़ निश्चय कर लिया। लोकान्तिक देवोंने आकर उनकी स्तुति की और दीक्षा लेनेके विचारोंका समर्थन किया।

बस, क्या था ! बरात बीचमें ही भंग हो गई। समुद्रविजय, वसुदेव, बलराम, कृष्णचन्द्र आदि कोई भी उन्हें अपने सुदृढ़ निश्चयसे विचलित नहीं कर सके। वहींपर देवोंने आकर उनका दीक्षाभिषेक किया। और एक महा मनोहर 'देव-कुरु' नामकी पालकी बनाई। भगवान् नेमिनाथ पालकीपर सवार होकर रेवतक गिरनार पर्वतपर पहुंचे और वहांपर सहस्राम्र वनमें हजार राजाओंके साथ उसी दिन—श्रावण शुक्ला षष्ठीके दिन चित्रा नक्षत्रमें शामके समय दीक्षित हो गये। उन्हें दीक्षा लेते ही मनः पर्यय ज्ञान प्रकट हो गया था। दीक्षा लेते समय भगवान् नेमिनाथकी आयु तीन सौ वर्षकी थी।

इधर जब राजाउग्रसेनके घर नेमिनाथकी दीक्षाके समाचार पहुंचे तब वे बहुत ही दुःखी हुए। उस समय कुमारी राजमतीकी जो अवस्था हुई थी उसका इस तुच्छ लेखनीके द्वारा वर्णन नहीं किया जा सक्ता। माता पिताके बहुत समझानेपर भी उसने फिर किसी दूसरे वरसे शादी नहीं की। वह शोकसे व्याकुल होकर गिरिनारपर मुनिराज नेमिनाथके पास पहुंची और अनेक रस-भरे वचनोंसे उनका चित्त विचलित करनेका उद्यम करने लगी। परन्तु जैसे प्रलयकी पवनसे मेरु पर्वत विचलित नहीं होता वैसे ही राजमतीके वचनोंसे नेमिनाथका मन विचलित नहीं हुआ। अन्तमें वह उनके वैराग्यमय उपदेशसे आर्यिका हो गई और कठिन तपस्याओंसे शरीरको सुखाने लगी।

भगवान् नेमिनाथने दीक्षा लेनेके तीन दिन बाद आहार लेनेके लिये द्वारिका नगरीमें प्रवेश किया। यहां उन्हें वरदत्त महीपतिने भक्ति पूर्वक आहार दिया। पात्रदानसे प्रभावित होकर देवोंने वरदत्तके घरपर पञ्चाश्चर्य प्रकट किये। इस तरह तपश्चरण करते हुए जब छद्मस्थ अवस्थाके छप्पन ५६ दिन निकल गये तब उसी रेवतक (गिरिनार) पर्वतपर वंश वृक्षके नीचे तीन दिन के उपवासकी प्रतिज्ञा लेकर विराजमान हुये। वहींपर उन्हें आसोज शुक्ल पड़िवाके दिन सबेरेके समय चित्रा नक्षत्रमें केवलज्ञानकी प्राप्ति हुई। उसी समय इन्द्रादि देवोंने आकर उनके ज्ञान कल्याणकका उत्सव किया। धनपति कुबेरने इन्द्रकी आज्ञासे समवसरणकी रचना की। उसके मध्यमें स्थिर होकर उन्होंने अपना छप्पन दिनका मौन भङ्ग किया। दिव्यध्वनिके द्वारा षट्द्रव्य, नवपदार्थ

आदिका विशद विवेचन किया। 'भगवान्को केवल ज्ञान प्राप्त हुआ है' यह सुनकर कृष्ण, बलभद्र आदि समस्त यादव अपने अपने परिवारके साथ वन्दनाके लिये समवसरणमें गये। वहां वे सब भगवानको भक्ति पूर्वक नमस्कार कर मनुष्योंके कोठेमें बैठ गये। धार्मिक उपदेश सुननेके बाद श्रीकृष्ण तथा उनकी पट्टरानियोंने अपने अपने पूर्वभवोंका वर्णन सुना।

भगवान नेमिनाथकी सभामें वरदत्त आदि ग्यारह ११ गणधर थे, चारसौ श्रुतकेवली थे, ग्यारह हजार आठसौ शिक्षक थे, पन्द्रह सौ अवधिज्ञानी थे, नौ सौ मनःपर्ययज्ञानी थे, पन्द्रह सौ केवली थे, ग्यारह सौ विक्रिया ऋद्धिके धारक थे और आठ सौ वादी थे, इस तरह सब मिलाकर अठारह हजार मुनिराज थे। यक्षी, राजमती आदि चालीस हजार आर्यिकायें थीं। एक लाख श्रावक थे, तीन लाख श्राविकायें थीं। असंख्यात देव देवियां और संख्यात तिर्यंच थे। इन सबके साथ उन्होंने अनेक आर्य देशोंमें विहार किया और धर्मामृतकी वर्षा की। भगवान् नेमिनाथने छह सौ निन्यानवे वर्ष नौ महीना और चार दिन तक विहार किया। फिर विहार छोड़कर आयुके अन्तमें पाँच सौ तेतीस मुनियोंके साथ योग निरोध कर उसी गिरिनारपर विराजमान हो गये और वहींपर शुक्ल ध्यानके द्वारा अघातिया कर्मोंका नाश कर आषाढ़ सप्तमीके दिन चित्रा नक्षत्रमें रात्रिके प्रारम्भ कालमें मुक्त हो गये। देवोंने आकर निर्वाण कल्याणकका उत्सव किया और सिद्ध क्षेत्रकी पूजा की।





भगवान् पार्श्वनाथ

छप्पय

जन्म जलधि जलयान, जान जनहंस मानसर ।
सर्व इन्द्र मिल आन, आन जिस धरें सीसपर ॥
पर उपकारी बान, बान उत्थप्य कुनय गण ।
गण सरोज बन भान, भान मम मोह तिमिर धन ॥
घन वर्ण देह दुख दाह धर, हर्षत हेत मयूर मन ।
मन मत मतंग हरिपास जिन, जिन विसरहु छिन जगत जन ॥

—भूधरदास

[१] पूर्वभव वर्णन

जम्बू द्वीपके भरत क्षेत्रमें एक सुरम्य नामका रमणीय देश है और उसमें पोदनपुर नगर है। उस नगरमें किसी समय अरविन्द नामका राजा राज्य करता था। अरविन्द बहुत ही गुणवान्, न्यायवान् और प्रजावत्सल राजा था। उसी नगरमें वेद शास्त्रोंको जाननेवाला विश्वभूति नामका ब्राह्मण रहता था। वह अपनी अनुन्धरी नामकी ब्राह्मणीसे बहुत प्यार करता था। उन दोनोंके कमठ और मरुभूति नामके दो पुत्र थे। दोनोंमें कमठ बड़ा था और मरुभूति छोटा। मरुभूति था तो छोटा पर वह अपने गुणोंसे सबको प्यारा लगता था। कमठ विशेष विद्वान न होनेके साथ साथ सदाचारी भी नहीं था। वह अपने दुर्व्यवहारसे घरके लोगोंको बहुत कुछ तंग किया करता था। यदि आचार्य गुणभद्रके शब्दोंमें कहा जावे तो कमठका निर्माण विषसे भरा हुआ था और मरुभूतिकी रचना अमृत से। कमठकी स्त्रीका नाम वरुणा था और मरुभूतिकी स्त्रीका नाम वसुन्धरी। कमठ और मरुभूति दोनों राजा अरविन्दके मन्त्री थे। इसलिये इन्हें किसी प्रकारका आर्थिक संकट नहीं उठाना पड़ता था और नगरमें इनकी धाक भी खूब जमी हुई थी। समय बीतने पर ब्राह्मण और ब्राह्मणकी मृत्यु हो गई। जिससे उसकी बंधी हुई गृहस्थी एक चालसे छिन्न भिन्न हो गई।

किसी एक दिन राजा अरविन्दने ब्राह्मण पुत्र मरुभूतिके लिये बाहिर भेजा। घरपर मरुभूतिकी स्त्री थी। वह बहुत ही सुन्दरी थी। पाकर कमठने उसे अपने षड्यन्त्रमें फंसाकर उसके साथ दुर्व्यवहार करना चाहा। जब राजाको इस बातका पता चला तब उसने मरुभूतिके आनेके पहले ही कमठको देशसे बाहिर निकाल दिया। कमठ जन्मभूमिको छोड़कर यहां-वहां घूमता हुआ एक पर्वतके किनारेपर पहुंचा। वहां पर एक साधु पञ्चाग्नि तप तप रहा था। कमठ भी उसीका शिष्य बन गया और वहीं कहींपर वजनदार शिलाको लिये हुए दोनों हाथोंको ऊपर उठाकर खड़ा खड़ा कठिन तपस्या करने लगा। इधर जब मरुभूमि राजकार्य करके अपने घर वापिस आया और कमठके देश निकालेके समाचार सुने तब उसका हृदय टूंक टूंक हो गया। मरुभूति सरल परिणामी और स्नेही पुरुष था। उसने कमठके अपराध पर कुछ भी विचार नहीं कर उसे वापिस लानेके लिये राजासे प्रार्थना की। राजा अरविन्दने उसे कमठको बुलानेकी आज्ञा दे दी। मरुभूति राजाकी आज्ञा पाकर हर्षित होता हुआ ठीक उस स्थानपर पहुंच गया जहांपर उसका बड़ा भाई तपस्या कर रहा था। मरुभूति क्षमा मांगनेके लिये उसके चरणोंमें पड़कर कहने लगा कि—पूज्य! आप मेरा अपराध क्षमाकर फिरसे घरपर चलिये। आपके बिना मुझे वहां अच्छा नहीं लगता।'......क्षमाके वचन सुनते ही कमठका क्रोध और भी अधिक बढ़ गया। उसकी आंखें लाल-लाल हो गईं। ओंठ कांपने लगे तथा कुछ देर बाद 'दुष्ट-दुष्ट' कहते हुए उसने हाथोंमें की वजनदार शिला मरुभूतिके मस्तकपर पटक दी। शिलाके गिरते ही मरुभूतिके प्राण पखेरु उड़ गये। कमठ भाईको मरा हुआ देखकर अट्टहास करता हुआ किसी दूसरी ओर चला गया।

मरते समय मरुभूतिके मनमें दुर्ध्यान हो गया था इसलिये वह मलय-पर्वतपर कुब्जक नामक सल्लकी वनमें वज्रघोष नामका हाथी हुआ। कमठकी स्त्री वरुणा मरकर उसी वनमें हस्तिनी हुई जो कि वज्रघोषके साथ तरह-तरह की क्रीड़ा किया करती थी। जब राजा अरविन्दको मरुभूतिकी मृत्युके समाचार मिले तब वह बहुत दुःखी हुआ। वह सोचने लगा—कि जैसे चन्द्रमा

राहुका कुछ भी अनिष्ट नहीं करता फिर भी उसे ग्रस लेता है वैसे ही दुष्ट मनुष्य अनिष्ट नहीं करनेवाले सज्जनोपर भी अपनी दुष्टता नहीं छोड़ते। यह संसार प्रायः इन्हीं कमठ जैसे खल मनुष्योंसे भरा हुआ है। पर मरुभूति! मैं तुम्हें जानता था, खूब जानता था कि तुम्हारा हृदय स्फटिककी तरह निर्मल था तुम्हारे हृदयमें हमेशा प्रीति रूपी मन्दाकिनीका पावन प्रवाह बहा करता था। हमारे मना करनेपर भी तुम भाईके स्नेहको नहीं तोड़ सके इसलिये अन्त में मृत्युको प्राप्त हुए। अहा! मरुभूति!......इत्यादि विचार करते हुए उसका मन संसारसे विरक्त हो गया जिससे किन्हीं तपस्वीके पास उसने जिन दीक्षा धारण कर ली। दीक्षाके कुछ समय वाद अरविन्द मुनिराज अनेक मुनियोंके साथ सम्मेद शिखरकी यात्राके लिये गये। चलते चलते वे उसी सल्लकी वनमें पहुंचे जहां मरुभूतिका जीव वज्रघोष हाथी हुआ था। सामायिकका समय देख कर अरविन्द महाराज वहीं किसी एक शिलापर प्रतिमा योग धारणकर विराजमान हो गये। जब वज्रघोषकी दृष्टि मुनिराजपर पड़ी तब वह उन्हें मारनेके लिये वेगसे दौड़ा। पर ज्यों ही उसने अरविन्द मुनिराजके वक्षःस्थलपर श्रीवत्सका चिह्न देखा त्योंही उसे अपने पूर्वभवका स्मरण हो आया। उसने उन्हें देखकर पहिचान लिया कि ये हमारे अरविन्द महाराज हैं। वज्रघोष एक विनीत शिष्यकी तरह शान्त होकर उन्हींके पास बैठ गया। उन्मत्त हाथी मुनिराजके पास आकर एकदम उपशान्त हो गया—यह देखकर सभीको आश्चर्य हुआ। सामायिक पूर्ण होनेपर अरविन्द मुनिराजने अवधि ज्ञानसे उसे मरुभूतिका जीव समझकर खूब समझाया जिससे उसने सब वैर भाव छोड़कर सम्यग्दर्शनके साथ-साथ पांच अणुव्रत धारण कर लिये। अरविन्द महाराज अपने संघके साथ आगे चले गये।

एक दिन वज्रघोष पानी पीनेके लिये किसी मदमदाके पास जा रहा था पर दुर्भाग्यसे वह उसीके किनारेपर बड़ी भारी कोचड़में फंस गया। उसने उससे निकलनेके लिये बहुत कुछ प्रयत्न किये पर वह निकल नहीं सका। तापसी कमठ मरकर उसी मदमदाके किनारे कुक्कुट जातिका सांप हुआ था उसने पूर्वभवके वैरसे उस प्यासे हाथीको डश लिया वह मरकर अणुव्रतोंके

प्रभावसे बारहवें सहस्रार स्वर्गमें सोलह सागरकी आयुवाला देव हुआ।
के जीव कुक्कुट सर्पको भी उसी समय एक वानरीने मार डाला जिससे
मरकर धूमप्रभ नामके पांचवें नरकमें महाभयङ्कर नारकी हुआ। व
जीव स्वर्गकी सोलह सागर प्रमाण आयु समाप्तकर जम्बूद्वीपके पूर्व विदेह
में पुष्कलावती देशके विजयार्ध पर्वतपर त्रिलोकोत्तम नगरमें वहांके
विद्युद्गति और रानी विद्युन्मालाके अग्नि वेग नामका पुत्र हुआ। अ
पूर्ण यौवन प्राप्तकर किन्हीं समाधि गुप्त नामक मुनिराजके पास जिन
धारण कर ली और सर्वतोभद्र आदिक उपवास किये।

मुनिराज अग्निवेग किसी एक दिन हरि नामक पर्वतकी गुफामें
लगाये हुए विराजमान थे। इतनेमें कमठ-कुक्कुट सर्पके जीवने जो
नरकसे निकलकर उसी गुफामें बड़ा भारी अजगर हुआ था मुनिराजको
कर क्रोधसे उन्हें निगल लिया।

मुनिराजने सन्यास पूर्वक शरीर त्यागकर सोलहवें अच्युत स्वर्गके
विमानमें देव पदवी पाई। वहां उनकी आयु बाईस सागर प्रमाण थी।
का जीव अजगर भी मरकर छठवें नरकमें नारकी हुआ।

स्वर्गकी आयु पूरीकर मरुभूति—वज्रघोष—अग्निवेगका जीव इसी
द्वीपके पश्चिम विदेहक्षेत्रमें पद्मदेशके अश्वपुर नगरमें वहांके राजा व
और रानी विजयाके बज्रनाभि नामका पुत्र उत्पन्न हुआ। बज्रनाभि
प्रतापी पुरुष था। उसने अपने प्रतापसे छह खण्डोंकी विजय की थी—व
चक्रवर्ती था। किसी एक दिन कारण पाकर चक्रवर्ती बज्रनाभि राज्य-सम्
ओंसे विरक्त हो गया। इसलिये उसने क्षेमङ्कर मुनिराजके पास जाकर स
चीन धर्मका स्वरूप सुना और उनके उपदेशसे प्रभावित होकर पुत्रको राज्य
दिया और स्वयं उनके चरणोंमें दीक्षा धारण कर ली। कमठ—
जीव नरकसे निकलकर उसी वनमें एक कुरङ्ग नामका भील हुआ था।
बड़ा ही क्रूर-हिंसक था।

एक दिन बज्रनाभि मुनिराज उसी वनमें आतापन योग लगाये हुए
थे कि उस कुरङ्ग भीलने पूर्वभवके संस्कारोंसे उनपर घोर उपसर्ग किये। मुनि

राहुका कुछ भी अनिष्ट नहीं करता फिर भी उसे ग्रस लेता है वैसे ही दुष्ट मनुष्य अनिष्ट नहीं करनेवाले सज्जनोपर भी अपनी दुष्टता नहीं छोड़ते। यह संसार प्रायः इन्हीं कमठ जैसे खल मनुष्योंसे भरा हुआ है। पर मरुभूति! मैं तुम्हें जानता था, खूब जानता था कि तुम्हारा हृदय स्फटिककी तरह निर्मल था तुम्हारे हृदयमें हमेशा प्रीति रूपी मन्दाकिनीका पावन प्रवाह बहा करता था। हमारे मना करनेपर भी तुम भाईके स्नेहको नहीं तोड़ सके इसलिये अन्त में मृत्युको प्राप्त हुए। अहा! मरुभूति!......इत्यादि विचार करते हुए उसका मन संसारसे विरक्त हो गया जिससे किन्हीं तपस्वीके पास उसने जिन दीक्षा धारण कर ली। दीक्षाके कुछ समय बाद अरविन्द मुनिराज अनेक मुनियोंके साथ सम्मेद शिखरकी यात्राके लिये गये। चलते चलते वे उसी सल्लकी वनमें पहुंचे जहां मरुभूतिका जीव वज्रघोष हाथी हुआ था। सामायिकका समय देख कर अरविन्द महाराज वहीं किसी एक शिलापर प्रतिमा योग धारणकर विराजमान हो गये। जब वज्रघोषकी दृष्टि मुनिराजपर पड़ी तब वह उन्हें मारनेके लिये वेगसे दौड़ा। पर ज्यों ही उसने अरविन्द मुनिराजके वक्षःस्थलपर श्रीवत्सका चिह्न देखा त्योंही उसे अपने पूर्वभवका स्मरण हो आया। उसने उन्हें देखकर पहिचान लिया कि ये हमारे अरविन्द महाराज हैं। वज्रघोष एक विनीत शिष्यकी तरह शान्त होकर उन्हींके पास बैठ गया। उन्मत्त हाथी मुनिराजके पास आकर एकदम उपशान्त हो गया—यह देखकर सभीको आश्चर्य हुआ। सामायिक पूर्ण होनेपर अरविन्द मुनिराजने अवधि ज्ञानसे उसे मरुभूतिका जीव समझकर खूब समझाया जिससे उसने सब बैर भाव छोड़कर सम्यग्दर्शनके साथ-साथ पांच अणुव्रत धारण कर लिये। अरविन्द महाराज अपने संघके साथ आगे चले गये।

एक दिन वज्रघोष पानी पीनेके लिये किसी नदमदाके पास जा रहा था पर दुर्भाग्यसे वह उसीके किनारेपर बड़ी भारी कीचड़में फंस गया। उसने उससे निकलनेके लिये बहुत कुछ प्रयत्न किये पर वह निकल नहीं सका। तापसी कमठ मरकर उसी नदमदाके किनारे कुक्कुट जातिका सांप हुआ था उसने पूर्वभवके बैरसे उस प्यासे हाथीको डश लिया वह मरकर अणुव्रतोंके

प्रभावसे बारहवें सहस्रार स्वर्गमें सोलह सागरकी आयुवाला देव हुआ। कमठके जीव कुक्कुट सर्पको भी उसी समय एक वानरीने मार डाला जिससे वह मरकर धूमप्रभ नामके पांचवें नरकमें महाभयङ्कर नारकी हुआ। वज्रघोषका जीव स्वर्गकी सोलह सागर प्रमाण आयु समाप्तकर जम्बूद्वीपके पूर्व विदेह क्षेत्रमें पुष्कलावती देशके विजयार्ध पर्वतपर त्रिलोकोत्तम नगरमें वहांके राजा विद्युद्गति और रानी विद्युन्मालाके अग्नि वेग नामका पुत्र हुआ। अग्निवेगने पूर्ण यौवन प्राप्तकर किन्हीं समाधि गुप्त नामक मुनिराजके पास जिन दीक्षा धारण कर ली और सर्वतोभद्र आदिक उपवास किये।

मुनिराज अग्निवेग किसी एक दिन हरि नामक पर्वतकी गुफामें ध्यान लगाये हुए विराजमान थे। इतनेमें कमठ-कुक्कुट सर्पके जीवने जो धूमप्रभ नरकसे निकलकर उसी गुफामें बड़ा भारी अजगर हुआ था मुनिराजको देखकर क्रोधसे उन्हें निगल लिया।

मुनिराजने सन्यास पूर्वक शरीर त्यागकर सोलहवें अच्युत स्वर्गके पुष्कर विमानमें देव पदवी पाई। वहां उनकी आयु बाईस सागर प्रमाण थी। कमठका जीव अजगर भी मरकर छठवें नरकमें नारकी हुआ।

स्वर्गकी आयु पूरीकर मरुभूति—वज्रघोष—अग्निवेगका जीव इसी जम्बूद्वीपके पश्चिम विदेहक्षेत्रमें पद्मदेशके अश्वपुर नगरमें वहांके राजा वज्रवीर्य और रानी विजयाके वज्रनाभि नामका पुत्र उत्पन्न हुआ। वज्रनाभि बड़ा प्रतापी पुरुष था। उसने अपने प्रतापसे छह खण्डोंकी विजय की थी—वह चक्रवर्ती था। किसी एक दिन कारण पाकर चक्रवर्ती वज्रनाभि राज्य-सम्पदाओंसे विरक्त हो गया। इसलिये उसने क्षेमङ्कर मुनिराजके पास जाकर समीचीन धर्मका स्वरूप सुना और उनके उपदेशसे प्रभावित होकर पुत्रको राज्य दे दिया और स्वयं उनके चरणोंमें दीक्षा धारण कर ली। कमठ—अजगरका जीव नरकसे निकलकर उसी वनमें एक कुरङ्ग नामका भील हुआ था। जो बड़ा ही क्रूर-हिंसक था।

एक दिन वज्रनाभि मुनिराज उसी वनमें आतापन योग लगाये हुए बैठे थे कि उस कुरङ्ग भीलने पूर्वभवके संस्कारोंसे उनपर घोर उपसर्ग किये। मुनि-

राज समाधि पूर्वक शरीर त्यागकर सुभद्र नामक मध्यमग्रैवेयकमें अहमिन्द्र हुए। वहां उनकी आयु सत्ताईस सागर की थी। कुरङ्ग भील भी मुनिहत्याके पापसे सातवें नरकमें नारकी हुआ। मरुभूतिका जीव अहमिन्द्र, ग्रैवेयककी सत्ताईस सागर प्रमाण आयु पूरी कर इसी जम्बू द्वीपमें कौशल देशकी अयोध्या नगरीमें इक्ष्वाकुवंशीय राजा वज्रबाहुकी प्रभाकरी पत्नीसे आनन्द नामका पुत्र हुआ। वह बहुत ही सुन्दर था। आनन्दको देखकर सभीको आनन्द होता था। बड़ा होनेपर आनन्द महामण्डलेश्वर राजा हुआ। उसके पुरोहितका नाम स्वामिहित था।

एक दिन पुरोहित स्वामिहितने राजाके सामने आष्टान्हिक व्रतके माहात्म्यका वर्णन किया जिससे उसने फाल्गुन माहकी आष्टाह्निकाओंमें एक बड़ी भारी पूजा करवाई। उसे देखनेके लिये वहाँपर एक विपुलमति नामके मुनिराज पधारे। राजाने विनयके साथ उनकी वन्दना की और ऊंचे आसनपर बैठाया। पूजा कार्य समाप्त होनेपर राजाने मुनिराजसे पूछा कि—"महाराज! जिनेन्द्र देवकी अचेतन प्रतिमा जब किसीका हित और अहित नहीं कर सकती तब उसकी पूजा करनेसे क्या लाभ है?' राजाका प्रश्न सुनकर उन्होंने कहा—'यह ठीक है कि जिनराजकी जड़ प्रतिमा किसीको कुछ दे नहीं सकती। पर उसके सौम्य, शान्त आकारके देखनेसे हृदयमें एकबार वीतरागताकी लहर उत्पन्न हो उठती है, आत्माके सच्चे स्वरूपका पता चल जाता है और कषाय रिपुओंकी धींगाधांगी एकदम बन्द हो जाती है। उससे बुरे कर्मोंकी निर्जरा होकर शुभ कर्मोंका बन्ध होता है जिनके उदयकालमें प्राणियोंको सुखकी सामग्री मिलती है। इसलिये प्रथम अवस्थामें जिनेन्द्रकी प्रतिमाओंकी अर्चा करनी बुरी नहीं है।' इतना कहकर उन्होंने राजा आनन्दके सामने अकृत्रिम चैत्यालयोंका वर्णन करते हुए आदित्य—सूर्य विमानमें स्थित अकृत्रिम जिन बिम्बोंका वर्णन किया। जिसे सुनकर समस्त जनता अत्यन्त हर्षित हुई। आनन्दने हाथ जोड़कर सूर्य विमानकी प्रतिमाओंको लक्ष्यकर नमस्कार किया और अपने मन्दिरमें अनेक चमकीले रत्नोंका विमान बनवाकर उसमें रत्नमयी प्रतिमाएं विराजमान की। जिन्हें वह सूर्य विमानकी प्रतिमाओंकी

कल्पना कर प्रति दिन भक्तिसे नमस्कार करता था। उस समय बहुतसे लोगों ने राजा आनन्दका अनुकरण किया था उसी समयसे भारतवर्षमें सूर्य नमस्कारकी प्रथा चल पड़ी थी। राजा आनन्दने बहुत समय तक पृथिवीका पालन किया।

एक दिन उसे अपने शिरमें सफेद बालके देखनेसे वैराग्य उत्पन्न हो आया जिससे वह अपना विशाल राज्य ज्येष्ठ पुत्रको सौंपकर किन्हीं समुद्रदत्त नामके मुनिराजके पास दीक्षित हो गये। उन्हींके पास रहकर उसने सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यकचारित्र और तप इन चार आराधनाओंकी आराधना की। ग्यारह अंगोंका ज्ञान प्राप्त किया और विशुद्ध हृदयसे दर्शन विशुद्धि आदि सोलह भावनाओंका चिन्तवन कर तीर्थंकर नामक पुण्य प्रकृतिका बन्ध किया। एक दिन मुनिराज आनन्द प्रायोप गमन सन्यास लेकर निराकुल रूपसे क्षीर नामक बनमें बैठे हुए थे। कमठका जीव भी नरकसे निकलकर उसी वनमें सिंह हुआ था। ज्योंही उसकी दृष्टि मुनिराजपर पड़ी त्योंही उसे पूर्वभवके संस्कारसे प्रचण्ड क्रोध आ गया। उसने अपनी पैनी डांढ़ोंसे आनन्द मुनिराज का गला पकड़ लिया। सिंह कृत उपसर्ग सहन कर मुनिराज आनत स्वर्गके प्राणत नामके विमानमें इन्द्र हुए। वहां उनकी आयु बीस सागरकी थी, साढ़े तीन हाथका शरीर था। शुक्ल लेश्या थी, वह दश माह बाद श्वांस लेता और बीस हजार वर्ष बाद मानसिक आहार ग्रहण करता था। उसे जन्मसे ही अवधि ज्ञान प्राप्त था इसलिये वह पांचवें नरक तककी बातोंको स्पष्ट जान लेता था। अनेक देव देवियां उसकी सेवा करती थीं। यही अहमिन्द्र आगेके भवमें भगवान् पार्श्वनाथ होगा। कहां ? सो सुनिये:—

[२] वर्तमान परिचय

जम्बू द्वीपके भरत क्षेत्रमें काशी नामका विशाल देश है। उसमें अपनी शोभासे अलका पुरीको जीतने वाली एक बनारस नामकी नगरी है। बनारसके समीप ही शान्त-स्तिमित गतिसे गंगा नदी बहती है। वह अपनी धवल तरंगोंसे किनारेपर बने हुए मकानोंको सींचती हुई बड़ी ही भली मालूम होती

है। उसमें काश्यप गोत्रीय राजा विश्वसेन राज्य करते थे। उनकी पटरानीका नाम ब्रह्मा देवी था। दोनों राज दम्पति इन्द्र इन्द्राणीकी तरह मनोहर सुख भोगते हुए आनन्दसे समय बिताते थे। ऊपर जिस इन्द्रका कथन कर आये हैं वहांपर जब उसकी आयु केवल छह माहकी बाकी रह गई तबसे राजा विश्वसेनके घरपर देवोंने रत्नोंकी वर्षा करनी शुरू कर दी। और अनेक देवियां आकर महारानी ब्रह्मादेवीकी सेवा करने लगीं जिससे उन्हें निश्चय हो गया कि यहां किसी महापुरुष तीर्थंकरका जन्म होने वाला है।

वैसाख कृष्ण द्वितियाके दिन विशाखा नक्षत्रमें रात्रिके पिछले पहरमें रानीने सुर कुंजर आदि सोलह स्वप्न देखे और स्वप्न देखनेके बाद ही मुंहमें प्रवेश करते हुए एक मत्त हाथीको देखा। उसी समय मरुभूमिके जीव इन्द्रने स्वर्ग वसुन्धरासे सम्बन्ध तोड़कर उनके गर्भमें प्रवेश किया। सवेरा होते ही रानीने नहा धोकर प्राणनाथसे स्वप्नोंका फल पूछा तब उन्होंने हंसते हुए कहा कि आज तुम्हारे गर्भमें तेईसवें तीर्थंकरने अवतार लिया है। नौ माह बाद उनका जन्म होगा। यह रत्नोंकी वर्षा, देवकुमारियोंकी सेवा और स्वप्नोंका देखना उन्हींका माहात्म्य प्रभाव प्रकट कर रहे हैं। पतिदेवके वचन सुनकर ब्रह्मा देवीको इतना अधिक हर्ष हुआ कि मारे आनन्दके उसके सारे शरीरमें रोमांच निकल आये। उसी समय देवोंने आकर राज दम्पतीका खूब सत्कार किया, स्तुति की, और स्वर्गसे साथमें लाये हुए वस्त्र-आभूषण प्रदान किये।

नौ माह बाद उसने पौष कृष्ण एकादशीके दिन अनिल योगमें पुत्र रत्नको उत्पन्न किया। पुत्रके उत्पन्न होते ही सब ओर आनन्द ही आनन्द छा गया। उसी समय सौधर्म इन्द्र आदि देवोंने मेरु पर्वतपर ले जाकर उनका जन्माभिषेक किया और भगवान् पार्श्वनाथ नाम रक्खा। वहांसे वापिस आकर इन्द्रने उन्हें उनकी माताके लिये सौंप दिया और भक्तिसे गद्गद् हो ताण्डव नृत्य आदिका प्रदर्शन कर जन्म कल्याणकका महोत्सव किया। उत्सव समाप्त होनेपर देव लोग अपने अपने स्थानोंपर चले गये।

राज परिवारमें बालक पार्श्वनाथका योग्य रीतिसे लालन-पालन हुआ। भगवान नेमिनाथके मोक्ष जानेके बाद तिरासी हजार सात सौ पचास वर्ष बीत

जानेपर पार्श्वनाथ स्वामी हुए थे। इनकी सौ वर्षकी आयु भी इसीमें शामिल है। इनके शरीरकी ऊंचाई नौ हाथकी थी और रंग हरा था। इनकी उत्पत्ति उग्रवंशमें हुई थी। भगवान् पार्श्वनाथने धीरे धीरे बाल्य अवस्था व्यतीत कर कुमार अवस्थामें प्रवेश किया और फिर कुमार अवस्थाको पाकर यौवन अवस्था के पास पहुंचे।

सोलह वर्षके पार्श्वनाथ किसी एक दिन अपने कुछ इष्ट मित्रोंके साथ वन में क्रीड़ा करनेके लिये गये हुए थे। वहांसे लौटकर जब वे घर आ रहे थे तब उन्हें मार्गमें किनारेपर पंचाग्नि तपता हुआ एक साधु मिला। वह साधु ब्रह्मा देवीका पिता अर्थात् भगवान् पार्श्वनाथका मातामह नाना था। अपनी स्त्रीके विरहसे दुःखी होकर वहां पचाग्नि तपने लगा था। उसका नाम महीपाल था। कमठका जीव सिंह आनन्द मुनिराजकी हत्या करनेसे मरकर नरकमें गया था वहांसे निकलकर अनेक कुयोनियोंमें घूमता हुआ वही यह महीपाल तापस हुआ था। भगवान् पार्श्वनाथ और उनका मित्र सुभौम कुमार विना नमस्कार किये ही उस तापसके सामने खड़े हो गये। तापसको इस अनादरसे बहुत बुरा मालूम हुआ। वह सोचने लगा—'मुझे अच्छे अच्छे राजा महाराजा तो नमस्कार करते हैं पर ये आज कलके छोकड़े कितने अभिमानी हैं। खैर!... यह सोचकर उसने बुझती हुई अग्निको प्रदीप्त करनेके लिये कुल्हाड़ीसे मोटी लकड़ी काटनी चाही। भगवान् पार्श्वनाथने अवधि ज्ञानसे जानकर कहा कि 'बाबाजी! आप इस लकड़ीको नहीं काटिये इसके भीतर दो प्राणी बैठे हुए हैं जो कुल्हाड़ीके प्रहारसे मर जावेंगे। इसी बीचमें इनके मित्र सुभौम कुमारने उसके बालतप-अज्ञानतपकी खूब निंदा की और पंचाग्नि तपनेसे हानियां बतलाईं। सुभौमके बचन सुनकर तापसने झल्लाते हुये दोनोंके प्रति बहुत कुछ रोष प्रकट किया और कुल्हाड़ी मारकर लकड़ीके दो टूक कर दिये। कुल्हाड़ीके प्रहारसे लकड़ीमें रहने वाले सर्प और सर्पिणीके भी दो दो टुकड़े हो गये। उनके भग्न टुकड़े व्याधिसे तड़फड़ा रहे थे। पार्श्वनाथ स्वामीने कुछ उपाय न देखकर उन सर्प सर्पिणोको शान्त होनेका उपदेश दिया और पंच नमस्कार मन्त्र सुनाया। उनके उपदेशसे शान्त चित्त होकर दोनोंने नमस्कार मन्त्रका

ध्यानकर जिसके प्रभावसे वे दोनों महा विभूतिके धारक धरणेन्द्र और पद्मावती हुए। बहुत समझानेपर भी जब उस महीपाल तापसने अपनी हठ नहीं छोड़ी तब वे मित्रोंके साथ अपने घर लौट आये। महीपाल तापसको भी अपने इस अनादरसे बहुत दुःख हुआ। जिससे आर्तध्यानसे मरकर संवर नामका ज्योतिषी देव हुआ।

जब भगवान पार्श्वनाथकी आयु तीस वर्षकी हो गई तब अयोध्या नगरके स्वामी राजा जयसेनने उन्हें उत्तमोत्तम भेंट देनेके लिये किसी दूतको भेजा कुमार पार्श्वनाथने बड़ी प्रसन्नतासे उसकी भेंट स्वीकार की और दूतका खूब सम्मान किया। मौका पाकर जब उन्होंने दूतसे अयोध्याका समाचार पूछा तब दूतने पहले यहांपर उत्पन्न हुये वृषभनाथ आदि तीर्थंकरोंका वर्णन किया। राजा रामचन्द्र, लक्ष्मण आदिकी वीर चेष्टाओंका व्याख्यान किया और फिर शहरकी शोभाका निरूपण किया। दूतके मुखसे तीर्थंकरोंका हाल सुनकर उन्होंने सोचा कि मैं भी तीर्थंकर कहलाता हूँ। पर इस थोते पदसे क्या? मैंने सचमुचमें एक सामान्य मनुष्यकी तरह अपनी आयुके तीस वर्ष यूंही गमा दिये। इस प्रकार विचार करते उन्हें आत्म ज्ञान प्राप्त हो गया जिससे उन्होंने विषय वासनाओंसे मोह छोड़कर दीक्षा लेनेका पक्का निश्चय कर लिया। उन्हें दीक्षा लेनेके लिये तयार देखकर राजा विश्वसेन आदिने बहुत कुछ समझाया पर उन्होंने किसीकी एक न मानी। उसी समय लौकान्तिक देवोंने आकर उनके आदर्श विचारोंका समर्थन किया तथा सौधर्मेन्द्र आदिने आकर दीक्षा कल्याणकका उत्सव मनाया। भगवान पार्श्वनाथ अनेक राजकुमारियोंके आशा बन्धन तोड़कर देव निर्मित 'विमला' पालकीपर सवार होकर अश्व वनमें पहुंचे और वहाँ तेलाका नियम लेकर तीन सौ राजाओंके साथ पौष कृष्ण एकादशीके दिन सवेरेके समय दीक्षित हो गये। बढ़ती हुई विशुद्धिके कारण उन्हें दीक्षा लेते ही मनःपर्यय ज्ञान प्राप्त हो गया था। दीक्षा कल्याणकका उत्सव समाप्त कर देव लोग अपने अपने स्थानोंपर चले गये।

चौथे दिन भगवानने आहार लेनेके लिये गुल्म खेटपुरमें प्रवेश किया। वहां उन्हें धन्य नामक राजाने विधिपूर्वक उत्तम आहार दिया। आहारसे

प्रभावित होकर देवोंने धन्य राजाके घरपर पञ्चाश्चर्य प्रकट किया। आहार लेकर भगवान् पुनः वनमें आकर विराजमान हो गये। इस तरह कभी प्रतिदिन कभी दो-चार, छह आदि दिनोंके बाद आहार लेते और आत्मध्यान करते हुए उन्होंने छद्मस्थ अवस्थाके चार माह व्यतीत किये। फिर वे उसी दीक्षा-वनमें देवदारु वृक्षके नीचे सात दिनके अनशनकी प्रतिज्ञा लेकर ध्यानमें मग्न हो गये। जब वे ध्यानमें मग्न होकर अचलकी तरह निश्चल हो रहे थे उसी समय कमठ-महीपालका जीव कालसंवर नामका ज्योतिषी देव आकाश मार्गसे विहार करता हुआ वहांसे निकला। जब उसका विमान मुनिराज पार्श्वनाथके ऊपर आया तब वह मन्त्रसे कीलित हुएकी तरह अकस्मात् रुक गया। जब कालसंवरने उसका कारण जाननेके लिये यहां वहां नजर दौड़ाई तब उसे ध्यान करते हुए भगवान् पार्श्वनाथ दीख पड़े। उन्हें देखते ही उसे अपने बैरकी याद आ गई जिससे उसने क्रुद्ध होकर उनपर घोर उपसर्ग करना शुरू कर दिया। सबसे पहले उसने खूब जोरका शब्द किया और फिर लगातार सात दिनतक मूसलधार पानी बरषाया, ओले बरषाये और वज्र गिराया। पर भगवान् पार्श्वनाथ कालसंवरके उपसर्गसे रञ्चमात्र भी विचलित नहीं हुए। इनके द्वारा दिये गये नमस्कार मन्त्रके प्रभावसे जो सर्प, सर्पिणी, धरणेन्द्र और पद्मावती हुए थे, उन्होंने अवधि ज्ञानसे अपने उपकारी पार्श्वनाथके ऊपर होनेवाले घोर उपसर्गका हाल जान लिया। जिससे वे दोनों घटनास्थलपर पहुंचे और वह भगवान् पार्श्वनाथको उस प्रचण्ड घनघोर वर्षाके मध्यमें मेरुकी तरह अविचल देख कर आश्चर्यसे चकित हो गये। उन दोनोंने उन्हें अपने ऊपर उठा लिया और उनके शिरपर फणावली तान दी। जिससे उन्हें पानीका एक बूंद भी नहीं लग सकता था। उसी समय ध्यानके माहात्म्यसे घातिया कर्मोंका नाशकर उन्हें केवल ज्ञान प्राप्त हो गया। भगवानके अनुपम धैर्यसे हार मानकर संवर देव बहुत ही लज्जित हुआ। उसी समय उसकी कषायोंमें कुछ शान्तता आ गई जिससे वह पहलेका समस्त वैरभाव भुलाकर क्षमा मांगनेके लिये उनके चरणोंमें आ पड़ा। उन्होंने उसे भव्य उपदेशसे सन्तुष्ट कर दिया। भगवान् पार्श्वनाथको चैत्र कृष्ण चतुर्थीके दिन केवल ज्ञान प्राप्त हुआ था। केवल ज्ञान

प्राप्त होते ही समस्त देवोंने आकर उनका ज्ञान कल्याणक किया। कुवेरने समव शरणकी रचना की। उसके मध्यमें स्थित होकर उन्होंने चार माह बाद मौन भङ्ग किया—दिव्य ध्वनिके द्वारा समस्त पदार्थोंका व्याख्यान किया। उनके समयमें जगह जगहपर वैदिक धर्मका प्रचार बढ़ा हुआ था, इसलिये उन्होंने प्रायः सभी आर्य क्षेत्रोंमें घूम-घूमकर उसका विरोध किया और जैनधर्मका प्रचार किया था।

भगवान् पार्श्वनाथके समवसरणमें स्वयम्भुव आदि दश गणधर थे, तीन सौ पचास द्वादशाङ्गके जानकार थे, दश हजार नौ सौ शिक्षक थे, चौदह सौ अवधि ज्ञानी थे, सात सौ पचास मनः पर्यय ज्ञानी थे, एक हजार केवल ज्ञानी थे, इतने ही विक्रिया ऋद्धिके धारक थे, और छह सौ वादी थे। इस तरह सब मिलाकर सोलह हजार मुनिराज थे। सुलोचना आदिको लेकर छत्तीस हजार आर्यिकाएं थीं, एक लाख श्रावक थे, तीन लाख श्राविकाएं, असंख्यात् देवदेवियां और संख्यात तिर्यञ्च थे।

इन सबके साथ उन्होंने उनहत्तर वर्ष सात माहतक विहार किया। उस समय इनकी बहुत ही ख्याति थी। हठवादी इनकी युक्तियोंसे बहुत डरते थे। जब इनकी आयु एक माहकी बाकी रह गई तब वे छत्तीस मुनियोंके साथ योग निरोध कर सम्मेद शैलपर विराजमान हो गये। और वहींसे उन्होंने श्रावण शुक्ला सप्तमीके दिन विशाखा नक्षत्रमें सवेरेके समय अघातिया कर्मोंका नाशकर मोक्ष लाभ किया। देवोंने आकर भक्ति पूर्वक निर्वाण कल्याणकका उत्सव किया भगवान् पार्श्वनाथके सर्पका चिह्न था।

भगवान् महावीर

दिढ कर्माचल दलन पवि, भवि सरोज रविराय।
कंचन छवि कर जोर कवि, नमत वीर जिनपाय॥
—भूधर दास

[१] पूर्वभव वर्णन

सब द्वीपोंमें शिर मौर जम्बू द्वीपके विदेह क्षेत्रमें सीता नदीके उत्तर तट पर एक पुष्कलावती देश है उसमें अपनी स्वाभाविक शोभासे स्वर्गपुरीको जीतनेवाली पुण्डरीकिणी नगरी है। उसके मधु नामके वनमें किसी समय पुरुरवा नामका भीलोंका राजा रहता था। वह बड़ा ही दुष्ट था—भोले जीवोंको मारते हुए उसे कभी भी दया नहीं आती थी। पुरुरवाकी स्त्रीका नाम कालिका था। दोनों स्त्री-पुरुषोंमें काफी प्रेम था। किसी एक दिन रास्ता भूलकर सागरसेन नामके मुनिराज उस वनमें इधर उधर फिर रहे थे। उन्हें देखकर पुरुरवा हरिण समझकर मारनेके लिये तैयार हो गया परन्तु उसकी स्त्री कालिकाने उसे उसी समय रोक दिया और कहा कि ये वनके अधिष्ठाता देव हैं, हरिण नहीं हैं, इन्हें मारनेसे सङ्कटमें पड़ जाओगे। स्त्रीके कहनेसे प्रशान्त चित्त होकर वह मुनिराज सागरसेनके पास पहुंचा और नमस्कार कर उन्हींके पास बैठ गया। मुनिराजने उसे मीठे और सरल शब्दोंमें उपदेश दिया जिससे वह बहुत ही प्रसन्न हुआ। उसने मुनिराजके कहनेसे जीवनभरके लिये मद्य, मांस और मधुका खाना छोड़ दिया। रास्ता मिलनेपर मुनिराज अपने वांछित स्थानकी ओर चले गये और प्रसन्न चित्त पुरुरवा अपने घरको गया। वहां वह निर्दोष रूपसे अपने व्रतका पालन करता रहा और आयुके अन्तमें शान्त परिणामोंसे मरकर सौधर्म स्वर्गमें देव हुआ। वहां उसकी आयु एक सागर की थी। स्वर्गके सुख भोगकर जम्बूद्वीप-भरत क्षेत्रकी अयोध्या नगरीके राजा भरत चक्रवर्तीकी अनन्तमति नामक रानीसे मरीचि नामका पुत्र हुआ। जब वह पैदा हुआ था उस समय भगवान् वृषभदेव गृहस्थ

अवस्थामें ही थे और महाराज नाभिराज भी मौजूद थे इसलिये उसके जन्म का खूब उत्सव मनाया गया था। जब वह बड़ा हुआ तब अपने पितामह भगवान् वृषभदेवके साथ देखा देखी मुनि हो गया। उस समय और भी कच्छ महाकच्छ आदि चार हजार राजा मुनि हो गये थे पर वे सभी भूख प्यासकी बाधासे दुःखी होकर भ्रष्ट हो गये थे। वह मरीचि भी मुनि पदसे पतित हो जंगलोंमें कन्दमूल खाने और तालाबोंमें पानी पीनेके लिये गया। तब वन देवताने प्रकट होकर कहा कि—'यदि तुम यति वेषमें रहकर यह अनाचार करोगे तो हम तुम्हें दण्डित करेंगे। देवताओंके वचन सुनकर उसने वृक्षोंके वल्कल पहिनकर दिगम्बर वेषको छोड़ दिया और मनमानी प्रवृत्ति करने लगा। उसने कपिल आदि बहुतसे अपने अनुयायी शिष्य बनाकर उन्हें सांख्यमतका उपदेश दिया।

जब भगवान् आदिनाथने समवसरणके मध्यमें विराजमान होकर दिव्य उपदेश दिया तब उन पतित साधुओंमें बहुतसे साधु पुनः जैन धर्ममें दीक्षित हो गये। पर मरीचिने अपना हठ नहीं छोड़ा। वह हमेशा यही कहता रहा कि जिस तरह आदिनाथने एकमत चलाकर ईश्वर पदवी प्राप्त की है उसी तरह मैं भी अपना मत चलाकर ईश्वर पदवी प्राप्त करूंगा। इस तरह वह कन्दमूलका भक्षण करता, शीतल जलसे स्नान करता वृक्षोंके वल्कल पहिनता और सांख्य मतका प्रचार करता हुआ यहां वहां घूमता रहा। आयुके अन्तमें कुछ शान्त परिणामोंसे मरकर पांचवें स्वर्गमें देव हुआ। वहां उसकी आयु दश सागर की थी। आयु पूर्ण होनेपर वह वहांसे चयकर साकेत नगरके कपिल ब्राह्मणकी काली नामक स्त्रीसे जटिल नामका पुत्र हुआ। जब वह बड़ा हुआ तब उसने परिव्राजक-सांख्य साधुकी दीक्षा लेकर पहलेके समान सांख्य तत्त्वोंका प्रचार किया। और आयुके अन्तमें मरकर सौधर्म स्वर्गमें देव हुआ। वहां दो सागरतक दिव्य सुखोंका अनुभव कर इसी भरत क्षेत्रके स्थूणागार नगरमें भारद्वाज ब्राह्मणके घर उसकी पुष्पदत्ता भार्यासे पुष्पमित्र नामका पुत्र हुआ। वहां भी उसने परिव्राजककी दीक्षा लेकर सांख्य तत्त्वोंका प्रचार किया और शान्त परिणामोंसे मरणकर सौधर्म स्वर्गमें देवका पद पाया। वहां

उसकी आयु एक सागर प्रमाण थी। वहांके सुख भोगनेके बाद वह जम्बू-द्वीप भरतक्षेत्रके सूतिका नगरमें अग्निभूति ब्राह्मणकी गौतमी स्त्रीसे अग्नि सह नामका पुत्र हुआ। पूर्व भवके संस्कारसे उसने पुनः परिव्राजककी दीक्षा लेकर प्रकृति आदि पचीस तत्त्वोंका प्रचार किया और कुछ समताभावोंसे मर कर सनत्कुमार स्वर्गमें देव हुआ। वहांपर वह सात सागरतक सुन्दर सुख भोगता रहा। फिर आयु पूर्ण होनेपर इसी भरतक्षेत्रके मन्दिर नगरमें गौतम ब्राह्मणकी कौशाम्बी नामकी स्त्रीसे अग्निमित्र नामका पुत्र हुआ। वहां भी उसने जीवनभर सांख्यमतका प्रचार किया और आयुके अन्तमें मरकर महेन्द्र स्वर्गमें देव पदवी प्राप्त की। वहांके सुख भोगनेके बाद वह उसी मन्दिर नगरमें सालङ्कायन विप्रकी मन्दिरा नामक भार्यासे भारद्वाज नामका पुत्र हुआ। वहां भी उसने त्रिदण्ड लेकर सांख्यमतका प्रचार किया तथा आयुके अन्तमें समता भावोंसे शरीर त्यागकर माहेन्द्र स्वर्गमें देव हुआ। वहां वह सात सागरतक दिव्य सुखोंका अनुभव करता रहा। बादमें वहांसे च्युत होकर कुधर्म फैलानेके खोटे फलसे अनेक त्रस स्थावर योनियोंमें घूम-घूमकर दुःख भोगता रहा। फिर कभी मगध [बिहार] देशके राजगृह नगरमें शाण्डिल्य विप्रकी पाराशरी स्त्री से स्थावर नामका पुत्र हुआ। सो वह भी बड़ा होनेपर अपने पिता-शाण्डिल्य की तरह वेद वेदांगोंका जाननेवाला हुआ। पर सम्यग्दर्शनके बिना उसका समस्त ज्ञान निष्फल था। उसने वहांपर भी परिव्राजककी दीक्षा लेकर सांख्य मतका प्रचार किया और आयुके अन्तमें मरकर माहेन्द्र स्वर्गमें देव पदवी पाई। वहां उसकी आयु सात सागर प्रमाण थी। आयु अन्त होनेपर वहांसे च्युत होकर वह उसी राजगृह नगरमें विश्वभूति राजाकी जैनी नामक महारानीसे विश्वनन्दी नामका पुत्र हुआ। जो कि बड़ा होनेपर बहुत ही शूरवीर निकला था। राजा विश्वभूतिके छोटे भाईका नाम विशाखभूति था। उसकी भी लक्ष्मणा स्त्रीसे विशाखनन्द नामका पुत्र हुआ था जो अधिक बुद्धिमान् नहीं था। इस परिवारके सब लोग जैनधर्ममें बहुत रुचि रखते थे। मरीचिका जीव विश्वनन्दी भी जैन धर्ममें आस्था रखता था।

किसी एक दिन राजा विश्वभूति शरद् ऋतुके भंगुरनाशशील बादल

देखकर मुनि हो गये और अपना राज्य छोटे भाई विशाखभूतिके लिये दे गये तथा अपने पुत्रविश्वनन्दीको युवराज बना गये।

एक दिन युवराज विश्वनन्दी अपने मित्रोंके साथ राजोद्यानमें क्रीड़ाकर रहा था कि इतनेमें वहांसे नये राजा विशाखभूतिका पुत्र विशाखनन्द निकला। राजोद्यानकी शोभा देखकर उसका जी ललचा गया। उसने झटसे अपने पितासे कहा कि आपने जो वन विश्वनन्दीको दे रक्खा है वह मुझे दीजिये नहीं तो मैं घर छोड़कर परदेशको भाग जाऊंगा। राजा विशाखभूति भी पुत्रके मोहमें आकर बोला—'बेटा! यह कौन बड़ी बात है? मैं अभी तुम्हारे लिये वह उद्यान दिये देता हूं' ऐसा कहकर उसने युवराज विश्वनन्दीको अपने पास बुलाकर कहा कि-'मुझे कुछ आततायियोंको रोकनेके लिये पर्वतीय प्रदेशोंमें जाना है। सो जबतक मैं लौटकर वापिस न आ जाऊं तबतक राज्य कार्योंकी देख भाल करना......' काकाके वचन सुनकर भोले विश्वनन्दीने कहा कि—'नहीं आप यहींपर सुखसे रहिये, मैं पर्वतीय प्रदेशोंमें जाकर उपद्रवियोंको नष्ट किये आता हूं......' राजाने विश्वनन्दीको कुछ सेनाके साथ पर्वतीय प्रदेशोंमें भेज दिया और उसके अभावमें उसका बगीचा अपने पुत्रके लिये दे दियाँ। जब विश्वनन्दीको राजाके इस कपटका पता चला तब वह बीचसे ही लौटकर वापस चला आया। और विशाखनन्दको मारनेके लिये उद्योग करने लगा। विशाखनन्द भी उसके भयसे भागकर एक कैथके पेड़पर चढ़ गया परन्तु कुमार विश्वनन्दीने उसे मारनेके लिये वह कैथका पेड़ ही उखाड़ डाला। तदनन्तर वह भागकर एक पत्थरके खम्भेमें जा छिपा। परन्तु विश्वनन्दीने अपनी कलाईकी चोटसे उस खम्भेको भी तोड़ डाला। जिससे वह वहांसे भागा। उसे भागता हुआ देखकर युवराज विश्वनन्दीको दया आ गई। उसने कहा—'भाई! मत भागो, तुम खुशीसे मेरे बगीचेमें क्रीड़ा करो, अब मुझे उसकी आवश्यकता नहीं है। अब मुझे जङ्गलके सूखे कटीले झंखाड़ झाड़ ही अच्छे लगेंगे...' ऐसा कहकर उसने संसारकी कपट भरी अवस्थाका विचार करके किन्हीं सम्भूत नाम के मुनिराजके पास जिन दीक्षा ले ली। इस घटनासे राजा विशाखभूतिको भी बहुत पश्चात्ताप हुआ। उसने मनमें सोचा कि मैंने व्यर्थ ही पुत्रके मोहमें आकर

साधु स्वभावी विश्वनन्दीके साथ कपट किया है। सच पूछो तो यह राज्य भी उसी का है। सिर्फ स्नेहके कारण ही बड़े भाई मुझे राजा बना गये हैं। अब जिस किसी भी तरह मुझे इस पापका प्रायश्चित करना चाहिये। ऐसा सोचकर उसने भी विशाखनन्दीको राज्य देकर जिन दीक्षा ले ली। यह हम पहले लिख आये हैं कि विशाखनन्दी बुद्धिमान् नहीं था इसलिये वह राज्यसत्ता पाकर मदोन्मत्त हो गया। कई तरहके दुराचार करने लगा। जिससे प्रजाके लोगोंने उसे राज्य गद्दीसे च्युतकर देशसे निकाल दिया। विशाखनन्दीने राज्यसे च्युत होकर आजीविकाके लिये किसी राजाके यहां नोकरी कर ली। किसी समय वह राजाके कार्यसे मथुरा नगरीमें आया था और वहां एक वेश्याके घरकी छत-पर बैठा हुआ था।

मुनिराज विश्वनन्दी भी कठिन तपस्याओंसे अपने शरीरको सुखाते हुए उस समय मथुरा नगरीमें पहुंचे। और आहारकी इच्छासे मथुरा नगरीकी गलियोंमें घूमते हुए वहांसे निकले जहांपर वेश्याके मकानकी छतपर विशाख-नन्दी बैठा हुआ था। असाताका उदय किसीको नहीं छोड़ता।...मुनिराज विश्वनन्दीको उस गलीमें एक नव प्रसूता गायने धक्का देकर जमीनपर गिरा दिया। उन्हें जमीनपर पड़ा हुआ देखकर विशाखनन्दीने हंसते हुए कहा कि कलाईकी चोटसे पत्थरके खम्भेको गिरा देनेवाला तुम्हारा वह बल आज कहां गया?......उसके बचन सुनकर विश्वनन्दीको भी कुछ क्रोध आ गया उन्होंने लड़खड़ाती हुई आवाजमें कहा कि—'तुम्हे इस हंसीका फल अवश्य मिलेगा।' आहार लेकर मुनिराज बनकी ओर चले गये। वहां उन्होंने आयुके अन्तमें निदान बांधकर सन्यास पूर्वक शरीर छोड़ा जिससे वे महाशुक्र नामके स्वर्गमें देव हुए। मुनिराज विशाखभूति आयुके अन्तमें समता भावोंसे मरकर वहां पर देव हुए। वहां उन दोनोंमें बहुत ही स्नेहथा।

सोलह सागरतक स्वर्गोंके सुख भोगनेके बाद वहांसे च्युत होकर विशा-खभूतिका जीव जम्बूद्वीप-भरतक्षेत्रमें सुरम्य देशके पोदनपुर नगरके स्वामी राजा प्रजापतिकी जयावती रानीके विजय नामका पुत्र हुआ और विश्वनन्दी-का जीव उसी राजाकी दूसरी रानी मृगावतीके त्रिपृष्ठ नामका पुत्र हुआ।

पूर्व भवके संस्कारसे इन दोनोंमें बड़ा भारी स्नेह था। बड़े होनेपर विजय बलभद्र पद्वीका धारक हुआ और त्रिपृष्ठने नारायण पद्वी पाई। मुनि निन्दाके पापसे विशाखनन्दीका जीव अनेक कुयोनियोंमें भ्रमण करता हुआ विजयार्ध पर्वतकी उत्तर श्रेणीपर अलका नगरीके राजा मयूरग्रीवकी नीलाञ्जना रानीसे अश्वग्रीव नामका पुत्र हुआ। वह बचपनसे ही उद्दण्ड प्रकृतिका था। फिर बड़ा होनेपर तो उसकी उद्दण्डताका पार नहीं रहा था। उसके पास चक्ररत्न था, जिससे वह तीन खण्डपर अपना आधिपत्य जमाये हुए था। किसी कारणवश त्रिपृष्ठ और अश्वग्रीवमें जमकर लड़ाई हुई तब अश्वग्रीवने क्रोधित होकर त्रिपृष्ठपर अपना चक्र चलाया। पर चक्ररत्न तीन प्रदक्षिणाए देकर त्रिपृष्ठके हाथमें आ गया। तब इसने उसी चक्ररत्नके प्रहारसे अश्वग्रीवको मार डाला और स्वयं त्रिपृष्ठ तीन खण्डोंका राज्य करने लगा। तीन खण्डका राज्य पाकर भी और तरह तरहके भोग भोगते हुए भी उसे कभी तृप्ति नहीं होती थी। वह हमेशा विषय सामग्रीको इकत्रित करनेमें लगा रहता था। जिससे वह—त्रिपृष्ठ मरकर सातवें नरकमें नारकी हुआ वहां वह तेतीस सागर पर्यन्त भयङ्कर दुःख भोगता रहा। फिर वहांसे निकलकर जम्बूद्वीप भरत-क्षेत्रमें गङ्गा नदीके किनारे सिंहगिरि पर्वतपर सिंह हुआ। वहां उसने अनेक वन-जन्तुओंका नाशकर पाप उपार्जन किये। जिनके फलसे वह पुनः पहले नरकमें गया और वहां कठिन दुःख भोगता रहा। वहांसे निकलकर जम्बू द्वीपमें सिंहकूटके पूर्वकी ओर हिमवान् पर्वतकी शिखरपर फिरसे सिंह हुआ। वह एक समय अपनी पैनी डाढ़ोंसे एक मृगको मारकर खा रहा था कि इतनेमें वहांसे अत्यन्त कृपालु चारण ऋद्धिधारी अजितञ्जय और अमित गुण नामके मुनिराज निकले। सिंहको देखते ही उन्हें तीर्थङ्करके वचनोंका स्मरण हो आया। वे किन्हीं तीर्थङ्करके समवसरणमें सुनकर आये हुए थे कि हिमकूट पर्वतपरका सिंह दशवें भवमें महावीर नामका तीर्थङ्कर होगा। अजितंजय मुनिराजने अवधिज्ञानके द्वारा उसे झटसे पहिचान लिया। उक्त दोनों मुनिराज आकाशसे उतरकर सिंहके सामने एक शिलापर बैठ गये। सिंह भी चुपचाप वहींपर बैठा रहा। कुछ देर बाद अजितंजय मुनिराजने उस सिंहको सार गर्भित शब्दोंमें समझाया कि—

'अये मृगराज! तुम इस तरह प्रतिदिन निर्बल प्राणियोंको क्यों मारा करते हो? इस पापके फलसे ही तुमने अनेक बार कुयोनियोंमें दुःख उठाये हैं'...... इत्यादि कहते हुए उन्होंने उसके पहलेके समस्त भव कह सुनाये। मुनिराजके बचन सुनकर सिंहको भी जाति स्मरण हो गया जिससे उसकी आंखोंके सामने पहलेके समस्त भव प्रत्यक्षकी तरह झलकने लगे। उसे अपने दुष्कार्यों पर इतना अधिक पश्चात्ताप हुआ कि उसकी आंखोंसे आंसुओंकी धारा बह निकली। मुनिराजने फिर उसे शान्त करते हुए कहा कि तुम आजसे अहिंसा व्रतका पालन करो। तुम इस भवसे दशवें भवमें जगत्पूज्य वर्द्धमान तीर्थङ्कर होंगे। मुनिराजके उपदेशसे बनराजसिंहने सन्यास धारण किया और विशुद्ध चित्त होकर आत्म ध्यान किया। जिससे वह मरकर सौधर्म स्वर्गमें सिंहकेतु नामका देव हुआ। मुनि युगल भी अपना कर्तव्य पूराकर आकाश मार्गसे विहार कर गये। सिंहकेतु दो सागरतक स्वर्गके सुख भोगनेके बाद धातकी खण्ड द्वीपके पूर्व मेरुसे पूर्वकी ओर विदेह क्षेत्रमें मङ्गलावती देशके विजयार्धपर्वतकी उत्तर श्रेणीमें कनकप्रभ नगरके राजा कनकपुंख और उनकी महारानी कनकमालाके कनकोज्वल नामका पुत्र हुआ। बड़े होनेपर उसकी राजकुमारी कनकवतीके साथ शादी हुई। एक दिन वह अपनी स्त्रीके साथ मंदराचल पर्वत पर क्रीड़ा करनेके लिये गया था। वहां पर उसे प्रियमित्र नामके अवधि ज्ञानी मुनिराज मिले। कनकोज्वलने प्रदक्षिणा देकर उन्हें भक्ति पूर्वक नमस्कार किया और फिर धर्मका स्वरूप पूछा। उत्तरमें प्रियमित्र महाराजने कहा कि—

धर्मो दयामयो धर्मे, श्रयधर्मेण नायसे।
मुक्तिर्धर्मेण कर्माणि हन्ता धर्माय सन्मतिम्॥
देहि भापेहि धर्मात्त्वं याहि धर्मस्यभृत्यताम्।
धर्मेतिष्ठ चिरंधर्म पाहिमामिति चिन्तय॥

—आचार्य गुणभद्र

अर्थात्—धर्म दयामय है, तुम धर्मका आश्रय करो, धर्मसे ही मुक्ति प्राप्त होती है, धर्मके लिये उत्तम बुद्धि लगाओ, धर्मसे विमुख मत होवो, धर्मके

भृत्य-दास बन जाओ, धर्ममें लीन रहो और हे धर्म ! हमेशा मेरी रक्षा करो '''इस तरह चिन्तवन करो।

मुनिराजके बचन सुनकर उसके हृदयमें वैराग्य रस समा गया। जिससे उसने कुछ समय बाद ही जिन दीक्षा लेकर सब परिग्रहोंका परित्याग कर दिया। अन्तमें वह सन्यास पूर्वक शरीर छोड़कर सातवें कल्प-स्वर्गमें देव हुआ। लगातार तेरह सागरतक स्वर्गके सुख भोगकर वह वहांसे च्युत हुआ और जम्बू दूवीप-भरतक्षेत्रके कौशल देशमें साकेत नगरके स्वामी राजा बज्र-सेनकी रानी शीलवतीके हरिषेण नामका पुत्र हुआ। हरिषेणने अपने बाहुबल-से विशाल राज्य लक्ष्मीका उपभोग किया था और अन्त समयमें उस विशाल राज्यको जीर्ण तृणके समान छोड़कर श्रुतसागर मुनिराजके पास जिन दीक्षा ले ली तथा उग्र तपस्याएं की। उनके प्रभावसे वह महाशुक्र स्वर्गमें देव हुआ। वहां उसकी आयु सोलह सागर प्रमाण थी। आयुके अन्तमें स्वर्ग वसुन्धरासे सम्बन्ध तोड़कर वह धातकी खण्डके पूर्व मेरुसे पूर्वकी ओर विदेह क्षेत्र-पुष्कला-वती देशकी पुण्डरीकिणी नगरीमें वहांके राजा सुमित्र और उनकी सुव्रता रानीसे प्रियमित्र नामका पुत्र हुआ। सुमित्र चक्रवर्ती था—उसने अपने पुरुषार्थ से छह खण्डोंको वशमें कर लिया था। किसी समय उसने क्षेमङ्कर जिनेन्द्रके मुखसे संसारका स्वरूप सुना और विषय वासनाओंसे विरक्त होकर जिन दीक्षा धारण कर ली। अन्तमें समाधि पूर्वक मरकर बारहवें सहस्रार स्वर्गमें सूर्यप्रभ देव हुआ। वहां वह अठारह सागरतक यथेष्ठ सुख भोगता रहा। फिर आयुके अन्तमें वहांसे च्युत होकर जम्बू दूवीपके क्षत्रपुर नगरमें राजा नन्दवर्द्धनकी वीरवतीसे नन्द नामका पुत्र हुआ। वह बचपनसे ही धर्मात्मा और न्याय प्रिय था। कुछ समयतक राज्य भोगनेके बाद उसने किन्हीं प्रोष्ठि-ल नामक मुनिराजके पास जिन दीक्षा ले ली। मुनिराज नन्दने गुरु चरणोंकी सेवा कर ग्यारह अङ्गों का ज्ञान प्राप्त किया और दर्शन विशुद्धि आदि सोलह कारण भावनाओं का चिन्तवन कर तीर्थङ्कर नामक महा पुण्य प्रकृति का बन्ध किया। फिर आयुके अन्त में आराधना पूर्वक शरीर त्याग कर सोलहवें अच्यु-त स्वर्ग के पुष्पोत्तर विमान में इन्द्र हुआ। वहां पर उसकी बाइस सागर प्रमा-

ण आयु थी। तीन हाथका शरीर था, शुक्ल लेश्या थी। वह बाईस हजार वर्ष में एकवार मानसिक आहार ग्रहण करता और बाईस पक्षके बाद एकवार श्वासोच्छ्वास लेता था। पाठकोंको जानकर हर्ष होगा कि यही इन्द्र आगे चलकर वर्द्धमान तीर्थंकर होगा--भगवान् महावीर होगा। कहां और कब ? सो सुनिये

[२] वर्तमान परिचय

भगवान् पार्श्वनाथ के मोक्ष चले जाने के कुछ समय बाद यहां भारतवर्ष में अनेक मत मतान्तर प्रचलित हो गये थे। उस समय कितने ही मनुष्य स्वर्ग प्राप्ति के लोभ से जीवित पशुओं को यज्ञ की बलि वेदियों में होम देते थे। कितने ही बौद्धधर्म की क्षणिक वादिता को अपना कर दुखी हो रहे थे। और किनने ही लोग सांख्य नैयायिक तथा वेदान्तियोंके प्रपञ्च में पड़कर आत्महित से कोसों दूर भाग रहे थे। उस समय लोगों के दिलों पर धर्मका भूत बुरी तरह से चढ़ा हुआ था। जिसे भी देखो वही हरएक व्यक्तिको अपनी ओर--अपने धर्म की ओर खींचने की कोशिश करता हुआ नजर आता था। उद्दण्ड धर्माचार्य धर्म की ओटमें अपना स्वार्थ गांठते थे। मिथ्यात्व यामिनीका घना तिमिर सब ओर फैला हुआ था। उसमें दुष्ट उलूक भयङ्कर घूत्कार करते हुए इधर उधर घूमते थे। आततायिओं के घोर आतङ्क से यह धरा अकुला उठी थी। रात्रि के उस सघन तिमिर व्याकुल होकर प्रायः सभी सुन्दर प्रभात का दर्शन करना चाहते थे। उस समय सभी की दृष्टि प्राची की ओर लग रही थी। वे सतृष्ण लोचनों से पूर्वकी ओर देखते थे कि प्रातः काल की ललित लालिमा आकाश में कब फैलती है।

एकने ठीक कहा है—कि, सृष्टि का क्रम जनता की आवश्यकतानुसार हुआ करता है। जब मनुष्य ग्रीष्मकी तप्त लूसे व्याकुल हो उठते हैं तब सुन्दर श्यामल बादलों से आकाश को आवृत कर पावस ऋतु आती है। वह शीतल और स्वादु सलिल की वर्षा कर जनता का सन्ताप दूर कर देती है। पर जब मेघों की घनघोर वर्षा, निरन्तर के दुर्दिन, बिजली की कड़क, मेघों की गड़गड़ाहट और मलिन पङ्क से मन म्लान हो जाता है तब स्वर्गीय अप्सरा-

का रूप धारण कर शरद् ऋतु आती है। वह प्रति दिन सवेरे के समय बाल दिनेश की सुनहली किरणों से लोगोंके अन्तस्तल को अनुरञ्जित बना देती है। रजनी में चन्द्रमा की रजतमयी शीतल किरणों से अमृत बर्षाती है। पर जब उसमें भी लोगों का मन नहीं लगता तब हेमन्त, शिशिर, और वसन्त वगैरह आ-आकर लोगोंको आनन्दित करने की चेष्टाएं करती हैं। रातके बाद दिन और दिन के बाद रात का आगमन भी लोगों के सुभीते के लिए है। दुष्टों का दमन करने के लिये महात्माओं की उत्पति अनादि से सिद्ध है। इसी लिये भगवान् पार्श्वनाथ के बाद जब भारी आतङ्क फैल गया था। तब किसी महात्मा की आवश्यकता थी। बस, उसी आवश्यकताको पूर्ण करनेके लिये हमारे कथा नायक भगवान महावीरने भारत वसुधा पर अवतार लिया था

जम्बूद्वीप—भरत क्षेत्रके मगध (बिहार) देशमें एक कुण्डनपुर नामक नगर था। जो उस समय वाणिज्य व्यवसायके द्वारा खूब तरक्की पर था। उसमें अच्छे अच्छे सेठ लोग रहा करते थे। कुण्डलपुरका शासन सूत्र महाराज सिद्धार्थ के हाथ में था। सिद्धार्थ शुर वीर होनेके साथ साथ बहुत ही गम्भीर प्रकृतिके पुरुष थे। लोग उनकी दयालुता देख कर कहते थे कि ये एक चलते फिरते दया के समुद्र हैं। उनकी मुख्य स्त्रीका नाम प्रियकारिणी (त्रिशला) था। यह त्रिशला सिन्धु देश की वैशाली पुरीके राजा चेटककी पुत्री थी। बड़ी ही रूपवती और बुद्धिमती थी, वह हमेशा परोपकारमें ही अपना समय बिताती थी। रानी होने पर भी उसे अभिमान तो छू भी नहीं गया था। वह सच्ची पतिव्रता थी। सेवासे महाराज सिद्धार्थको हमेशा सन्तुष्ट रखती थी। वह घरके नौकर चाकरों पर प्रेमका व्यवहार करती थी। और विघ्न-व्याधि उपस्थित होने पर उनकी हमेशा हिफ़ाजत भी रखती थी।

राजा सिद्धार्थ नाथवंश के शिरोमणि थे वे भी अपनेको त्रिशलाकी सङ्गति से पवित्र मानते थे राजा चेटकके त्रिशलाके सिवाय मृगावती, सुप्रभा, प्रभावती, चेलिनी, ज्येष्ठा और चन्दना ये छह पुत्रियां और थीं। मृगावतीका विवाह वत्सदेशकी कौशाम्बीनगरीके चन्द्रवंशीय राजा शतानीकके साथ हुआ था। सुप्रभा, दशर्ण देश के हेरकच्छ नगरके स्वामी सूर्यवंशी राजा

दशरथकी पटरानी हुई थी। प्रभावतीका विवाह-सम्बन्ध कच्छदेशके रोरुक-नगरके स्वामी राजा उदयनके साथ हुआ था।

प्रभावतीका दूसरा नाम शीलवती भी प्रचलित था। चेलिनी मगध-देशके राजगृह नगरके राजा श्रेणिककी प्रिय पत्नी हुई थी। ज्येष्ठा और चन्दना इन दो पुत्रियोंने संसारसे विरक्त होकर आर्यिकाके व्रत ले लिये थे।

...इस तरह महाराज सिद्धार्थका बहुतसे प्रतिष्ठित राजवंशोंके साथ मैत्री-भाव था। सिद्धार्थने अपनी शासन प्रणालीमें बहुत कुछ सुधार किया था।

ऊपर जिस इन्द्रका कथन कर आये हैं वहां (अच्युत स्वर्गमें) जब उसकी आयु छह माहकी बाकी रह गई तबसे सिद्धार्थ महाराजके घरपर रत्नोंकी वर्षा होनी शुरू हो गई। अनेक देवियां आ-आकर प्रियकारिणीकी सेवा करने लगीं। इन सब कारणोंसे महाराज सिद्धार्थको निश्चय हो गया था कि, अब हमारे नाथ वंशमें कोई प्रभावशाली महापुरुष पैदा होगा।

आषाढ़ शुक्ल षष्ठीके दिन उत्तराषाढ़ नक्षत्रमें रात्रिके पिछले पहरमें त्रिशलाने सोलह स्वप्न देखे और स्वप्न देखनेके बाद मुंहमें प्रवेश करते हुए एक हाथीको देखा। उसी समय उस इन्द्रने अच्युत स्वर्गके पुष्पोत्तर विमान से मोह छोड़कर उसके गर्भमें प्रवेश किया। सबेरा होते ही रानीने स्नानकर पतिदेव-सिद्धार्थ महाराजसे स्वप्नोंका फल पूछा। उन्होंने भी अवधिज्ञानसे विचार कर कहा कि तुम्हारे गर्भसे नव माह बाद तीर्थङ्कर पुत्र उत्पन्न होगा। जो कि सारे संसारका कल्याण करेगा—'लोगोंको सच्चे रास्तेपर लगावेगा।' पतिके वचन सुनकर त्रिशला मारे हर्षके अङ्गमें फूली न समाती थी। उसी समय चारों निकायके देवोंने आकर भावि भगवान् महावीरके गर्भावतरणका उत्सव किया तथा उनके माता-पिता त्रिशला-और सिद्धार्थका खूब सत्कार किया।

गर्भकालके नौ माह पूर्ण होनेपर चैत्र शुक्ल त्रयोदशीके दिन उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्रमें सबेरेके समय त्रिशलाके गर्भसे भगवान् वर्द्धमानका जन्म हुआ। उस समय अनेक शुभ शकुन हुए थे। उनकी उत्पत्तिसे देव,

दानव, मृग और मानव सभीको हर्ष हुआ था। चारो निकायके देवोंने आकर जन्मोत्सव मनाया था। उस समय कुण्डनपुर अपनी सजावटसे स्वर्गको भी पराजित कर रहा था। देवराजने इनका वर्द्धमान नाम रक्खा था। जन्मोत्सवकी विधि समाप्तकर देव लोग अपने-अपने स्थानोंपर चले गये। राजपरिवारमें बालक वर्द्धमानका बहुत प्यारसे लालन पालन होने लगा।

वे द्वितीयाके इन्द्रकी तरह दिन प्रति दिन बढ़कर कुमार अवस्थामें प्रविष्ट हुए। कुमार वर्द्धमानको जो भी देखता था उसीकी आंखें हर्षके आंसुओंसे तर हो जाती थीं मन अमन्द आनन्दसे गद्‌गद् हो उठता था और शरीर रोमाञ्चित हो जाता था। इन्हें अल्पकालमें ही समस्त विद्याएं प्राप्त हो गई थीं। बालक वर्द्धमानके अगाध पाण्डित्यको देखकर अच्छे-अच्छे विद्वानोंको दांतों तले अंगुलियां दबानी पड़ती थीं। विद्वान होनेके साथ साथ वे शूर वीरता और साहस आदि गुणोंके अनन्य आश्रय थे।

किसी एक दिन सौधर्म इन्द्रकी सभामें चर्चा चल रही थी कि 'इस समय भारतवर्षमें वर्द्धमान कुमार ही सबसे बलवान-शूर बीर और साहसी हैं'।......इस चर्चाको सुनकर एक संगम नामका कौतुकी देव कुण्डनपुर आया। उस समय वर्द्धमान कुमार इष्ट मित्रोंके साथ एक वृक्षपर चढ़ने उतरनेका खेल खेल रहे थे। मौका देखकर संगम देवने एक भयंकर सर्पका रूप धारण किया और फुंकार करता हुआ वृक्षकी जड़से लेकर स्कन्धतक लिपट गया। नागराजकी भयावनी सूरत देखकर वर्द्धमान कुमारके सब साथी वृक्ष से कूँद-कूँदकर घर भाग गये पर उन्होंने अपना धैर्य नहीं छोड़ा वे उसके विशाल फणपर पांव देकर खड़े हो गये और आनन्दसे उछलने लगे। उनके साहससे प्रसन्न होकर देव, सर्पका रूप छोड़कर अपने असली रूपमें प्रकट हुआ। उसने उनकी खूब स्तुति की और महावीर नाम रक्खा।

भगवान् महावीर जन्मसे ही परोपकारमें लगे रहते थे। जब वे दीन-दुःखी जीवोंको देखते थे तब उनका हृदय रो पड़ता था। इतना ही नहीं, जबतक उनके दुःख दूर करनेका शक्तिभर प्रयत्न न कर लेते तबतक चैन नहीं

लेते थे। वे अनेक असहाय बालकोंकी रक्षा करते थे। पुत्रकी तरह विधवा स्त्रियोंकी सुरक्षा रखते थे। उनके दृष्टिके सामने छोटे-बड़ेका भेद-भाव न था। वे अपने हृदयका प्रेम आम बाजारमें लुटाते थे जिसे आवश्यकता हो वह लूटकर ले जावे।

वर्द्धमान कुमारकी कीर्ति गाथाओंसे समस्त भारतवर्ष मुखरित हो गया था। पहाड़ोंकी चोटियों और नद, नदी निर्झरोंके किनारोंपर सुन्दर लता गृहोंमें बैठकर किन्नर देव अपनी प्रेयसियोंके साथ इनकी कीर्ति गाया करते थे। महलोंकी छतोंपर बैठकर सौभाग्यवती स्त्रियां बड़ी ही भक्तिसे उनका यशोगान करती थीं।

श्री पार्श्वनाथ स्वामीके मोक्ष जानेके ढाई सौ वर्ष बाद भगवान महावीर हुए थे। इनकी आयु भी इसीमें शामिल है। इनकी आयु कुछ कम बहत्तर वर्षकी थी ॥ * ॥ शरीरकी ऊँचाई सात हाथ की थी।

और रंग सुवर्णके समान स्निग्ध पीत वर्णका था।

जब धीरे २ उनकी आयुके तीस वर्ष बीत गये और उनके शरीरमें यौवनका पूर्ण विकास हो गया। तब एक दिन महाराज सिद्धार्थने उनसे कहा—'प्रिय पुत्र! अब तुम पूर्ण युवा हो, तुम्हारी गम्भीर और विशाल आंखें उन्नत ललाट, प्रशान्त वदन, मन्द मुसकान, चतुर वचन, विस्तृत वक्ष-स्थल, और घुटनों तक लम्बी भुजाएं तुम्हें महापुरुष बतला रही हैं। अब खोज-ने पर भी तुम में वह चञ्चलता नहीं पाता हूं। अब तुम्हारा यह समय राज्य कार्य संभालने का है। मैं एक बूढ़ा आदमी और कितने दिन तक तुम्हारा साथ दूंगा? मैं तुम्हारी शादी करने के बाद ही तुम्हें राज्य देकर दुनियां की झंझटों से बचना चाहता हूं। ...... पिता के वचन सुनकर महावीर का प्रफु-ल्ल मुखमण्डल एकदम गम्भीर हो गया। मानों वे किसी गहरी समस्या के सुलझाने में लग गये हों। कुछ देर बाद उन्होंने कहा —'पिता जी! यह मुझ

* आपकी आयुके विषयमें दो मत हैं। एक मतमें आपकी आयु ७२ वर्षकी कही गई है और दूसरे मतमें ७१ वर्ष ३ माह २५ दिनकी कही गई है। दोनों मतोंका खुलासा जयधवलमें किया गया है। देखिये सागरकी हस्तलिखित प्रति लिपि पत्र नं० ६ और १०

से नहीं होगा। भला, जिस जंजाल से आप बचना चाहते हैं उसी जंजाल में आप मुझे क्योंकर फंसाना चाहते हैं? ओह! मेरी आयु सिर्फ बहत्तर वर्ष की है जिसमें आज तीस वर्ष व्यतीत हो चुके। अब इतने से अवशिष्ट जीवन में मुझे बहुत कुछ कार्य करना बाकी है। देखिये पिताजी! ये लोग धर्मके नाम पर आपस में किस तरह झगड़ते हैं। सभी एक दूसरे को अपनी ओर खींचना चाहते हैं। पर खोज करने पर ये सब हैं पोचे। धर्माचार्य प्रपञ्च फैलाकर धर्म की दूकान सजाते हैं जिनमें भोले प्राणी ठगाये जाते हैं। मैं इन पथ भ्रान्त पुरुषों को सुख का सच्चा रास्ता बतलाऊंगा। क्या बुरा है मेरा विचार?' ...... सिद्धार्थ ने बीच में ही टोक कर कहा - पर ये तो घर में रहते हुए भी हो सकते हैं, कुछ आगे बढ़कर महावीर ने उत्तर दिया 'नहीं महराज! यह आप का सिर्फ व्यर्थ मोह है, थोड़ी देरके लिये आप यह भूल जाइये कि महावीर मेरा बेटा है फिर देखिये आपकी यह विचार धारा परिवर्तित हो जाती है या नहीं? बस, पिताजी! मुझे आज्ञा दीजिये जिससे मैं जङ्गल के प्रशान्त वायु मण्डल में रहकर आत्म ज्योति को प्राप्त करूं और जगत् का कल्याण करूं। कुछ प्रारम्भ किया और कुछ हुआ' सोचते हुए सिद्धार्थ महाराज विषण्ण वदन हो चुप रह गये।

जब पिता पुत्रका ऊपर लिखा हुआ सम्वाद त्रिशला रानीके कानोंमें पड़ा तब वह पुत्र मोहसे व्याकुल हो उठी—उसके पांवके नोचेकी जमीन खिसकने सी लगी। आंखोंके सामने अँधेरा छा गया। वह मूर्च्छित हुआ ही चाहती थी कि बुद्धिमान् वर्द्धमान कुमारने चतुराई भरे शब्दोंमें उनके सामने अपना समस्त कर्तव्य प्रकट कर दिया—अपने आदर्श और पवित्र विचार उसके सामने रख दिये। एवं संसारकी दूषित परिस्थितिसे उसे परिचित करा दिया। तब उसने डबडबाती हुई आंखोंसे भगवान् महावीरकी ओर देखा। उस समय उसे उनके चेहरेपर परोपकारकी दिव्य झलक दिखाई दी। उनकी लालमा शून्य सरल मुखाकृतिने उनके समस्त व्यामोहको दूर कर दिया। महावीरको देखकर उसने अपने आपको बहुत कुछ धन्यवाद दिया और कुछ देरतक अनिमेष दृष्टिसे उनकी ओर देखती रही। फिर कुछ देर

त्योंही उसकी सांकल अपने आप टूट गई। उसका शरीर पहलेके समान सुन्दर हो गया। पासमें रखा हुआ मिट्टीका बर्तन सोनेका होगया और कोंदोका भात शालिचावलोंका बन गया। यह देखकर उसने प्रसन्नतासे पड़गाह कर भगवान् महावीरके लिये आहार दिया। देवोंने चन्दनाकी भक्तिसे प्रसन्न होकर उसके घरपर रत्नोंकी वर्षाकी। तबसे चन्दनाका माहात्म्य सब ओर फैल गया। पता लगनेपर चेटक राजा पुत्रीको लिवानेके लिये आया पर वह संसारकी दुःखमय अवस्थासे खूब परिचित हो गई थी इसलिये उसने पिताके साथ जानेसे इनकार कर दिया और किसी आर्यिकाके पास दीक्षा ले ली। अबतक छद्मस्थ अवस्थामें विहार करते हुए भगवान्के बारह वर्ष बीत गये थे। एक दिन वे जृम्भिका गांवके समीप ऋजुकूला नदीके किनारे मनोहर नामके वनमें सागोन वृक्षके नीचे पत्थर की शिलापर विराजमान थे। वहींपर उन्हें शुक्ल ध्यानके प्रतापसे घातिया कर्मोंका क्षय होकर वैशाख शुक्ल दशमीके दिन हस्त नक्षत्रमें शामके समय देवोंने आकर ज्ञान कल्याणकका उत्सव किया। इन्द्रकी आज्ञा पाकर धनपति-कुबेरने समवशरण धर्म सभाकी रचना की। भगवान् महावीर उसके मध्यभाग में विराजमान हुए। धीरे-धीरे समवसरणकी बारहों सभाएं भर गईं। समवसरण भूमिका सब प्रबन्ध देव लोग अपने हाथमें लिये हुए थे इसलिये वहां किसी प्रकारका कोलाहल नहीं होता था। सभी लोग सतृष्ण लोचनोंसे भगवान्की ओर देख रहे थे और कानोंसे उनके दिव्य उपदेशकी परीक्षा कर रहे थे। पर भगवान् महावीर चुपचाप सिंहासनपर अन्तरीक्ष विराजमान थे उनके मुखसे एक भी शब्द नहीं निकलता था। केवल ज्ञान होनेपर भी छयासठ ६६ दिनतक उनकी दिव्यध्वनि नहीं खिरी। जब इन्द्रने अवधि ज्ञानसे इसका कारण जानना चाहा तब उसे मालूम हुआ कि अभी सभाभूमिमें कोई गणधर नहीं है और बिना गणधरके तीर्थंकरकी वाणी नहीं खिरती। इन्द्रने अवधि ज्ञानसे यह भी जान लिया कि गौतम ग्राममें जो इन्द्रभूति नामका ब्राह्मण है वही इनका प्रथम गण-धर होगा। ऐसा जानकर इन्द्र, इन्द्रभूतिको लानेके लिए गौतम ग्रामको गया। इन्द्रभूति वेद वेदांगोंको जानने वाला प्रकाण्ड विद्वान था। उसे अपनी विद्याका भारी अभिमान था। उसके पांचसौ शिष्य थे। जब इन्द्र उसके पास पहुंचा

तब वह अपने शिष्योंको वेद वेदांगोंका पाठ पढ़ारहा था। इन्द्र भी एक शिष्य के रूपमें उसके पास पहुंचा और नमस्कार कर जिज्ञासुभावसे बैठ गया। इन्द्रभूतिने नये शिष्यकी ओर गम्भीर दृष्टिसे देखकर कहा कि तुम कहांसे आये हो? किसके शिष्य हो? उसके वचन सुनकर शिष्य वेषधारी इन्द्रने कहा कि मैं सर्वज्ञ भगवान् महावीरका शिष्य हूँ। इन्द्रभूतिने महावीरके साथ सर्वज्ञ और भगवान विशेषण सुनकर तिड़कते हुए कहा—'ओ सर्वज्ञके शिष्य! तुम्हारे गुरु यदि सर्वज्ञ हैं तो अभीतक कहां छिपे रहे। क्या मुझसे शास्त्रार्थ किये विनाही वे सर्वज्ञ कहलाने लगे हैं', इन्द्रने कुछ भौंह टेढ़ीकरते हुए कहा—तो क्या आप उनसे शास्त्रार्थ करने के लिये समर्थ हैं। इन्द्रभूतिने कहा हां अवश्य। तब इन्द्रने कहा। अच्छा, पहले उनके शिष्य मुझसे ही शास्त्रार्थ कर देखिये–फिर उनसे करियेगा। मैं पूछता हूं ......

त्रैकाल्यं द्रव्यषट्कं नव पद सहित......आदि।

कहिये महाराज! इस श्लोकका क्या अर्थ है? जब इन्द्रभूतिको 'द्रव्यषट्कं' 'नवपद सहितं' लेश्या आदि शब्दोंका अर्थ प्रतिभासित नहीं हुआ तब वह कड़क कर बोला—चल तुझसे क्या शास्त्रार्थ करूं, तेरे गुरुसे ही शास्त्रार्थ करूंगा। ऐसा कहकर वह पांच सौ शिष्योंके साथ भगवान् महावीरके पास आनेके लिये खड़ा हो गया। इन्द्र भी हंसता हुआ आगे होकर मार्ग बतलाने लगा। ज्यों ही इन्द्रभूति समवसरणके पास आया और उसकी दृष्टि मान स्तम्भपर पड़ी त्यों ही उसका समस्त अभिमान दूर हो गया। वह विनीत भावसे समवसरणके भीतर गया। वहां भगवान्के दिव्य ऐश्वर्यको देखकर उनके सामने उसने अपने आपको बहुत ही हल्का अनुभव किया। जब इन्द्रभूति भगवान्को नमस्कारकर मनुष्योंके कोठेमें बैठ गया तब इन्द्रने उससे कहा—अब आप जो पूछना चाहते हों वह पूछिये। जब इन्द्रभूतिने भगवान्से जीवका स्वरूप पूछा तब उन्होंने सप्तभङ्गीमें जीव तत्वका विशद व्याख्यान किया। उनके दिव्य उपदेशसे गद् गद् हृदय होकर इन्द्रभूतिने कहा—'भगवन! इस दासको भी अपने चरणोंमें स्थान दीजिये।' ऐसा कहकर उसने वहींपर जिन दीक्षा धारण कर ली। उसके पांच सौ शिष्योंने भी जैनधर्म

स्वीकारकर यथा शक्ति व्रत विधान ग्रहण किये। दीक्षा लेनेके कुछ समय बाद ही इन्द्रभूतिको सात ऋद्धियां और मनःपर्यय ज्ञान प्राप्त हो गया था। यही भगवान् वर्द्धमानका प्रथम गणधर हुआ था। गोतम गांवमें रहनेके कारण इन्द्रभूतिका ही दूसरा नाम गोतम था। भगवान अर्द्धमागधी भाषामें पदार्थों का उपदेश करते थे और गौतम इन्द्रभूति गणधर उसे ग्रंथ रूपसे—अङ्ग पूर्व रूपसे संकलित करते जाते थे। कालक्रमसे भगवान महावीरके गौतमके सिवाय वायुभूति, अग्निभूति, सुधर्म, मौर्य, मौन्द्रय, पुत्र, मैत्रेय, अकम्पन, अन्धवेल और प्रभास ये दश गणधर और थे। इनके सिवाय इनके समवसरणमें तीन सौ ग्यारह द्वादशाङ्गके वेत्ता थे, नौ हजार नौ सौ शिक्षक थे तेरह सौ अवधि ज्ञानी थे, सात सौ केवल ज्ञानी थे, नौ सौ विक्रिया ऋद्धिके धारक थे, पांच सौ मनः पर्यय ज्ञानी थे और चार सौ वादी थे। इस तरह सब मिलाकर चौदह हजार मुनिराज थे। चन्दना आदि छंत्तीस हजार आर्यिकाएं थीं, एक लाख श्रावक थे, तीन लाख श्राविकाएं थी असंख्यात देव-देवियां और संख्यात तिर्यञ्च थे। इन सबसे वेष्ठित होकर उन्होंने नय प्रमाण और निक्षेपोंसे वस्तुका स्वरूप बतलाया। इसके अनन्तर कई स्थानोंमें विहार कर धर्मामृतकी वर्षा की।

इन्हींके समयमें कपिलवस्तुके राजा शुद्धोधनके गौतम बुद्ध नामका पुत्र था जो अपने विशाल ऐश्वर्यको छोड़कर साधु बन गया था। साधु गौतम बुद्धने अपनी तपस्यासे महात्मा पद प्राप्त किया था। महात्मा बुद्ध जगह-जगह घूमकर बौद्धधर्मका प्रचार किया करते थे। बुद्धके अनुयायी बौद्ध और महावीरके अनुयायी जैन कहलाते थे। यद्यपि उस समय जैन और बौद्ध ये दोनों सम्प्रदाय वैदिक विधान बलि हिंसा आदिका विरोध करनेमें पूरी-पूरी शक्ति लगाते थे तथापि उन दोनोंमें बहुत मतभेद था। बौद्ध और जैनियोंकी दार्शनिक तथा आचार विषयक मान्यताओंमें बहुत अन्तर था जो कुछ भी हो पर यह निसन्देह कहा जा सकता है कि वे दोनों उस समयके महापुरुष थे, दोनों का व्यक्तित्व खूब बढ़ा चढ़ा था। जबतक महावीरकी छद्मस्थ अवस्था रही तबतक प्रायः बुद्धके उपदेशोंका अधिक प्रचार रहा। पर जब भगवान् महा-

वीर केवल ज्ञानी होकर दिव्य ध्वनिके द्वारा उपदेश करने लगे थे तब बुद्धका माहात्म्य बहुत कुछ कम हो गया था। राजा श्रेणिक जैसे कट्टर बौद्ध भी महावीरके अनुयायी बन गये थे अर्थात जैनी हो गये थे। एक जगह गौतम बुद्धने अपने शिष्योंके सामने भगवान् महावीरको सर्वज्ञ स्वीकार किया था। और उनके वचनोंमें अपनी आस्था प्रकट की थी।

पूर्ण ज्ञानी योगी भगवान् महावीरने पहले तो वैदिक बलिदान तथा अन्य कुरीतियोंको बन्द करवाया था। और फिर अपने मार्मिक धार्मिक उपदेशोंसे, बौद्ध, नैयायिक, सांख्य आदि मत मतान्तरोंकी मान्यताओंका खण्डन कर स्य द्वाद रूपसे जैनधर्मकी मान्यताओंका प्रकाश किया था।

एक दिन भगवान महावीर विहार करते हुए राजगृह नगरमें आये और वहांके विपुलाचल पर्वतपर समवशरण सहित विराजमान हो गये। उस समय राजगृह नगरमें राजा श्रेणिकका राज्य था। पहिले कारणवश श्रेणिक राजाने बौद्धधर्म स्वीकार कर लिया था। परन्तु चेलिनी रानीके बहुत कुछ प्रयत्न करनेपर उन्होंने बौद्धधर्मको छोड़कर पुनः जैनधर्म धारण कर लिया था। जब उन्हें विपुलाचलपर महावीर जिनेन्द्रके आगमनका समाचार मिला तब वह समस्त परिवारके साथ उनकी वन्दनाके लिये गया और उन्हें नमस्कारकर मनुष्योंके कोठेमें बैठ गया। भगवान महावीरने सुन्दर सरस शब्दोंमें पदार्थों का विवेचन किया जिसे सुनकर राजा श्रेणिकको क्षायिक सम्यग्दर्शन प्राप्त हो गया। क्षायिक सम्यग्दर्शन पाकर उसे बड़ी ही प्रसन्नता हुई। राजा श्रेणिकको उनके प्रति इतनी गाढ़ श्रद्धा हो गई थी कि वह उनके पास प्रायः नित्य प्रति जाकर तत्वोंका उपदेश सुना करता था।

श्रेणिकको आसन्न भव्य समझकर गौतम गणधर वगैरह भी उसे खूब उपदेश दिया करते थे। प्रथमानुयोगका उपदेश तो प्रायः श्रेणिकके प्रश्नोंके अनुसार ही किया गया है। श्रेणिकने उन्हींके पासमें दर्शन विशुद्धि आदि सोलह भावनाओंका चिन्तवनकर तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध भी कर लिया था। जिससे वह आगामी उत्सर्पिणीमें पद्मनाभ नामके तीर्थङ्कर होंगे।

भगवान महावीरका विहार, बिहार प्रान्तमें बहुत अधिक हुआ है। राज-

बाद उसने स्पष्ट स्वरमें कहा। "ऐ देव! जाओ, खुशीसे जाओ, अपनी सेवासे संसारका कल्याण करो, अब मैं आपको पहिचान सकी, आप मनुष्य नहीं—देव हैं। मैं आपके जन्मसे धन्य हुई। अब न आप मेरे पुत्र हैं और न मैं आपकी मां। किन्तु आप एक आराध्य देव हैं और मैं हूं आपकी एक क्षुद्र सेविका। मेरा पुत्र मोह बिलकुल दूर हो गया है।

माताके उक्त वचनोंसे महावीर स्वामीके विरुद्ध हृदयको और भी अधिक आलम्ब मिल गया। उन्होंने स्थिर चित्त होकर संसारकी परिस्थितिका विचार किया और वनमें जाकर दीक्षा लेनेका दृढ़ निश्चय कर लिया उसी समय पीताम्बर पहिने हुए लौकान्तिक देवोंने आकर उनकी स्तुति की और दीक्षा धारण करनेके विचारोंका समर्थन किया। अपना कार्य पूराकर लौकान्तिक देव अपने स्थानोंपर वापिस चले गये। उनके जाते ही असंख्य देव राशि जय जय घोषणा करती हुई आकाश मार्गसे कुण्डनपुर आई। वहां उन्होंने भगवान् महावीरका दीक्षाभिषेक किया तथा अनेक सुन्दर-सुन्दर आभूषण पहिनाये। भगवान् भी देव निर्मित चन्द्रप्रभा पालकीपर सवार होकर षण्डवनमें गये और वहां अगहन वदी दशमीके दिन हस्त नक्षत्रमें संध्याके सकय 'ॐ नमः सिद्धेभ्यः' कहकर वस्त्राभूषण उतारकर फेंक दिये। पंचमुष्टियोंसे केश उखाड़ डाले। इस तरह बाह्य और आभ्यन्तर परिग्रहका त्यागकर आत्मध्यानमें लीन हो गये। विशुद्धिके बढ़नेसे उन्हें उसी समय मनः पर्यय ज्ञान प्राप्त हो गया। दीक्षा कल्याणकका उत्सव समाप्तकर देव लोग अपने-अपने स्थानोंपर चले गये।

पारणाके दिन भगवान् महावीरने आहारके लिये कुलग्राम नामक नगरीमें प्रवेश किया। वहां उन्हें कुल भूपालने भक्ति पूर्वक आहार दिया। पात्र दानसे प्रभावित होकर देवोंने कुल भूपालके घरपर पञ्चाश्चर्य प्रकट किये। वहांसे लौटकर मुनिराज महावीर वनमें पहुंचे और आत्मध्यानमें लीन होगये। दीक्षाके बाद उन्होंने मौनव्रत लेलिया था। इस लिये बिना किसीसे कुछ कहे हुए ही वे आर्य देशोंमें विहार करते थे।

एक दिन वे विहार करते हुए भगवान् महावीर उज्जयिनीके अति मुक्तक

नामके श्मशानमें पहुंचे और रातमें प्रतिमा योग धारण कर वहीं पर विराजमान होगये। उन्हें देखकर महादेव रुद्रने अपनी दुष्टतासे उनके धैर्यकी परीक्षा करनी चाही। उसने वैताल विद्याके प्रभाव से रात्रिके सघन अन्धकार को और भी सघन बना दिया। अनेक भयानक रूप बनाकर नाचने लगा। कठोर शब्द, अट्टहास और विकराल दृष्टिसे डराने लगा। तदनन्तर सर्प, सिंह, हाथी, अग्नि और वायु आदिके साथ भीलोंकी सेना बनाकर आया। इस तरह उसने अपनी विद्याके प्रभाव से खूब उपसर्ग किया। पर भगवान् महावीरका चित्त आत्म ध्यानसे थोड़ाभी विचलित नहीं हुआ। अनेक अनुपम धैर्यको देकर महादेवने असली रुपमें प्रकट होकर उनकी खूब प्रशंसा की-स्तुतीकी और क्षमा याचना कर अपने स्थानपर चला गया।

वैशालीके राजा चेटककी छोटी पुत्री चन्दना वनमें खेल रही थी। उसे देख कर कोई विद्याधर कामबाणसे पीड़ित हो गया। इसलिये वह उसे उठाकर आकाशमें लेकर उड़ गया पर ज्योंही उस विद्याधरकी दृष्टि अपनी निजकी स्त्रीपर पड़ी त्योंही वह उससे डरकर चन्दनाको एक महाटवीमें छोड़ आया। वहांपर किसी भीलने देखकर उसे धनपानेकी इच्छासे कौशाम्बी नगरीके वृषभदत्त सेठके पास भेज दिया। सेठकी स्त्रीका नाम समुद्रा था। वह बड़ी दुष्टा थी, उसने सोचा--कि कभी सेठजी इस चन्दनाकी रूप राशिपर न्यौछावर होकर मुझे अपमानित न करने लगें। ऐसा सोचकर वह चन्दनाको खूब कष्ट देने लगी। सेठानीके घरपर प्रतिदिन चन्दनाको मिट्टीके बर्तनमें कांजीसे मिला हुआ पुराने कोदोंका भात ही खानेको मिलता था। इतने परभी हमेशा सांकलमें बंधी रहती थी। इन सब बातोंसे उसका सौन्दर्य प्रायः नष्ट सा हो गया था।

एक दिन विहार करते हुए भगवान् महावीर आहार लेनेके लिये कौशाम्बी नगरीमें पहुंचे। उनका आगमन सुनकर चन्दनाकी इच्छा हुई कि मैं भगवान् महावीरके लिये आहार दूं पर उसके पास रक्खा ही क्या था। उसे जो भी मिलता था वह दूसरेकी कृपासे और सड़ा हुआ। तिसपर वह सांकलमें बंधी हुई थी। चन्दनाको अपनी परतन्त्रताका विचारकर बहुत ही दुःख हुआ। पर भव भक्ति भी कोई चीज है। ज्योंही भगवान् महावीर उसके द्वारपरसे निकले

गृहके विपुलाचलपर तो उनके कईबार आनेके कथानक मिलते हैं। इस तरह समस्त भारतवर्षमें जैनधर्मका प्रचार करते-करते जब उनकी आयु बहुत थोड़ी रह गई तब वे पावापुरमें आये और वहां योग निरोधकर आत्म-ध्यानमें लीन हो विराजमान हो गये। वहींपर उन्होंने सूक्ष्म क्रिया प्रतिपाति और व्युपरत क्रिया निवृत्ति नामक शुक्ल ध्यानके द्वारा अघातिया कर्मों का नाशकर कार्तिक वदी अमावस्याके दिन प्रातःकालके समय बहत्तर वर्षकी अवस्थामें मोक्ष लाभ किया। देवोंने आकर निर्वाण क्षेत्रकी पूजा की और उनके गुणोंकी स्तुति की।

भगवान् महावीर जब मोक्ष गये थे तब चतुर्थकालके ३ तीन वर्ष ८ माह १५ दिन बाकी रह गये थे। उन्हें उत्पन्न हुए आज २५३६ वर्ष और मोक्ष प्राप्त किये २४६४ वर्ष व्यतीत हो गये हैं। ये ब्रह्मचारी हुए। न इन्होंने विवाह किया और न राज्य ही। किन्तु कुमार अवस्थामें दीक्षा धारण कर ली थी। जिन्होंने इनकी आयु ७१ वर्ष ३ माह २५ दिनकी मानी है उन्होंने उसका विभाग इस तरह लिखा है।

गर्भकाल ९ माह ८ दिन, कुमार काल २८ वर्ष ७ माह १२ दिन, छद्मस्थ-काल १२ वर्ष ५ माह १५ दिन, केवलिकाल २९ वर्ष ५ माह २० दिन, कुल ७१ वर्ष ३ माह २५ दिन हुए।

मुक्त होनेपर चतुर्थकालके बाकी रहे ३ वर्ष ८ माह २५ दिन।

इस तरह इस मतमें चतुर्थकालके ७५ वर्ष १० दिन बाकी रहनेपर भगवान् महावीरने गर्भमें प्रवेश किया था और जिन्होंने ७२ वर्षकी आयु मानी है उन्होंने कहा है कि चतुर्थ कालके ७५ वर्ष ८ मास १५ दिन बाकी रहनेपर महात्मा महावीरने त्रिशलाके गर्भमें प्रवेश किया था।

इनके बाद गौतम सुधर्म और जम्बु स्वामी ये तीन केवली और हुए हैं। आज जैन धर्मकी आम्नाय उन्हींके सार गर्भित उपदेशोंसे चल रही है। वर्द्ध-मान, महाबीर, वीर अतिवीर और सन्मति ये पांच नाम प्रसिद्ध हैं।

